

# हारीतसंहिता ।



महर्षिणा आत्रेयेण उपदिष्टां

तच्छिष्येण हारीतेन सङ्कलिता ।

पण्डितकुलपतिना वि, ए, उपाधिधारिणा

श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्येण

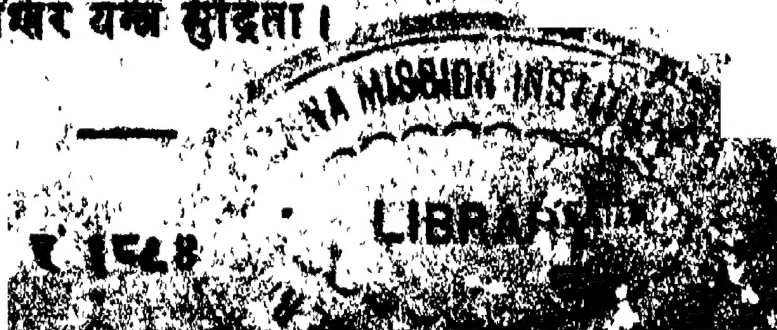
संस्कृता प्रकाशिता च ।



द्वितीयसंस्करणम् ।

कलिकातानगर्याम् ।

सिद्धेश्वर यन्त्रे मुद्रिता ।



## हारीतसंहितायां सूचीपत्रम् ।

|                             |    |                                  |    |
|-----------------------------|----|----------------------------------|----|
| प्रथमस्थानम्                |    | सप्तमवयः                         | १६ |
| वेद्यनुवर्णनशास्त्रपठनविधिः | १  | हीनवयः                           | १७ |
| चिकित्साशास्त्रसंग्रहः      | ४  | प्रकृतिज्ञानम्                   | १७ |
| श्लेष्मन्तलक्षणम्           | ५  | वातप्रकृतिः                      | १७ |
| श्लेष्माकृतलक्षणम्          | ५  | पित्तप्रकृतिः                    | १८ |
| कायचिकित्सातन्त्रलक्षणम्    | ५  | कफप्रकृतिः                       | १८ |
| बालचिकित्सातन्त्रलक्षणम्    | ६  | समप्रकृतिः                       | १८ |
| अगदलक्षणम्                  | ६  | अष्टदिक्प्रवृत्तीवायुः           | १८ |
| विषतन्त्रलक्षणम्            | ६  | वस्त्रवायुः                      | १९ |
| भूतविद्यातन्त्रलक्षणम्      | ६  | वेणुवायुः                        | १९ |
| रसायनतन्त्रलक्षणम्          | ६  | तालपत्रवायुः                     | १९ |
| बाष्पीकरणतन्त्रलक्षणम्      | ६  | व्यजनवातगुणाः                    | २० |
| सपाङ्गचिकित्सातन्त्रलक्षणम् | ६  | दिनमध्ये षट्कृतूपचारः            | २० |
| दैवशिष्यविधानो नाम          | ७  | दोषाणां वायुकोपशमः               | २० |
| आनूपलक्षणम्                 | १० | वायुप्रकोपः                      | २१ |
| जाङ्गलदेशलक्षणम्            | १० | पित्तकोपस्य निदानम्              | २२ |
| साधारणदेशलक्षणम्            | ११ | कफप्रकोपः                        | २२ |
| कालज्ञानम्                  | ११ | इन्द्रजानां समुद्रवः             | २३ |
| ऋतुचर्या                    | १२ | सन्निपातीत्यन्तिः                | २३ |
| ऋतुलक्षणम्                  | १३ | षट्त्रसाः                        | २३ |
| वर्षा ऋतुः                  | १३ | एते रसा एतेषां दोषाणां विरुद्धाः | २३ |
| अरदुपचारः                   | १४ | एते दोषाणां दोषकराः              | २४ |
| हृमन्तोपचारः                | १४ | षष्ठां रसानां रसवीर्यम्          | २४ |
| शिशिरोपचारः                 | १५ | सधुरवीर्यम्                      | २४ |
| वसन्तोपचारः                 | १५ | तिक्तवीर्यम्                     | २४ |
| शीतोपचारः                   | १५ | कटुवीर्यम्                       | २५ |
| पञ्चमोऽध्यायः               | १६ | अम्लरसवीर्यम्                    | २५ |
| वयीज्ञानम्                  | १६ | कषायरसवीर्यम्                    | २५ |
| सध्यमवयः                    | १६ | आरवीर्यम्                        | २५ |

|                    |    |                             |    |
|--------------------|----|-----------------------------|----|
| अलवर्गः            | २५ | महिषीपयोगुणाः               | ३७ |
| गाङ्गोदकगुणाः      | २६ | उष्ट्रीपयोगुणाः             | ३७ |
| सामुद्रोदकगुणाः    | २६ | नारीपयोगुणाः                | ३७ |
| श्रावणवृष्टिगुणाः  | २७ | प्राभातिकक्षीरगुणाः         | ३७ |
| भाद्रवृष्टिगुणाः   | २७ | दिनक्षीरगुणाः               | ३७ |
| आश्विनवृष्टिगुणाः  | २७ | क्षीरपानविधिः               | ३८ |
| कार्तिकवृष्टिगुणाः | २७ | कषां दधिगुणाः               | ३८ |
| चतुर्विधं जलम्     | २८ | आजदधिगुणाः                  | ३८ |
| कारकजलगुणाः        | २८ | माहिषदधिगुणाः               | ३८ |
| तुषारपानीयगुणाः    | २८ | आविकदधिगुणाः                | ३८ |
| हैमपानीयगुणाः      | २९ | शारददधिगुणाः                | ३८ |
| नदीवारिगुणाः       | २९ | हैमन्तदधिगुणाः              | ३९ |
| शैविदादिवारिगुणाः  | २९ | शैशिरदधिगुणाः               | ३९ |
| प्रस्रवणवारिगुणाः  | २९ | वासन्तदधिगुणाः              | ३९ |
| शौण्डोदकवारिगुणाः  | २९ | वैष्णिकदधिगुणाः             | ३९ |
| वाप्युदकगुणाः      | ३० | वार्षिकदधिगुणाः             | ३९ |
| कूपोदकगुणाः        | ३० | दधिवर्जनम्                  | ३९ |
| तडागोदकगुणाः       | ३० | दधिभोजनविधिः                | ४० |
| सरोवरवारिगुणाः     | ३० | गव्यतक्रगुणाः               | ४० |
| सपाषाणनदीवारिगुणाः | ३० | माहिषतक्रगुणाः              | ४० |
| सवालुकनदीवारिगुणाः | ३० | काशीतक्रगुणाः               | ४० |
| मद्यः उत्तरानुगाः  | ३१ | विविधतक्रगुणाः              | ४० |
| भूमिभागजलगुणाः     | ३१ | कुत्र कुत्र तक्रं निषिद्धम् | ४१ |
| पापोदकगुणाः        | ३२ | कुत्र कुत्र तक्रं पथ्यतमम्  | ४१ |
| रीगोदकगुणाः        | ३३ | नवनीतविधिः                  | ४१ |
| शूदकगुणाः          | ३३ | फेनविधिः                    | ४२ |
| पारीगोदकम्         | ३३ | गव्यघृतम्                   | ४२ |
| उष्णीदकगुणाः       | ३४ | अजघृतम्                     | ४२ |
| क्षीरवर्गः         | ३५ | माहिषघृतम्                  | ४२ |
| गोपयोगुणाः         | ३७ | उष्ट्रीघृतम्                | ४२ |
| अजापयोगुणाः        | ३७ | आविकघृतम्                   | ४३ |
| मेघीपयोगुणाः       | ३७ | अश्वीघृतम्                  | ४३ |

|                       |    |                       |    |
|-----------------------|----|-----------------------|----|
| नारीष्ठतम्            | ४३ | युगन्धरमण्डगुणाः      | ४६ |
| क्षीरोद्भवघृतम्       | ४३ | रक्तशालिमण्डगुणाः     | ४६ |
| जीर्णघृतगुणाः         | ४३ | श्वेततण्डुलमण्डगुणाः  | ४६ |
| मूत्रवर्गः            | ४४ | यवमण्डगुणाः           | ४६ |
| गोमूत्रगुणाः          | ४४ | गोधूममण्डगुणाः        | ४६ |
| अजमूत्रम्             | ४४ | कीद्वमण्डगुणाः        | ४६ |
| मेषमूत्रम्            | ४४ | क्षुद्रधान्यमण्डगुणाः | ४६ |
| माहिषमूत्रम्          | ४४ | यूषवर्गः              | ४६ |
| गजमूत्रम्             | ४४ | कुलत्थयूषगुणाः        | ४६ |
| अश्वमूत्रम्           | ४४ | आढकीयूषगुणाः          | ४६ |
| श्रीष्टमूत्रम्        | ४५ | सुद्वयूषगुणाः         | ५० |
| गर्दभमूत्रम्          | ४५ | समूरयूषगुणाः          | ५० |
| नरमूत्रम्             | ४५ | चणकयूषगुणाः           | ५० |
| अमृताप्रसूतमूत्रगुणाः | ४५ | माषयूषगुणाः           | ५० |
| इक्षुवर्गः            | ४५ | तैलवर्गः              | ५० |
| श्वेतैक्षुगुणाः       | ४५ | तिलतैलगुणाः           | ५० |
| कृष्णैक्षुगुणाः       | ४६ | सार्पतैलगुणाः         | ५१ |
| यन्त्रीद्वरसगुणाः     | ४६ | अतर्मीतैलगुणाः        | ५१ |
| दन्तनिष्पीडितरसगुणाः  | ४६ | परण्डतैलगुणाः         | ५१ |
| पर्युषितरसगुणाः       | ४६ | सहकारतैलगुणाः         | ५१ |
| मकरसगुणाः             | ४६ | कौसुमभतैलगुणाः        | ५१ |
| फाणितरसगुणाः          | ४६ | वसागुणाः              | ५२ |
| गुडगुणाः              | ४६ | धान्यवर्गः            | ५२ |
| मत्स्यण्डगुणाः        | ४७ | शालिवर्गः             | ५४ |
| खण्डगुणाः             | ४७ | क्षुद्रधान्यम्        | ५३ |
| शर्करागुणाः           | ४७ | यवगुणाः               | ५४ |
| तण्डुलोदकगुणाः        | ४७ | गोधूमगुणाः            | ५४ |
| तुषोदकगुणाः           | ४८ | चणकगुणाः              | ५४ |
| यवगोधूमकाञ्जिकगुणाः   | ४८ | माषगुणाः              | ५४ |
| युगन्धराम्लगुणाः      | ४८ | सुद्वगुणाः            | ५४ |
| काञ्जिकपरिहारः        | ४८ | आढकीगुणाः             | ५४ |
| धान्यमण्डगुणाः        | ४८ | सुकुष्ठकगुणाः         | ५५ |



|                      |    |                        |    |
|----------------------|----|------------------------|----|
| कुल्यगुणाः           | ५५ | सुरावर्गः              | ६३ |
| मसूरगुणाः            | ५५ | मांसवर्गः              | ६५ |
| विपुटगुणाः           | ५५ | एनमांसगुणाः            | ६६ |
| निष्पावगुणाः         | ५५ | चित्राङ्गगुणाः         | ६६ |
| कलायगुणाः            | ५५ | क्विकरगुणाः            | ६६ |
| शाकवर्गः             | ५६ | रोहितगुणाः             | ६६ |
| कूष्माण्डगुणाः       | ५७ | गण्डगवयादिमांसगुणाः    | ६७ |
| कालिङ्गगुणाः         | ५७ | शकरमांसगुणाः           | ६७ |
| चिचिण्डगुणाः         | ५७ | शशकमांसगुणाः           | ६७ |
| चिर्भटगुणाः          | ५८ | शन्नकमांसगुणाः         | ६७ |
| पटीलगुणाः            | ५८ | गोधामांसगुणाः          | ६७ |
| एवार्गुणाः           | ५८ | मूषकमांसगुणाः          | ६७ |
| तपुषगुणाः            | ५८ | स्थलचरपक्षिमांसवर्गः   | ६७ |
| अलावुगुणाः           | ५८ | लावकमांसगुणाः          | ६७ |
| तुण्डिकाकर्कोटकगुणाः | ५८ | तित्तिरिमांसगुणाः      | ६८ |
| कारवेन्नगुणाः        | ५८ | नीलमयूरमांसगुणाः       | ६८ |
| कोशातकौगुणाः         | ५८ | द्वितीयमयूरगुणाः       | ६८ |
| हन्ताकगुणाः          | ५८ | कुक्कुटमांसगुणाः       | ६८ |
| कन्दशाकवर्गः         | ५९ | कपोतमांसगुणाः          | ६८ |
| फलवर्गः              | ५९ | चकोरशुकसारिकामांसगुणाः | ६९ |
| बीजपूरगुणाः          | ६० | क्रौञ्चमांसगुणाः       | ६९ |
| निम्बुकगुणाः         | ६० | कोकिलमांसगुणाः         | ६९ |
| अम्बिकाफलगुणाः       | ६१ | पापीहकमांसगुणाः        | ६९ |
| द्राक्षागुणाः        | ६१ | गृहचटकमांसगुणाः        | ६९ |
| नारिकेलगुणाः         | ६१ | जलचरमांसवर्गः          | ६९ |
| कदलीफलव्यगुणाः       | ६१ | जलचरपक्षिमांसगुणाः     | ६९ |
| कपित्थफलगुणाः        | ६१ | मकरमांसगुणाः           | ७० |
| खजूरगुणाः            | ६२ | मत्स्यमांसगुणाः        | ७० |
| धूगफलगुणाः           | ६२ | कच्छपमांसगुणाः         | ७० |
| ताम्बूलगुणाः         | ६२ | कुलीरगुणाः             | ७० |
| सखदिरताम्बूलगुणाः    | ६२ | भोजनवर्गः              | ७१ |
| मधुवर्गः             | ६२ | युगम्बरभक्तगुणाः       | ७१ |

|                   |    |                          |     |
|-------------------|----|--------------------------|-----|
| वेवागुणाः         | ७१ | नक्षत्रहीनविधिः          | ८३  |
| मण्डगुणाः         | ७२ | दूतपरीक्षाध्यायः         | ८५  |
| पायसगुणाः         | ७२ | शकुनाध्यायः              | ८६  |
| कशरागुणाः         | ७२ | —                        | —   |
| सूपगुणाः          | ७२ | अथ चिकित्सास्थानम् ८८    | —   |
| खलगुणाः           | ७२ | भेषजपरिधानविधिः          | ८८  |
| टाडिमालगुणाः      | ७२ | लङ्घनीयाः                | १०० |
| पर्पटगुणाः        | ७२ | लङ्घनयोग्याः             | १०१ |
| शिण्डाकीगुणाः     | ७३ | ज्वराध्यायः              | १०५ |
| वटिकागुणाः        | ७३ | ज्वरकारणम्               | १०७ |
| शिवरिणीगुणाः      | ७३ | ज्वरचिकित्सा             | १०८ |
| सीधुगुणाः         | ७३ | वातज्वरचिकित्सा          | ११० |
| मन्यगुणाः         | ७२ | पित्तज्वरचिकित्सा        | १११ |
| मांसगुणाः         | ७३ | श्लेष्मज्वरचिकित्सा      | ११२ |
| भरितागुणाः        | ७३ | वातपित्तज्वरचिकित्सा     | ११३ |
| अङ्गारमण्डगुणाः   | ७३ | पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा | ११३ |
| अत्युष्णमण्डगुणाः | ७३ | आरग्वधपञ्चकम्            | ११४ |
| पूरिकागुणाः       | ७४ | क्षुद्राद्यं पाचनम्      | ११४ |
| पूपकगुणाः         | ७४ | वातकफज्वरचिकित्सा        | ११५ |
| मोमालिकागुणाः     | ७४ | त्रिदोषचिकित्सा          | ११५ |
| केणीगुणाः         | ७४ | सन्निपातज्वरलक्षणम्      | ११६ |
| भिन्नवटकगुणाः     | ७४ | दशाङ्गकाथः               | ११६ |
| अभिन्नवटकगुणाः    | ७४ | हृत्त्यादिपाचनम्         | ११६ |
| मोदकगुणाः         | ७५ | शल्यादिपाचनम्            | ११७ |
| यवपोलिकागुणाः     | ७५ | हृद्द्राक्षादि           | ११७ |
|                   |    | लघुराक्षादि              | ११८ |
|                   |    | त्रिवृतादिमलभेदनः        | ११८ |

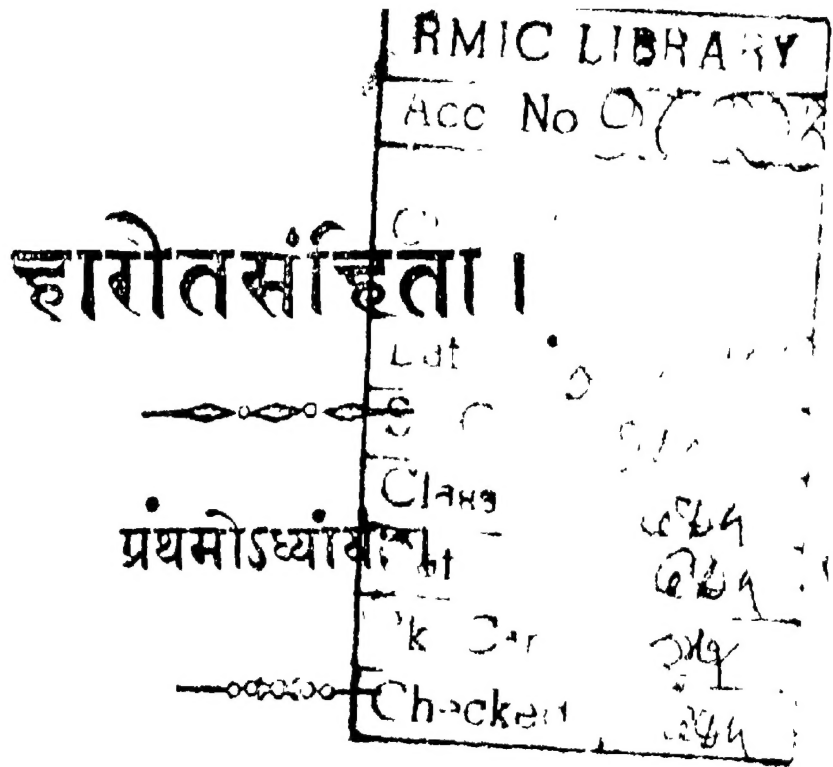
## द्वितीय स्थानम्

७७

|                     |    |                        |     |
|---------------------|----|------------------------|-----|
| पापदोषप्रतीकारः     | ७८ | सन्निपातस्त्रिदोषूलनम् | ११८ |
| स्वप्नाध्यायः       | ८१ | नस्यविधानम्            | ११८ |
| अरिष्टाध्यायः       | ८३ | प्रधमनविधिः            | ११८ |
| व्याध्यरिष्टाध्यायः | ८८ | नेत्राञ्जनविधिः        | ११८ |

|                               |     |                        |     |
|-------------------------------|-----|------------------------|-----|
| निष्ठौषधविधिः                 | ११८ | शोफचिकित्सा            | २३७ |
| वृक्षमूलविधिः                 | १२० | जलोदरचिकित्सा          | २३८ |
| तृतीयकज्वरलक्षणम्             | १२३ | प्रमेहचिकित्सा         | २४० |
| निदिग्धिकादिः                 | १२४ | खटिकामेहचिकित्सा       | २४३ |
| अष्टाङ्गधूपः                  | १२५ | मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा   | २४४ |
| ज्वरमन्त्रः                   | १२६ | मूत्ररोगचिकित्सा       | २४५ |
| चातुर्वर्ण्यज्वराणां चिह्नानि | १२६ | अस्मरीरोगचिकित्सा      | २४७ |
| अतीसारचिकित्सा                | १२८ | वृषणवृद्धिचिकित्सा     | २४८ |
| गुल्मचिकित्सा                 | १४० | विसर्पचिकित्सा         | २५० |
| क्रिमिचिकित्सा                | १४८ | उपसर्गचिकित्सा         | २५१ |
| मन्दाग्निचिकित्सा             | १५२ | घ्नणचिकित्सा           | २५३ |
| अरोचकचिकित्सा                 | १५४ | श्लेष्मदार्तुदचिकित्सा | २५६ |
| शूलचिकित्सा                   | १५५ | लूतागण्डमालाचिकित्सा   | २५७ |
| पाण्डुरोगचिकित्सा             | १६३ | कुष्ठचिकित्सा          | २५८ |
| क्षयरोगचिकित्सा               | १६६ | शिरोरोगचिकित्सा        | २६५ |
| रक्तपित्तचिकित्सा             | १७८ | भूदोषचिकित्सा          | २६८ |
| अर्शोरोगचिकित्सा              | १८७ | नासारोगचिकित्सा        | २६८ |
| कासचिकित्सा                   | १८८ | इन्द्रलुप्तचिकित्सा    | २७० |
| हृदिलक्षणम्                   | २०३ | कर्णरोगचिकित्सा        | २७१ |
| हृदिचिकित्सा                  | २०४ | नेत्ररोगचिकित्सा       | २७२ |
| दृष्ट्यातालुशोषचिकित्सा       | २०६ | पुष्पचिकित्सा          | २७३ |
| मूर्च्छाचिकित्सा              | २०८ | मुखरोगचिकित्सा         | २७५ |
| तन्द्राचिकित्सा               | २१२ | ओष्ठरोगचिकित्सा        | २७५ |
| मदात्ययचिकित्सा               | २१३ | दन्तरोगचिकित्सा        | २७५ |
| देहचिकित्सा                   | २१५ | जिह्वापाकप्रतीकारः     | २७६ |
| अपस्मारचिकित्सा               | २१६ | घण्टिकारोगचिकित्सा     | २७७ |
| सन्नादचिकित्सा                | २२० | गलशूलिकाचिकित्सा       | २७७ |
| वातव्याधिषुचिकित्सा           | २२१ | वृद्धशोषानां वाजीकरणम् | २७८ |
| आमवातचिकित्सा                 | २२१ | बन्धोपक्रमः            | २८० |
| गृध्रसीचिकित्सा               | २२५ | गर्भोच्चारः            | २८३ |
| वातरक्तचिकित्सा               | २२६ | चलितगर्भचिकित्सा       | २८४ |
| अस्त्रपित्तचिकित्सा           | २२७ | गर्भोपद्रवचिकित्सा     | २८४ |

|                         |     |                       |     |
|-------------------------|-----|-----------------------|-----|
| मूढगर्भचिकित्सा         | २८६ | घृष्टचिकित्सा         | ३०४ |
| मृतगर्भस्य लक्षणम्      | २८६ | आस्फालितचिकित्सा      | ३०४ |
| प्रसवोपायमन्त्रौषधानि   | २८७ | अभिघातचिकित्सा        | ३०४ |
| सूतिकोपचारः             | २८८ | अग्निदग्धचिकित्सा     | ३०५ |
| क्षीरवृद्धिकरणम्        | २८८ |                       |     |
| बालचिकित्सा             | २८० |                       |     |
| सत्फलिकाचिकित्सा        | २८० |                       |     |
| बालानां प्रज्ञाकरणम्    | २८१ | हरीतकीकल्पः           | ३०६ |
| बालानां वाक्पटुत्वकरणम् | २८२ | त्रिफलाकल्पः          | ३०८ |
| बालानां पूतनादोषः       | २८२ | रसीनकल्पः             | ३११ |
| भूतविद्या               | २८४ | गग्गुलुकल्पः          | ३१३ |
| विषतन्त्रम्             | २८७ |                       |     |
| मुखसिञ्चनमन्त्रः        | २८८ | सूतस्थानम्            | ३१५ |
| कर्णं जपमन्त्रः         | २८८ | तुलामानविधिः          | ३१५ |
| विषशमनौषधानि            | २८८ | तैलपाकविधिः           | ३१७ |
| जङ्गमविषचिकित्सा        | २८८ | निरुहवस्त्रिकर्मविधिः | ३१८ |
| विषबन्धनमन्त्रः         | २८८ | स्निग्धविधिः          | ३१८ |
| किन्नचिकित्सा           | ३०१ | रक्तावसेचनविधिः       | ३१८ |
| भिन्नचिकित्सा           | ३०१ | जलौकाविधिः            | ३२० |
| शल्योद्धारचिकित्सा      | ३०२ | शारीराध्यायः          | ३२१ |
| भग्नचिकित्सा            | ३०३ | परिश्रिष्टाध्यायः     | ३२७ |



हिमवदत्तरे कूले सिद्धिर्षिगणमेविते ।  
 शान्तमृगगणाकौर्णे नानापादपशोभिते ॥  
 तत्रस्थं तपसा युक्तं तरुणादित्यर्तजसम् ।  
 शुद्धस्फटिकवच्छुभ्रं भूतिभूषितविग्रहम् ॥  
 जटाजूटाटवीमौलिं भासितं शुभ्रकुन्तलैः ।  
 आत्रेयं बहुशिष्यैश्च राजितं तपसान्वितम् ।  
 प्रपच्छ शिष्यो हारोतः सर्वज्ञानमिदं महत् ॥

हारोत उवाच ।

भगवन् ! करुणाधार ! आयुर्वेदविदां वर ! ।  
 विनयादविनीतोऽहं पृच्छामि मुनिपुङ्गव ! ॥  
 कथं रोगममुत्पत्तिः उत्पन्नो ज्ञायते कथम् ।  
 उपचारोऽपचारश्च कथं वा सिद्धिमृच्छति ॥  
 एतत्सम्यक् परिज्ञानं कथयस्व महामुने ! ॥  
 एवं पृष्टो महाचार्यो हारोतेन महात्मना ।  
 प्रत्युवाच ऋषिः शिष्यं प्रहस्योत्फुल्ललोचनः ॥

आत्रेय उवाच ।

शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ । सर्वशास्त्रविशारद ! ।  
 चिकित्साशास्त्रकुशल ! वैद्यविद्याविचक्षण ! ॥

आयुर्वेदोऽपार एव श्लोकानां लक्षसंख्यया ।  
 कथं तस्य परिज्ञानं कालेनाल्पेन पुत्रक ! ॥  
 अल्पायुषोऽल्पवक्तारः स्वल्पशास्त्रविशारदाः ।  
 अल्पावधारणे शक्ताः कलौ जाता इमे नराः ॥  
 अल्पं कलियुगञ्चेदं नरोपद्रवकारणम् ।  
 कथं पुत्र ! प्रवक्ष्यामि विस्तरेण तवागमम् ॥  
 श्रवणे यस्य कालोऽयं याति चान्तञ्च पुत्रक ! ।  
 तस्माच्चाल्पतरेणापि वक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम् ॥  
 चतुर्विंशसहस्रेस्तु मयोक्ता चाद्यसंहिता ।  
 तथा द्वादशसाहस्री द्वितीया संहिता मता ॥  
 तृतीया षट्सहस्रेस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च ।  
 पञ्चमी द्विक्पञ्चशतैः प्रोक्ताः पञ्चात्र संहिताः ॥  
 तस्माच्चाल्पतरेणापि वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ।  
 येन विज्ञानमात्रेण भवेच्च गदवेदवित् ॥  
 किमत्र बहुनोक्तेन चाल्पसारेण पुत्रक ! ।  
 तेन धर्मार्थसौख्यं च तद्वि कर्म समाचरेत् ॥  
 येन सञ्जायते श्रेयो येन कीर्त्तिर्महत्सुखम् ।  
 तत्कर्म नितरां श्लाघ्यं ज्ञानानन्दविधायकम् ॥

एकं शास्त्रं वैद्यमध्यात्मकं वा

सौख्यं चैकं यत्सुखं वा तपो वा ।

वन्द्यश्चैको भूपतिर्वा यतिर्वा

एकं कर्म श्रेयसं वा यशो वा ॥

बहुतरमुपचारात् सारमादाय लोके

जननमपि सुखानां वर्धनं श्रेयसां वा ।

विगतकलुषभावश्चोच्चलत् कीर्त्तिमूर्त्ति-

र्जं खलु कुटिलभावः पूज्यते लोकवृन्दैः ॥

आयुर्वेदस्त्वयं सम्यक् न देयो यस्य कस्यचित् ।  
 नाभक्तायाप्यशान्ताय न मूर्खाय न चाधमे ।  
 शान्ते देयो न देयः स्यात् सर्वथा चाधमाऽधमे ॥  
 धर्मिष्ठोऽकुहको विमार्जितमनाः शान्तः शुचिः शुद्धधी-  
 र्धीरोऽभीरुर्विवेकि सारहृदयो विद्याविलासोज्ज्वलः ।  
 प्राज्ञो रोगगणोपचारनिपुणोऽलुब्धः सदा तोषष्टक्  
 दयं सर्वगुणाकरो नृपजमैः पूज्यः सदा रोगवित् ॥

दृष्ट्वा यथा मृगपतिं गजयूथनाथः  
 संशुष्यमाणमदविन्दुकपोलधारः ।  
 त्यक्त्वा वनं व्रजति चाकुलमानसेन  
 दृष्ट्वा तथा गदगजो भिषजं प्रयाति ॥  
 यद्वत्तमोवृतमिदं भुवनं मयूखैः  
 प्रकाशमाशु कुरुते सकलं रविस्तु ।  
 तद्वत् सुवैद्य उपलभ्य रुजां विनाशं  
 शीघ्रं करोति गदिनं गदमुक्तभारम् ॥

लुब्धः क्रूरः शठजठरभृत् मद्यपश्चालमच्च  
 धीरो भीरुर्विकलहृदयो हौनकर्मार्थमन्दः ।  
 शास्त्राज्ञानोऽप्यविदितगदज्ञानपापण्डुषण्डो  
 वर्ज्यो वैद्यः प्रवरमतिभिर्भूमिपैर्वा सुदूरात् ॥  
 नातिभीतं विशङ्क्य नात्युच्चं नीचमेव च ।  
 यः पठेत् शास्त्रमित्यच्च तस्य शास्त्रं प्रसिध्यति ।  
 चर्वणं गिलनं चापि कासितं श्वासितं तथा ।  
 नीचोच्चं चैव गम्भीरं वर्जयेत् पाठकः सुधीः ॥  
 अनध्यायेत् शास्त्रस्य नोक्तवे यज्ञकर्मसु ।  
 जातके सूतके चाथ पठनं न विधीयते ॥  
 चतुर्दश्यष्टमीदर्शःप्रतिपत्पूर्णिमास्तथा ।

वर्ज्याः पञ्चैव पाठे तु मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ॥  
 आहवे जीवसम्पाते प्रदोषे वायवा पुनः ।  
 राष्ट्रपीडासमुत्पन्ने न कुर्याच्छास्त्रपाठनम् ॥  
 अकाले दुर्दिने गर्जे दिग्दाहे भूमिकम्पने ।  
 शास्त्रपाठस्तथा वर्ज्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥  
 गुरुपीडासमुत्पन्ने नृपे संपीडितेऽथवा ॥  
 द्वादशैते ह्यनध्यायाः प्रोक्ताः शृणुष्व पुत्रक ! ॥  
 एतेषु पठितं शास्त्रं न स्वार्थं सिद्धिसाधकम् ।  
 न श्रेयसे न माङ्गल्ये नोपकारे सुखावहम् ॥  
 एवं ज्ञात्वा पठति निपुणो वैद्यविद्यानिधानं  
 श्रेयस्तस्य प्रतिदिनमसौ वाञ्छितार्थः प्रसिध्येत् ।  
 तस्मात् सौख्यं भवति नितरां कीर्त्तिलोकप्रशंसम् ।  
 पूज्यो राज्ञां सततमपि वै जायते स्वार्थसिद्धिः ॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यगुणवर्णनशास्त्रपठनविधिर्नाम  
 प्रथमोऽध्यायः ।

### द्वितीयोऽध्यायः ।

आत्रेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शास्त्रस्यास्य समुच्चयम् ।  
 आयुर्वेदसमुत्पत्तिं सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥  
 अष्टौ चात्र चिकित्साश्च तिष्ठन्ति भिषजां वर ! ।  
 ता वक्ष्यामि समासेन चिकित्साश्च पृथक् पृथक् ॥  
 संग्रहेऽथ प्रवक्ष्यामि प्रथमं चान्नपानकम् ।  
 अरिष्टं च द्वितीयं स्यात्तृतीयं च चिकित्सितम् ॥  
 कल्पं चतुर्थकं प्रोक्तं सूत्रस्थानन्तु पञ्चमम् ।  
 षष्ठं चात्र शरीरं स्यादित्यायुर्वेदकारकाः ॥



शल्यशालाक्यकायाश्च तथा बालचिकित्सितम् ।  
 अगदं विपतन्त्रञ्च भूतविद्या रसायनम् ॥  
 वाजीकरणमेवेति चिकित्सा चाष्टधा स्मृता ।  
 वैद्यागमेषु सर्वेषु प्रोक्तं श्रेष्ठं महामते ! ॥  
 तथा चाष्टौ चिकित्सायां वदन्ति वेदविज्जनाः ।  
 यन्त्रशस्त्राग्निक्षीराणामौषधं पथ्यमेव च ॥  
 स्वेदनं मर्दनं चैव कथितान्यपराणि च ।  
 एतत् वैद्यकशास्त्रस्य सारं भवति सर्वतः ॥

अथ शल्यतन्त्रलक्षणम् ।

यन्त्रशस्त्रप्रबन्धैस्तु येन चोद्ध्रियते भिषक् ।  
 स च शल्योद्धरणकः प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥  
 नाराचक्ष्णशूलाद्यैर्भक्षैः कुन्तेश्च तोमरैः ।  
 शिलादिभिर्भिन्नगात्रं तत्र स्यात् यदि शल्यकम् ॥  
 तत्प्रतीकारकरणं तच्च शल्यचिकित्सितम् ।  
 तथा व्रणं समुद्दिष्टं तृणपांश्वीपिकाकृतम् ॥  
 रक्तवर्त्ती तथा पेशी पूयश्लेपगतञ्च यत् ।  
 तत् शल्यमिति जानीयात्क्षोष्टकाष्ठादिभिन्नकम् ॥

इति शल्यतन्त्रम् ।

अथ शालाक्यतन्त्रलक्षणम् ।

शिररोगा नेत्ररोगाः कर्णरोगाः विशेषतः ।  
 भ्रूकण्ठगङ्गमन्यासु ये रोगाः सम्भवन्ति हि ॥  
 तेषां प्रतीकारकर्म नासावर्त्तगतानि च ।  
 अस्थिङ्गं सुखगण्डूपक्रिया शालाक्यसम्भवा ॥

इति शालाक्यतन्त्रम् ।

अथ कायचिकित्सातन्त्रलक्षणम् ।

कषायगुटिकाद्यैस्तु पाचनी शोधनी च या ।

कोष्ठामयानां शमनी क्रिया कायचिकित्सीता ॥

इति कायचिकित्सातन्त्रम् ।

गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा ।

बालानां रोगशमनं क्रिया बालचिकित्सीतम् ॥

इति बालचिकित्सातन्त्रम् ।

गुदामयवस्तिरुजं शमनं वस्तिरुहकम् ।

आस्थापनानुवासन्तु अगदं नाम एव च ॥

इति अगदं नाम ।

सर्पहृत्त्रिकलूतानां विषोपशमनी तु या ।

सा क्रिया विषतन्त्रञ्च नाम प्रोक्तं मनीषिभिः ॥

इति विषतन्त्रम् ।

ग्रहभूतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीग्रहाः ।

एतेषां निग्रहः सम्यक् भूतविद्या निगद्यते ॥

इति भूतविद्यातन्त्रलक्षणम् ।

देहस्येन्द्रियजातानां दृढीकरणमेव च ।

वलोपलितखालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया ।

पूर्ववैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते ॥

इति रसायनतन्त्रम् ।

इति अष्टाङ्गवैद्यकम् ।

क्षीणानां चाल्पवीर्याणां वृंहणं बलवर्द्धनम् ।

तर्पणं सप्तधातूनां वाजीकरणमुच्यते ॥

इति वाजीकरणतन्त्रम् ।

क्षिन्नं भिन्नं तथा भग्नं क्षतं पिष्टितमेव च ।

दग्धं तेषां प्रतीकारः प्रोक्तश्चोपाङ्गसंज्ञकः ॥

इति उपाङ्गचिकित्सा ।

इति वैद्यकसर्वस्वं चिकित्सागमभूषणम् ।

पठित्वा तु सुधीः सम्यक् प्राप्नोति सिद्धिसङ्गमम् ।

इति वैद्यकसर्वस्वे चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

### तृतीयोऽध्यायः ।

अथ वक्ष्यामि रोगाणामुपचारक्रमं तथा ।

जानाति यो बधः सम्यक् पूज्यते स नृपोत्तमैः ॥

ज्ञात्वा रोगसमुत्पत्तिं रोगाणामप्युपक्रमम् ।

स्वकार्यकुशलो वैद्यस्तस्य कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥

देशं कालं वयो वङ्गं मात्सरं प्रकृतिभेषजे ।

देहं सत्वं बलं व्याधेर्दृष्ट्वा कर्म समाचरेत् ॥

धर्मार्थकामलाभः स्यात् सम्यगातुरसेवनात् ।

तदनाचरतस्तस्य विनाशश्चात्मनस्तथा ॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।

एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

द्विविधोपक्रमश्चैव शमनः कोपनो रुजाम् ।

तमेव ज्ञात्वा विबुधः क्रियां कुर्याद्विचक्षणः ॥

वैद्योऽपि द्विविधो ज्ञेयो विकारज्ञोऽथरोगजित् ।

उपचारापचारज्ञो द्विविधः प्रोच्यते भिषक् ॥

उपचारेण शमनमपचारेण कोपनम् ।

एवं विज्ञाय सदैवः कुर्यात् संशमनीं क्रियाम् ॥

साध्योऽसाध्यश्च याप्यश्च कृच्छ्रसाध्यस्तथैव च ।

व्याधिस्तुर्विधः प्रोक्तः सदैवैः शास्त्रकोविदैः ॥

अपचारेण साध्याऽपि रोगा गच्छन्ति याप्यताम् ।

याप्यास्त्वसाध्यतां यान्ति साध्याः कष्टेन पुत्रक ! ॥

सम्भवन्ति महारोगाः कष्टसाध्या भवन्ति ते ।  
 एवं चतुर्विधं व्याधिं ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥  
 उपचारकृता दोषाः कृच्छ्रास्ते यान्ति याप्यताम् ।  
 याप्याः साध्यत्वमायान्ति कष्टसाध्यं भवेद्गुह्यम् ॥  
 सुखमाध्ये सुखी शीघ्रं स्यात् सुधीभिरुपक्रमैः ।  
 साध्यासाध्यपरिज्ञानं ज्ञात्वोपक्रमणं तथा ॥  
 साध्यभूतो यदा रोगो दोषशेषं न धारयेत् ।  
 दोषशेषेऽपि कष्टं स्यात्तस्माद्यत्नान्निवर्त्तयेत् ॥  
 यथाहिः काले दुष्टः स्यात् यथा सूक्ष्मोऽग्निजः कणः ।  
 स्वल्पस्तद्वत् क्रियाऽप्राप्नो गदो घोरतरो भवेत् ॥  
 तथा दोषस्य शेषस्तु न शमं याति चाल्पशः ।  
 दैवात् तद्दृष्टतां याति यथाग्निः कुपितो भृशम् ॥  
 यथा काष्ठचयं प्राप्य भवेत् घोरतरोऽग्निकः ।  
 तथापथ्यस्य संयोगात् भवेत् घोरतरो गदः ॥  
 कषायैश्च शतैश्चूर्णैः पिण्डलेहानुवासनैः ।  
 सर्वाः क्रिया भृशं व्यर्था न शमं याति चामयः ॥  
 एवं ज्ञात्वा सदा वैद्यो रोगशान्तिककारणम् ।  
 कर्त्तव्यं मतियोगेन येन रोगः प्रशाम्यति ॥  
 ज्ञात्वा दोषबलं धीमान् लङ्घनानि समाचरेत् ।  
 दोषे सति न दोषाय लङ्घनानि बह्वन्यपि ॥  
 पचेत् प्रथममाहारं दोषानाहारसंक्षये ।  
 दोषक्षयेऽनलो धातून् प्राणान् धातुक्षये सति ॥  
 ज्ञात्वा बलाबलं व्याधिः सामं निराममेव च ।  
 चरेत् सामे पाचनं स्यान्निरामे पथ्यसंक्रमः ॥  
 सामं निराममथ साध्यमसाध्यमेव  
 सम्यक् रुजश्च परिलक्ष्य रुजां विनाशम् ।

एतद्भवेत् सकलवैद्यकशास्त्रसारं

नैवायुषश्च बलदानकरो हि वैद्यः ॥

नो वैद्यां मनुजस्य सौख्यमथवा दुःखञ्च दातुं क्षमो

जन्तोः कर्मविपाक एव भुवने सौख्याय दुःखाय च ।

तस्मान्मानवदुःखकारणरूजां नाशेषु चात्र क्षमो

वैद्योऽयं च सुधाढ्यधाम चतुरो नाम्नैव वैद्योऽपरः ॥

सम्यक् रूजां परिज्ञानं ज्ञात्वा दोषविनिग्रहम् ।

प्रत्याख्येयञ्च यः साध्यं जानाति स भवेत् भिषक् ॥

तपस्वी च ब्राह्मणश्च स्त्रियो वा बालकस्तथा ।

दौनो वा दुर्बलो वापि प्राज्ञो वा पण्डितस्तथा ॥

महात्मा श्रोत्रियः साधुरनाथो बन्धुवर्जितः ।

एतान् व्याधिविनिग्रस्तान् प्रतिकुर्याद्विशेषतः ॥

राजा च सुधनी चैव माण्डलीको बलाधिपः ।

उपचार्योऽर्थसिद्धिः स्याद्वित्तं ग्राह्यं भयं न च ॥

मध्यमो बणिजां श्रेष्ठः पुरोधा ब्राह्मणादयः ।

भट्टो वा गणिकागुण्यो चिकित्स्यास्तु विशेषतः ।

रोगग्रस्तेषु चैतेषु चिकित्सा कीर्त्तिकारिणी ॥

व्याधश्चौरस्तथा म्लेच्छो वल्ग्वदो मत्स्यबन्धकः ।

बहुद्वेषी ग्रामकूटो बन्धकी मांसविक्रयी ।

एतेषां व्याधिग्रस्तानां नैव कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥

एतेभ्यः स्वार्थसिद्धिर्नो नोपकारोऽथ मङ्गलम् ।

तेषां जीवातुसन्दानात् वैद्यो भवति दोषभाक् ॥

एवं ज्ञात्वा तु सद्द्वैद्यः कुर्यादथ प्रतिक्रियाम् ।

धर्मार्थकामसम्पत्तिः कीर्त्तिर्लोके प्रवर्त्तते ॥

इति बहुविधियुक्तः वैद्यविद्याविचारः

क्षणमपि हृदये यो धारणं संकरोति ।

स भवति गदसंघस्याशु विध्वंसशक्तो

विमलविदितकीर्तिः पूज्यमानो नरेन्द्रैः ॥

इति चात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यशिष्यविधानो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि देशकालबलाबलम् ।

सात्त्विकं प्रकृतिदेहञ्च तथाग्नीनां विशेषणम् ॥

देशस्तु त्रिविधो ज्ञेयो ह्यानूपो जाङ्गलस्तथा ।

साधारणो विशेषेण ज्ञातव्यास्ते मनोषिभिः ॥

बहुतरशुभनद्यश्चारूपानीयजुष्टाः

सरमिजसमुपेता शाङ्गला मारभूमिः ।

हरितकुसुममाला शालिकेदाररम्या

दिनकरकरदीप्तिं वाञ्छते यत्र लोकः ॥

गुरुमधुररमाद्या भाति चेक्षुः सदार्द्रा

विविधजनितवर्णाः शालिगोधूमपूर्णा ।

मधुररसविभोज्या मानवानां प्रकोपं

भजति कफसमीरं स्यात्तदानूपदेशः ॥

इति ह्यानूपलक्षणम् ।

खरपरुषविशालाः पर्वताः कण्टकीर्णा

दिशि दिशि मृगतृणा भूरुहाः शोर्णपर्णाः ।

अतिखररविरश्मिः पांशुभृत् शुष्कभूमिः

सरसरसविहीनः कूपकाश्वः प्रकर्षः ॥

तदनु विरसशस्याहारुणो गोमनुष्यः

प्रभवति रसमांसं रूक्षभावश्च सम्यक् ।

पुनरपि हिमवाहं शालिशस्यं न चेक्षुः

भवति रुधिरपित्तं कोपमाशु ह्युपैति ॥

इति जाङ्गलदेशलक्षणम् ।

उभयगुणसमेतं नातिरूक्षं न स्निग्धं  
न च खरबहुलं च स्नेहनं कण्टकाढ्यम् ।  
भवति च जलमल्पं नातिशीतं न चोष्णं  
समप्रकृतिसमेतं विद्धि साधारणं च ॥

इति साधारणदेशलक्षणम् ।

कालस्तु त्रिविधो ज्ञेयोऽतीतोऽनागत एव च ।  
वर्त्तमानस्तृतीयस्तु वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥  
कालः कालयते लोकं कालः कलयते जगत् ।  
कालः कलयते विश्वं तेन कालोऽभिधीयते ॥  
कालस्य वशगाः सर्वे देवर्षिसिद्धकिन्नराः ।  
कालो हि भगवान् देवः स साक्षात् परमेश्वरः ॥  
सर्गपालनसंहर्त्ता स कालः सर्वतः समः ।  
कालेन कल्पयते विश्वं तेन कालोऽभिधीयते ॥  
येनोत्पत्तिश्च जायेत येन वै कल्पयते कला ।  
सत्त्ववांस्तु भवेत् कालो जगदुत्पत्तिकारकः ॥  
यः कर्मणि प्रपश्येत प्रकर्षे वर्त्तमानके ।  
सोऽपि प्रवर्त्तको ज्ञेयो कालः स्यात् प्रतिकालकः ॥  
येन मृत्युवशं याति कृतं येन लयं व्रजेत् ।  
संहर्त्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात् कलनापरः ॥  
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।  
कालः स्वपिति जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥  
काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः ।  
नरेन्द्राः सर्वजीवाश्च काले सर्वे विनश्यति ॥  
त्रिकालात् परतो ज्ञेय आगन्तुर्गतचेष्टकः ।  
सूक्ष्मोऽपि सर्वगः सर्वः व्यक्ताव्यक्तकृतः शुभः ॥  
तथा वर्षाहिमोष्णाख्यास्त्रयः काला इमे मताः ।

तथा त्रयोऽन्येऽपि ज्ञेया उद्यन्मध्यास्तरूपिणः ॥

इति कालज्ञानम् ।

अथ ऋतुचर्या ।

वर्षा शरच्च हेमन्तः शिशिरश्च वसन्तकः ।  
 ग्रीष्मश्चेति क्रमादेते ऋतवः एवं षट् प्रकीर्त्तिताः ॥  
 पृथक् पृथक् प्रवक्ष्यामि रवेर्गतिविशेषतः ।  
 प्रकोपं शमनं ज्ञात्वा अयने द्वे स्मृते बुधैः ॥  
 दक्षिणायनमेकं स्यात् द्वितीयं चोत्तरायणम् ।  
 वर्षा शरच्च हेमन्तो दक्षिणायनमध्यगाः ॥  
 शिशिरश्च वसन्तोऽपि ग्रीष्मः स्यादुत्तरायणे ।  
 याम्ये गतिर्यदा भानोस्तदा चान्द्रगुणा मही ॥  
 वारि शीतलसम्भृतं शीतं तत्र प्रजायते ।  
 बलिनो मधुरास्तिक्ताः कपायास्तु विशेषतः ॥  
 जीवानां साक्ष्यमुत्तुल्यमोषधीनां च वीर्यतः ।  
 आर्द्रत्वं भूधराणाञ्च दिशश्चाप्यतिशीतलाः ।  
 मक्लेटा पृथिवी सर्वा तस्मादार्द्रकर्फाल्वणा ॥  
 कथञ्चित् शरदे पित्त कोप यातो विलीयते ।  
 तस्मादृतुविपर्ययादुपचारेण शाम्यति ॥  
 यदोदीच्यां गतिर्भानोस्तदा सूर्या बलाधिकः ।  
 तस्मादुष्णगुणास्तीव्राः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥  
 खरसूर्यांशुजालैस्तु शुष्यते तेन काननम् ।  
 संशुष्का मेदिनी सर्वा दिशः पर्णादिसङ्कुलाः ॥  
 बलिनोऽस्त्रकटुक्षाराः सम्भवन्ति विदाहिनः ।  
 तस्मात् संकुप्यते पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥  
 ओषधिरसः संशुष्को गोजातीनां पयांसि च ।  
 अल्पं बलं च जन्तूनां कथञ्चित् कफसम्भवः ॥



दृश्यते वै वसन्ते च स्वयमेव समं व्रजेत् ।

एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक् कुर्यात् सर्वां प्रतिक्रियाम् ॥

अथ ऋतुलक्षणम् ।

सघनवारिदवारिसमाकुला निखिलभूः प्रवलोदकपूरिता ।  
 समदवातकरा विदिशो दिशः प्रमुदितकुमिकौटभृता मही ॥  
 नीलशस्यहरितोज्ज्वला मही कुल्यका सलिलसंस्तुता सरित् ।  
 इन्द्रगोपकराजिविराजिता पङ्कभूषणविभूषिता धरा ॥  
 उद्भिज्जपूर्णस्तुरुभूधराश्च रम्यं वनं वा मधुरं विकूजति ।  
 भृङ्गा मयूरा जलदस्य घोषः सर्वेऽपि जीवा बलमाप्नुवन्ति ॥  
 केकी कूजति कानने च सरसी स्नानाम्बुपूर्णा तथा  
 हंसा मानसमाव्रजन्ति कमलान्यस्नानतां यान्ति च ।  
 गर्जन्नेघमहेन्द्रकन्दरदरी शस्यावृता श्यामला  
 भात्येवं पवनस्य कोपनकरो वर्षाऋतुः शोभितः ॥  
 किञ्चित् घर्मी भवेदत्र शस्यानां दृढता भवेत् ।  
 बहुशस्या भवेद्वाती वारिपूर्णा सरिम्बहुः ॥  
 नद्यः पूर्णाभ्रसोत्खातशीर्णपातास्तटद्रुमाः ।  
 कुल्याप्रसवणानान्तु स्रवत्यम्भो दिशो दशः ॥  
 बह्वदकधरा मेघा बहुवृष्टा घनस्वनाः ।  
 एवंगुणसमायुक्ता वर्षा ज्ञेया ऋतूत्तमा ॥  
 तस्यां वातकफौ दुष्टौ जायेते च नृणां भृशम् ।  
 इति ज्ञात्वा भिषक्श्रेष्ठः कुर्यात्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥  
 स्वेदनं मर्दनं पथ्यं निर्वाते शयनं तथा ।  
 गौररामारतं शस्तं व्यायामः क्रमविक्रमः ॥  
 कटुसूक्ष्मरसुरसाः सेव्याः वातकफापहाः ।  
 निरुह्या वस्तिकर्माद्याः कफवातरुजापहाः ॥

इति वर्षाऋतुः ।

मेघाः सूर्यशिलासमानरुचयो ह्यल्पस्रवाल्पस्वना  
 हंसालीजलजालिमण्डितजलः पद्माकरः शोभनः ।  
 तीव्रस्निग्धमयूखचन्द्रविमला स्वानन्दिनी कौमुदी  
 चित्रा घर्मविपक्वतोयसुरसा स्यान्निर्मलं पुष्करम् ॥  
 अत्र शीतलता याति वियोगं भजतां नृणाम्  
 पित्तानां रुधिराणाञ्च प्रकोपो जायते भृशम् ॥  
 शृतं क्षीरं सिता पथ्यं चन्द्रिकासेवनं निशि ।  
 श्यामरामारतं शस्तं प्रभाते निर्मलं दधि ॥  
 कामिन्यालिङ्गनानन्दः स्नानं सुशौतलैर्जलैः ।  
 एवं प्रशमनं दृष्टं शरत्पित्तप्रकोपने ॥

इति शरद्विचारः ।

बहुशीतः समीरोऽत्र ह्यल्पवामरता ऋतौ ।  
 अल्पतेजा दिवानाथो धृमाकुलितदिग्भवेत् ॥  
 विस्तीर्णशालिकेदारा नीलधान्योज्ज्वला मही ।  
 एवंगुणममायुक्तो हेमन्तश्च भवेत् ऋतुः ॥  
 तत्र वातकफा दोषा दृश्यन्ते कुपिता भृशम् ।  
 अग्निसंसेवनं पथ्यं कटुक्षाराम्लसेवनम् ॥  
 गौररामारतं शस्तं व्यायामश्च प्रशस्यते ।  
 एवं संशम्यते दोषः कफवातसमुद्भवः ॥  
 बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः ।  
 भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः ॥  
 दैर्घ्यात् निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः ॥  
 अतो हिमेऽस्मिन् सेवेत स्वादुम्ललवणान् रसान् ।  
 अवश्यकार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ।

इति हिमन्तीविचारः ।

बहुलशिशिरधारा किञ्चिदुद्भूतशस्या  
भवति वसुमतीयं पक्षशस्यैस्तु पीता ।  
कथमपि तुहिने स्यात् श्लेष्मणः सञ्चयस्तत्  
पवनकफविकारो जायते शैशिरे च ॥  
गौरारामातमतिशयेनारुणाम्बराणि  
सेव्यं तिक्तं कटुकलवणं प्रायशो ह्यम्बमेव ।  
स्वेदोष्णं प्रतिदिनमिदं कारयेदव सम्यक्  
नाशं चातोऽनिलकफगदो याति तस्य प्रकोपः ॥

इति शिशिरोपचारः ।

मुदितकोकिलकूजितकाननं मदनसूचककिंशुकशोभितम् ।  
कुसुमसौरभरञ्जितभूधरं कणितमत्तमधुव्रतलालसम् ॥  
मकरकेतनवाणसमाकुलं मुदितमेव समस्तमिदं जगत् ।  
मलयमारुत उष्णगुणान्वितः कफकरो हि वसन्त ऋतुर्भवेत् ॥  
कफजकोपविनाशनानलं वमननावनरुक्षनिषेवणम् ॥

विविधः सुरतानन्दः संश्रमः कफवारणः ।

कटुक्षाराम्लकाः सेव्याः शोधनं कफसम्भवे ।

व्यायामश्रमसंरोधखिन्नो विश्रान्तमानसः ॥

एवं क्रियासमापन्नो नरः शीघ्रं सुखी भवेत् ॥

इति वसन्तोपचारः ।

दीर्घवासरकं तौक्ष्णं ज्वालामालाकुलं जगत् ।  
दिग्भि दिशि ऋगल्लङ्घना चोष्णं भृशं भवेद्रजः ॥  
नैर्ऋतो मारुतो रुक्षः शीर्णपर्णा महीरुहाः ।  
दग्धं ल्लङ्घनाकुलारण्यं दावारिग्लसङ्कुला दिशः ॥  
एवं लक्षणके ग्रौष्मे पित्तरक्तमुदीर्यते ।  
तस्मात् क्रियाप्रतीकारं कुर्यात् संश्रमनं भिषक् ॥

जलक्रीडा दिवानिद्रासेवनं सुखसाधनम् ।  
 श्यामरामारतं शस्तं कुञ्जकिञ्जल्कशीतलम् ॥  
 नीलनालदलोपेतः श्रमघ्नो व्यजनानिलः ।  
 केतक्यामोदकुसुमचन्दनोशीरशीतलैः ॥  
 लेपनं शीतलं सम्यक् धारागाराश्रयः पुनः ।  
 एवं क्रियासमापन्नो ग्रीष्मे च सुखसङ्गमः ॥

इति ग्रीष्मोपचारः ।

इति चात्रेयभाषिते ऋतुषण्या नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

### पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो वयोज्ञानं वक्ष्यते ।

वयश्चतुर्विधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ।  
 हीनं चातुर्थिकं प्रोक्तं तानि वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥  
 बालं युवानं वृद्धं च मध्यमं च तथैव च ।  
 चतुर्विधं वयः सम्यक् तत् समासेन वक्ष्यते ॥  
 पथिश्रान्तः श्रमक्षीणः बालस्त्रीसुकुमारकः ।  
 एतेषां मध्यमा संज्ञा प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥

इति मध्यमवयः ।

वयसः षोडशाधिक्यं समयः स्याद्भवेत्तु यः ।  
 आविंशति समाः प्राप्तौ यथा च कथदेहवान् ।  
 पूर्णवयः श्रियः प्राप्तौ मध्यमे चाधमं वयः ॥  
 पञ्चविंश समोर्ध्वेदापञ्चाशद्वतः पुमान् ।  
 कर्मकठोरो वलवांश्चेत्येतदुत्तमं वयः ॥  
 चतुर्विंशमोर्ध्वं यावत् स्यात् सप्तविंशतिः ।  
 बालवृद्धिस्तथा यस्य इत्येतदुत्तमं वयः ॥  
 पूर्णवयःश्रियं प्राप्त इत्येतदुत्तमं वयः ।

सप्तविंशसमोर्द्धश्च पञ्चाशदव्याप्य यः समाः ॥  
 अरुग्णो ब्रह्मचारौचेदित्येतदुत्तमं वयः ॥  
 स्थूलोऽतिदीर्घः कठिनस्तथा श्रीमान् महोदयः ।  
 इति तूत्तमवयसां ज्ञातव्यश्चोत्तमोत्तमः ॥

इत्युत्तमवयः ।

सप्तत्यूर्द्धेऽशीतिसीमप्राप्तं हीनबलं वयः ।  
 तदूर्द्ध्वं हीनहीनञ्च विज्ञेयो वयसः क्रमः ॥

इति हीनवयः ।

क्षीणोऽध्वश्रान्तः संखिन्नस्तथा रोगानुपीडितः ।  
 रुक्षश्चातिरुग्णो ज्ञेयो बालसात्म्य उदाहृतः ॥  
 सुकुमारोऽतिभौरुश्च मध्यकायः स्त्रियोऽपि वा ।  
 मध्यसात्म्योऽपि विज्ञेयो मध्यमो वयसात्मकः ॥  
 मध्यसात्म्यः पृथुः धीरो बलवान् सत्ववान्नरः ।  
 सोऽप्यत्युत्तमसात्म्यः स्यादबलवन्त मुपाचरेत् ॥  
 आपाङ्गशाङ्गवेहालः पञ्चविंशं युवा नरः ।  
 मध्यमः सप्ततिं यावत् परतो वृद्ध उच्यते ।  
 पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्समावधिः ।  
 द्वादशाब्दं स्मृता बाला मुग्धा स्यात् सप्तमावधिः ॥  
 प्रोढा च नववर्षाणि प्रगल्भा च त्रयोदशे ।

इति वयः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रकृतिज्ञानमुत्तमम् ।  
 वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥  
 : कृष्णवर्णश्चपलोऽतिसूक्ष्मकेशोऽल्परूक्षो बलवान् कृशः स्यात् ।  
 क्षोऽतिदन्ती नखवृद्धिमेति दीर्घस्वनश्चङ्क्रमणक्षमोऽसौ ॥  
 'र्धक्रमो लोलुप ऊनसत्त्वस्तथैव चाम्लादिकभोजनेच्छुः ।

संस्वेदनेनातिविमर्दनेन सौख्यं समागच्छति वातलो ना ॥

इति वातप्रकृतिः ।

गौरोऽतिपिङ्गः सुकुमारमूर्तिः सितश्च पीतो मधुपिङ्गनेत्रः ।  
तीक्ष्णोऽतिकोपः क्षणभङ्गुरश्च त्रासी मृदुर्गात्रपलीतकश्च ॥  
जल्पप्रियस्तिक्तरसानुभोजी द्वेषी च तीक्ष्णो न स चोष्णमेवौ ।  
स्तुतिप्रियो दन्तविशुष्कवर्णो जातः सपित्तप्रकृतिर्मनुष्यः ॥

इति पित्तप्रकृतिः ।

सुस्निग्धवर्णः सितमेघदोषः श्यामः सुकेशो नखदोषरोगमा ।  
गम्भीरशब्दः शुनशास्त्रनिद्रातन्द्राप्रियस्तिक्तकटुष्णभोजी ॥  
सुमांसलः स्निग्धरसप्रियश्च मगौतवाद्योऽतिमहिष्णुचित्तः ।  
व्यायामशीलो रतलालसाऽसौ भवेत् कफात्मप्रकृतिर्मनुष्यः ॥

इति कफप्रकृतिः ।

संमिश्रवर्णोऽतिमृदोमगात्रो गम्भीरधीरोऽतिविवर्णरोगमा ।  
रासाप्रियो भावसहोऽतिमित्रो भोगेन युक्तः स ममः प्रकृत्या ॥

इति ममप्रकृतिः ।

अथान्तरं वर्चसि मरुत्प्रवाहं पूर्वं तथा पश्चिमदक्षिणादिम् ।  
तेषां गुणान् दोषविकोपनं च पृथक् पृथक् मे गदतः शृणु त्वम ।  
शीतोऽतिसाधुर्यगुणप्रयुक्तो वातप्रकोपो बलकृद्विशेषात् ।  
वाताधिक्याना ब्रणशीफिनाश्च प्राचीपवृत्तः पवनो न शस्तः ॥  
किञ्चित् सतिक्तो मधुरान्वितः स्यात् कफः समौरोद्भवरीगकारी ।  
सुशीतलः शाफवतां ब्रणानां शस्तो न चाग्नेयममौरणश्च ॥  
तिक्तः कपायो मधुरोऽतिमन्दः सुगन्धसस्निष्टगुणैः प्रकृष्टः ।  
वदन्ति संज्ञां मलदानिलेति प्रकृष्टरामाजनचित्तहारौ ॥  
मनोभवस्य प्रकरा मरुत् स्यात् कफोद्भवः सम्भवति प्रचारः ।  
न चातिशीतो न तथोष्णको वा शुभश्च यास्यां प्रभवः समौरः ॥  
रुक्षो हि वातप्रशमः सदोष्णः वातास्रपित्तासृजि दोषकारी ।

प्रशोषणो देहबलस्य तीव्रः कफान्वितो नैर्ऋतिकः समीरः ॥  
 प्रस्त्रोऽतिरूक्षो मरुतश्च शान्तिं करोति प्राचीनदिशः प्रवृत्तः ।  
 वायुस्तथोदीरति रक्तपित्तं शस्तो व्रणानां कफशोफिनां वा ॥  
 वायव्यजातो पवनः प्रशस्तः कषाय संशोषगुणः प्रसन्नः ।  
 करोति वातस्य चयं नूराणां शस्तो न निन्द्यो व्रणशोफिनाञ्च ॥  
 स्वादुः कषायश्च कफप्रकोपी वायुः कुवेरस्य दिशः प्रवृत्तः ।  
 करोति मेघागमनं जलाढ्यं शीतो न चोष्णो न च निन्द्य एषः ॥  
 गौतोऽतिगौरः कफवातकोपं करोति चैशानदिशः प्रवृत्तः ।  
 शस्तो न कुष्ठव्रणशोफकासक्षयेषु च श्वासविकारिणाञ्च ॥

इति अष्टादिकप्रवृत्ती वायुः ।

व्यजनं विविधं वास्तं वैणवं तालवृन्तजम् ।  
 श्रीगौरं शिखिपुच्छन्तु प्रत्येकं हि गुणोत्तमम् ॥  
 वस्तप्रवृत्तः पवनो न शस्तो व्रणशोफिनाम् ।  
 रक्तवामः समुत्पन्नं विशेषेण तु वर्जयेत् ॥  
 करोति कफरक्तस्य कोपनं बहुरोगकृत् ।  
 अमर्लानिपिपासासु तन्द्रानिद्राकरो भृशम् ॥

इति यस्य वायुः ।

वैणवं व्यजनं तन्द्रानिद्राकरणमेव च ।  
 रूक्षोऽतिकषायरमो न च वातप्रकोपनः ॥

इति वैष्णवायुः ।

तालपुत्रमरुद्रुक्षः कोणो वातस्य शान्तिकृत् ।  
 दाहश्चमघ्नः स्वेदघ्नो निद्रामौख्यकरो नृणाम् ॥  
 तालपत्रकरम्भाया दलस्य व्यजनं हिमम् ।  
 मधुरोऽतिश्चमघ्नः स्यादार्द्रत्वात् कफकोपनः ॥  
 निद्राकरः प्रीतिकरः शोषरोगविकारहा ।

दाहपित्तश्रमग्लानिनाशनो भ्रमशान्तिकृत् ।

मधुरोऽतिशुभघ्नः स्यादार्द्रत्वे कफकोपनः ॥

इति तालपत्रवायुः ।

उशीरमूलरचितं व्यजनं शिखिपुच्छकैः ।

व्यजनेन सुगन्धः स्यान्मन्दशीतगुणालकः ॥

ग्लानिमूर्च्छाभ्रान्तिशोष विमर्षविषदर्पहा ।

इति पञ्चविधो वायुरूपायेन कृतो नृणाम् ॥

इति व्यजनवातगणाः ।

शिशिरे पूर्वदिग्वायुराग्नेयो हिमके मरुत् ।

वसन्ते दक्षिणो वायुर्ग्रीष्मे नैऋतिकस्तथा ॥

वर्षासु पश्चिमो वायुर्वायव्यः शरदि स्मृतः ।

शिशिरे च हिमचैव च कथितश्चोत्तरोऽनिलः ॥

प्राह्णे वर्षऋतुं वदन्ति निपुणास्तस्मिन्निग्रीधे शरत् ।

प्रोक्तः शैशिरिकस्ततो हिमऋतुः सूर्योदयादग्रतः ॥

मध्याह्ने च तथा वदन्ति निपुणा ग्रीष्मेति नामा ततः ।

वासन्ती कथिता ऋतुस्तु मुनिभिः पूर्वापराह्णे सदा ॥

कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे चाषाढसंज्ञके ।

ऋतुसन्धौ च हेमन्ते सविषोवाति मारुतः ॥

इति दिनमध्यं षट्ऋतुपचारः ।

स यस्मिन् पथि वा देशे ग्रामे वा नगरेऽपि वा ।

संस्पृशेदुल्लवणो वायुर्गोमनुष्येभवाजिनाम् ॥

तिलकं गोषु जानीयाद्यक्ष्माणं मानुषेषु च ।

गजेषु पावकं विद्याद्वयानां वेद्य उच्यते ॥

रक्षणीयं गजे पित्तं श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ।

पवनोऽयं मनुष्याणां प्रायो रक्षेत सर्वदा ॥



वर्षावायुः कुप्यतेऽन्तः शरत् लीनो वायुः कुप्यते पित्तरोगे ।  
लीनं पित्तं शैशिरे श्लेष्मकस्तु हेमन्ते वा चीयमानस्तथापि ॥

कोपं याति श्लेष्मरोगो वसन्ते  
तस्माच्छान्तिः श्लेष्मरोगस्य चोष्णे ।  
पित्तं यात्युत्कोपतां ग्रीष्मकाले  
दृष्टा शान्तिः पैत्तिकी वार्षिके च ॥

इति दोषाणां वायुकोपशमः ।

तथा वातसूत्रे पुरीषे च रुद्धे  
कषायेऽतिशीते निशाजागरे च ।  
व्यवायेऽथ बाह्यमाश्वातिभोज्याद्  
ध्वनी प्रायशो भाषणे चातिभीतौ ॥

रुक्षैरतिचारितक्तेः कटुभिस्तथा रथे मन्दिरारोहणे वा ।  
दोलाश्वके चोद्ग्रे कुञ्जरे वा कोपो भवेन्मारुतसोपवासे ॥  
शीते दिने दुर्दिने स्नानपाने प्राङ्गे निशाजागरे वासरान्ते ।  
वर्षासु वै केवलं याति कोपं मरुत्प्राणिनो याति भुक्तस्य जीर्णे ॥

मसूराः कलायास निष्पावकाश्च  
महामाषशुभ्राथवा चामलाः स्युः ।  
महान् कालमाः कृष्णधान्याः प्रदिष्टाः  
हिमाः कङ्गुनीवाररक्ताभशालिः ॥  
तथा कोरदूषाः श्यामाक एतैः  
कृतं चोदनं वा यवागूम्भृतं वा ।  
कलिङ्गानि वास्तुक चिक्लीक पूति  
पलाण्डूस्तथा गृष्मनं कन्दशाकः ॥  
इमान् सेवमानः प्रयाति प्रकोपं

समौरण्य नृतं सुरापानतोऽपि ।

ततो यत्नतो रक्षणाय मनुष्यैः

शुभं चेदभीष्टं सदा रोगशान्तिम् ॥

इति वायुप्रकोपः ।

अत्यणरुक्षान्नास्तकटप्रदाहैः सिधोः सुरासेवनेनातिघर्मे ।

क्रोधादपि स्वेदने च व्यवाये अभोजने ग्राति कोपश्च पित्तम् ॥

कुलत्याढकी यूपमूलेषु शिग्र-

तिलातमौराजिका शाकवृन्दे ।

निशाजागरे योधने च अमे वा

घनान्ते शरत्सु प्रकोपः प्रदिष्टः ॥

भृशं वासरे मध्यगेऽर्के निशीथे

सुजीर्णं प्रभुक्ते प्रकोपः प्रदिष्टः ।

इति पित्तप्रकोपस्य निदानम् ।

निशाजागरे वासरे वातिसुप्तौ सुशीतोदके सेविते शीतले च

पयःपानपीयूषकेक्षुतैलैस्तथा गृञ्जनैः कन्दशाकैरथापि ॥

सदा सेवितैस्तु मत्सण्डिमत्सैर्मदैश्च माषैर्गुरुभिश्च पिच्छिलैः ।

स्निग्धातिसंसेवने भुक्तिमात्रे प्रदिष्टः कफस्य प्रकोपो वसन्ते ॥

दिनान्ते प्रभाते निशान्ते नरस्य

भुक्तेऽप्यजीर्णे प्रकोपः प्रदिष्टः ।

प्रदिष्टस्तथा कोविदैरेष रोगः

कफोत्पत्तिजन्योहि सः कष्टयोगः ॥

मशीतेऽथवा शीतकाले निशान्ते

नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोऽपि भुक्ते ।

न जीर्णे प्रदिष्टस्तथा रोगवेगः

निदानं कफस्येति चोक्तं सुधौभिः ॥

इति कफप्रकोपः ।

यदा विपर्यासगते ऋतौ च प्रकोपनं यस्य यथा प्रदिष्टम् ।

तत् सेवमानस्य नरस्य रोगः स्याद्वृद्धजो नाम विकारकारी ॥  
यस्मिन्नृतौ वातविकोप उक्तस्तस्मिन् यदि श्लेष्मविकोपनानि ।  
संसेवते वा मनुजस्तदास्य भवेत् प्रकोपः कफपित्तयोश्च ॥  
ऋतौ तथापि प्रवदन्ति धीरा यस्मिन् मरुत् कुप्यति सेवते च ।  
पित्तस्य कोपप्रकराणि यानि विपर्ययो वा ऋतुभोज्ययोश्च ।  
स पित्तवातप्रभवस्तदा स्यादेवं सुनीनां सुधियां मतं हि ॥

इति वृद्धजानां समुद्भवः ।

विपर्ययासागते काले रसे विपरिसेविते ।

तदा स्यात् सन्निपातो हि रोगोपद्रवकारकः ॥

इति सन्निपातोत्पत्तिः ।

इति आद्ययभाषिते हारीतीक्षरे दोषप्रकाशे नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

### षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसानाञ्च गुणागुणान् ।

येन विज्ञानमात्रेण रसानां गुणविद्भवेत् ॥

मधुरः कषायस्तिक्ताम्लकश्च क्षारः कटुः षड्रसनामधेयम् ।

द्वयं द्वयं वातकफप्रकोपनं द्वयं तथा पित्तकरं वदन्ति ॥

क्षारः कषायः पवनः प्रकोपो मधुरोऽथ तिक्तः कफकोपनश्च ।

कटुम्लकौ पित्तविकारकारिणौ स्वादुम्लकौ वातशमौ प्रदिष्टौ ॥

पित्तस्य नाशौ मधुरः सतिक्तः कटुः कषायः शमनौ कफस्य ।

अन्योन्यमेतत् शमनं वदन्ति परस्परं दोषविहृद्धिर्मेति ॥

मधुरकटुकावन्योन्यस्य प्रकर्षविधायिनी हि

लवणाव्युक्तोऽम्लकः प्रोक्तो विशेषरसानुगः ।

अविकृतस्तथा तिक्तैर्यतः कषायरसो लघुः

भवति सुतरां स्वादुः श्रेष्ठो गुणं करोति वै ॥

कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् ।

कटुम्ललवणाः पित्तं स्वादुम्ललवणाः कफम् ॥

एते रसा एतेषां दोषाणां विरुद्धाः ।

क्रमेणैते रसा दोषानेतान् संजनयन्ति हि ।

समीरणे तु नो देयाः कटुतिक्तकषायकाः ।

पित्ते कटुम्ललवणाः स्वादुम्ललवणाः कफे ॥

एते दोषाणां दोषकराः ।

स्वादुम्ललवणान् वाते तिक्तस्वादुकषायकान् ।

पित्ते कफे तिक्तकटुकषायान् योजयेद्रसान् ॥

योगादपि पुनर्दृष्टः अस्त्रेण लवणेन च ॥

स्वादुस्तथा कषायेण मधुरं तिक्तकेन च ।

क्षाराणां कटुभिः माहं तिक्तानाञ्च कषायकैः ।

विरोधो मधुरेणास्त्रे तदयत्नेन विवर्जयेत् ॥

मधुरास्त्रौ क्षारकटुको तिक्तकषायको चेत्येतावन्योन्य-  
रसविरोधनौ भवेताम् ।

अथ घृणां रसानां रसवीर्यम् ।

यः स्वादुः अमशोषहृच्च बलकृद्दीर्घप्रदः पुष्टिदः

प्रोक्ष्वासं रसने करोति तदनु श्लेष्मप्रवृद्धिं नयेत् ।

पित्तानां दमनः भ्रमोपशमनो वृथ्यो नराणां हितः

क्षीणानां क्षतपाण्डुनेत्ररुज संहर्त्ता भवेदुवैरसः ॥

इति मधुरवीर्यम् ।

तिक्ताख्यो वत वातलोऽपि हि नृणां कुष्ठादि दोषापहः

सोऽन्तः सर्वरुजापहो भ्रमहरो रुच्योऽपि संक्लेदहृत् ।

जिह्वास्फोटकनाशनोऽथ भवति क्षौणक्षतानां हितो

वक्त्रोत्क्रान्तिहरः प्रकृष्ट गुणधृत् निम्बादिकानां रसः ॥

इति तिक्तवीर्यम्

नेत्रं स्रावयते मुखं विदहते कर्णं समुद्वेजयेत्  
 औभक्षं तनुते भृशञ्च विकुरुते पित्तासृजां कोपनम् ।  
 अग्नेदीपनकृत् क्षणं विदहते जीर्णेन शस्तो भवेत्  
 वातानाहरते कफञ्च दहते ह्येवं कटु रौद्रकः ॥

इति कटुसर्वोप्यम् ।

जिह्वाक्लेदं जनयति तथा नेत्रैर्मल्यकारी  
 औभक्षं वा जनयति तथा वातरोगापहारौ ।  
 कण्डुकुष्ठक्षतरुजकरो नो हितः शोफिनः स्या-  
 दम्बः प्रोक्तो मरुतशमनोऽसृक्प्रकोपं तनोति ॥

इति अमरसर्वोप्यम् ।

जिह्वा कण्ठं ग्रसति नितरां ग्राहकश्चातिमार्गि  
 श्लेष्मव्याधिरुपशमकरः श्वामकामापहर्त्ता ।  
 त्रिकृशाशूलं हरति नितरां शोधनः स्याद्व्रणानां  
 प्रोक्तश्चायं समधिकगुणो नाम श्रृंष्ठः कषायः ॥

इति कषायसर्वोप्यम् ।

क्षारः क्लेदं जनयति मुखे स्वादुरुष्णो विदाही  
 ग्लान्श्लेष्मारुचिभृशतृषामूत्रकृच्छोषणश्च ।  
 आनाहं संजनयति पुनर्वह्निमभ्युत्थणः स्यात्  
 एवं प्राक्तं विदितगुणकैः कोविदैः क्षारवीर्यम् ॥

इति क्षारवीर्यम् ।

इति षड्विंशो नाम षष्ठीऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि पानीयानि पृथक् पृथक् ।  
 समासेन शृणुष्व त्वं गुणानपि विपर्ययम् ॥  
 द्विविधं चोदकं प्रोक्तमान्तरिक्षं तथौद्भिदम् ।

आन्तरिक्षं तु द्विविधं गाङ्गं सामुद्रिकं पयः ॥  
 तद्वच्चतुर्विधं प्रोक्तमन्तरोक्षसमुद्भवम् ।  
 भूमौ निपतितं तच्च जातं चाष्टविधं जलम् ॥  
 अम्बरस्थं च सामुद्रं वापीकूपोदकं तथा ।  
 नदी तडागजं प्रोक्तं निर्भरं चौण्डयजं तथा ॥  
 इति चाष्टविधं प्रोक्तं नवमं नारिकेलजम् ।  
 गाङ्गसामुद्रविज्ञानं कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥  
 धारितं येन पात्रेण लक्ष्यते तेन तद्विधम् ॥  
 धौतं शुद्धं मितं वस्त्रं चतुर्हस्तप्रमाणकम् ।  
 दण्डांस्त्रिहस्तांश्चतुरश्वतुष्कोणेषु बन्धयेत् ॥  
 तस्मात् परीक्ष्यते तोयं शुद्धं रौप्यमयेऽथवा ।  
 कांस्यपात्रे समुद्धृत्य परीक्षेत भिषग्वरः ॥  
 शुद्धकर्पासतूलं वा श्वेतशाल्योदनस्य वा ।  
 पिण्डिका तत्र संचिप्ता नान्यथा भाति सा पुनः ॥  
 श्वेता तु निर्मला पिण्डो शुद्धश्च विमलं पयः ।  
 तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं गृहीत्वा हि सुभाजने ॥  
 तद्वारयेच्च मतिमान् बल्य मेध्यं रसायनम् ।  
 अमल्लमपिपासाघ्नं कण्डूदोषनिवारणम् ॥  
 लघु मूर्च्छातृषाच्छर्दिमूत्रस्तम्भविनाशनम् ।  
 गङ्गोदकस्य वृष्टिः स्याद्विवसे वा प्रदोषतः ॥

इति गाङ्गोदकपरीक्षा

आविलं समलं नीलं घनं पीतमथापि च ।  
 सत्त्वारं पिच्छिलं चैव सामुद्रं तन्निगद्यते ॥  
 सघनं कफकृत्तच्च कण्डूक्षीपदकारकम् ।  
 तद्वातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्तिकारणम् ॥

इति सामुद्रोदकः

इति द्विधोटकं प्रोक्तं तथा वक्ष्ये चतुर्विधम् ।  
 शरदि निपतेद् भूमौ कराम्बु वर्षतो रवेः ॥  
 मेघा वमन्ते यत्तोयं सशैलवनकानने ।  
 रात्रिहृष्टिर्दिवाहृष्टिर्दृदिनादि क्षणोद्भवः ॥  
 निशाजलं कफकरं घनं शीतगुणात्मकम् ।  
 मामुद्धतोयेन समं विज्ञेयं वातकोपनम् ॥  
 दिवा सूर्यांशुतप्ताश्च मेघा वर्षन्ति यत्पयः ।  
 तत्कफघ्नं पिपासाघ्नं लघुवातप्रकोपनम् ॥  
 दृदिने हृष्टिसम्भूतं वातभूतञ्च वातलम् ।  
 कफक्ष्णोषहृन्तं तर्पणं दोषकोपनम् ॥  
 तथा श्रावणहृष्टिश्च दोषरोगकरो नृणाम् ।  
 किन्तु त्रिदोषजननं पानीयं न प्रशस्यते ॥

इति श्रावणहृष्टिगुणाः ।

मघनं नाभमं नीरं श्लेष्मकृद्वातकोपनम् ।  
 शमनं पित्तरोमाणां मधुरं रक्तदोषकृत् ॥

इति भाद्रपदहृष्टिगुणाः ।

रूक्षं पित्तकरं चास्त्रं गुल्मरक्तविकारकृत् ।  
 चित्रानक्षत्रसम्भूतं सर्वशस्यविदोषकृत् ॥

इति आश्विनहृष्टिगुणाः ।

कार्तिके हृष्टिसम्भूतं नातिसन्तापि शीतलम् ।  
 नाशनं च त्रिदोषाणां सर्वशस्यप्रवर्द्धनम् ॥  
 शीतलं बलकृद्वृष्यं त्रिदोषज्वरनाशनम् ।  
 क्वचित् पुण्यतरे देशे शरद्वर्षान्विता भवेत् ॥  
 पित्तज्वरविनाशाय शस्यनिष्पत्तिहेतवे ।  
 अम्बरस्थं सदा पथ्यममृतं स्वातिसम्भवम् ॥  
 शशनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यच्च भोजने ।

बल्यं रसायनं मेध्वं पात्रापेक्ष्यं ततः परम् ॥  
 प्रवृत्तायां शरदस्मात् पश्चाद्वाते प्रवाति च ।  
 हेमन्ते चापि गृह्णीयात्तज्जलं मृण्मयैर्घटैः ॥  
 अनार्त्तवं विमुञ्चन्ति जलं जलधरास्तु यत् ।  
 पतितं तत् त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनामपि ॥  
 कार्त्तिक्यादिचतुर्णान्तु मामानां कौर्त्तिता गुणाः ॥

इति कार्त्तिकवृष्टिगुणाः । इति चातुर्मासिक जलम्

अकाले वृष्टिमप्यातसम्भृतं तद्विकारकृत् ।  
 विशेषात् श्लेष्मरोगाणां कारणं न प्रशस्यते ॥

अथान्यच्चतुर्विधं जलं व्याख्यायते ।

तथा धारञ्च कारञ्च तीषारं हैममेव च ।  
 चतुर्विधं समुद्दिष्टं तेषां वच्मि गुणागुणान् ॥  
 धारं चतुर्विधं प्रोक्तं वक्ष्ये कारं महामते ।।  
 श्रोमतामथ प्राज्ञानां हिताय रोगशान्तये ॥  
 स्वर्णद्याः शीतवातेन मेघविस्फूर्जसङ्कुलम् ।  
 शीताम्बु, कठिनं भूत्वा शिलं जातं हिमेन तु ॥  
 पश्चात् सूर्यांशुमन्तापात् किञ्चिद्दे द्रवते जलम् ।  
 वमन्ति सलिलं मेघाः सकलं शीतलं मतम् ॥

इति कारकोत्पत्तिः

कारं शीतगुणैः अमोपशमनं शोषार्त्तिनिर्नाशनम् ।  
 हिक्कायाश्च वमेनिवारणकरं शोफव्रणानां पुनः ॥  
 निःशेषेण विशेषदोषशमनं पित्तात्मिकानां हितम् ।  
 शंसन्ति प्रवरा गुणैः प्रतिकृतं तस्मान्न दूरं कृतम् ॥

इति कारकजलगुणाः ।

तीषारं लघु शीतलं अमहरं पित्तार्त्तिशान्तिप्रदं  
 दोषाणां शमनं जलार्त्तिहननं सर्वामयघ्नं परम् ।



कुष्ठक्षीपदचर्चिकाविषहरं पामाविसर्पापहं  
क्षीणानां क्षतशोषिणां हितकरं संसेव्यते मानवेः ॥

इति तुषारपानीयगुणाः ।

हैमं घनञ्च मधुरञ्च कफात्मकञ्च  
मूर्च्छाभ्रमूर्त्तिशमनं श्रमनाशनञ्च ।  
पित्तासृजां प्रशमनं रुधिरक्षयादौ  
शान्तिं करोति हिमसम्भववारि सद्यः ॥

इति हिमपानीयगुणाः ।

इति धारकारवीषारहैमजलगुणाः ।

आर पृथिव्यां पतितं पयस्तु तत्रैव जातं गुणभेदभिन्नम् ।  
नानाविधैर्भेदगुणैश्च सम्यग् जातं जलं चाष्टविधं वदन्ति ॥  
आदोद्भिद प्रास्रवणञ्च क्षीणं क्रीपं तडागात् सरसोभवञ्च ।  
आप्यद्भवं तत् प्रवदन्ति धीरा नीरं समामेन निगद्यतेऽत्र ॥  
आत् श्रीमताञ्चैव सहायतीनां सेव्यं तथा भोग्यतमं प्रदिष्टम् ।  
आदास्त्र्यमाधुर्यगुणं लघु स्याद्रूतं तथोष्णं शमनञ्च वायोः ॥  
आदोपनं नन्दनमेव शस्तं हिमागमे वा शिशिरं च सेव्यम् ।

इति नदीपानीयगुणाः ।

आदोद्भिदघूणा खलु वातहारि मपित्तलृणाज्वरनाशनञ्च ।  
आष्टव्रणानां श्रमशोषिणाञ्च शस्तं न च क्षारगुणोपपन्नम् ॥

इति आदोद्भिदवारगुणाः ।

आणां कषायं स्रवणोद्भवञ्च श्लेष्मापहं गुल्महृदामयघ्नम् ।  
आमोविसर्पक्षयरोगहारि नानाविधं दोषलयं कराति ॥

इति प्रस्रवणवारिगुणाः ।

दन्ति क्षीणं लवणं गुरुत्वभाक् कफात्मकं वारि विकारकारि  
इका ज्वरं शूलमरोचनञ्च करोति नूनं त्वचि दोषरोगम् ॥

इति क्षीणोदकगुणाः ।

क्षारं कषोणं कफवातरोगविनाशनं पित्तकरं कटुत्वात् ।  
तस्मात् सदा पित्तविकारिणाञ्च शस्तं न वाप्यं शरदो वदन्ति  
इति वायोदकगुणाः ।

रूक्षं कफघ्नं लवणात्मकञ्च सन्दीपनं पित्तकरं लघूणम् ।  
कूपोदकं वातहरं प्रदिष्टं हितं न शस्तं शरदो वदन्ति ॥  
७६२७३ इति कूपोदकगुणाः ।

घनं कषायञ्च तडागजं स्यात् विपाचकं तन्मधुरं तथैव ।  
शरत्तु शस्तं कफक्षुद्रि वातलं शोष्णे हितं तत् प्रवदन्ति धीराः  
इति तडागोदकगुणाः ।

क्षारं घनं वातकफानुकारि त्वग्दोषक्षत्तत् कटुदोषनञ्च ।  
प्रोक्तं विपाकं भ्रमशोषकारि स्यात् सारसं नो सुखकारि वारि  
इति सारसवारिगुणाः ।

इति चाष्टविधं प्रोक्तं जलं भेषजवित्तमैः ।

नादेयं संप्रवक्ष्यामि सदा स्रोतोऽधिवेगजम् ॥

तथा प्राच्यां गमाश्चान्याः पश्चिमानुगमास्तथा ।

तेषां गुणागुणं वक्ष्ये समासेन गुणोत्तमम् ॥

ससैकता सपाषाणा द्विविधा चास्ववाहिनौ ।

एवं चतुर्विधा नद्यो वातपित्तकफात्मिकाः ॥

सदावह्ना वा घनवारिकोणा मरुत् कफानां शमनञ्च तस्याः

नौरं वसन्ते हितकृद् विशेषात् नदीभवं नैव हिमागमे च ॥

घनविमलशिलानां स्फालनाज्जातफेनं

बहुलसजलवौचिच्छन्नसंक्षोभदृप्तम् ।

ननु लघु च सुशीतं नैव क्षोणं घनञ्च

हरति पवनपित्तं श्लेष्मकृद्धारि सम्यक् ।

इति सपाषाणनदीवारिगुणाः ।

न घनविमलतोयं सैकतायाः प्रवाहे

न च भवति लघुत्वं श्लेष्मकृद्वन्ति पित्तम् ।

भवति मधुरमेवं किञ्चिदुष्णं कषायं  
भवति च शुभकृत्तच्छोषमूर्च्छां निहन्ति ।

इति सुवासुकनदीवारिगुणाः ।

हिमवत् प्रभवा नद्यः पुण्या देवर्षिसेविताः ।  
घनपाषाणसिकतावाहिन्यो विमलोदकाः ॥  
हन्ति वातकफं तोयं श्मशोषविनाशनम् ।  
किञ्चित् करोति वा पित्तं त्रिदोषशमनं जलम् ॥  
मलयप्रभवा नद्यः शीततोयामृतोपमाः ।  
घन्ति वातश्च पित्तश्च श्मशोषश्चमापहाः ॥  
गङ्गा सरस्वती शोणो यमुना सरयूः सची ।  
वेणा इरावती नीला उत्तरात् पूर्ववाहिनौ ॥  
हिमवत् प्रभवा ह्येता हिमसम्भवशीतलाः ।  
समाः सर्वगुणैर्नद्यः वातश्लेष्महरा नृणाम् ॥  
आसां नव शतैर्युक्ता गङ्गा पूर्वसमुद्रगाः ।  
तथा तम्रवती वैतवती पारावती तथा ॥  
सिन्धु महाप्रदीपा च ऋषिकुल्या पयस्विनी ।  
शेवती शैबलिन्यश्च सिन्धुयुक्ताः समुद्रगाः ॥  
वातपित्तहरं नीरं त्रिदोषघ्नमतःपरम् ।  
श्मग्लानिहरं वृष्यमुत्तराशानुगामि च ॥

इति नद्योत्तरानुगाः ।

तापो तापाच गोलोमो गोमती शालिता मही ।  
सरस्वती युता नद्यो नर्मदा पश्चिमानुगाः ॥  
आसां जलं घनं शीतं पित्तघ्नं कफकृत्तया ।  
वातदोषहरं हृद्यं कण्डुकुष्ठविनाशनम् ॥  
पश्चिमाद्रिसमुद्भूता गौतमी पुण्यभावना ।  
अस्याः शीतं जलं चापि कफवातविकारकृत् ॥

पित्तप्रशमनं वल्यं मूत्रदोषविकारकृत् ।  
 पुण्या पयस्विनी वेत्ता प्रणीता च वरानना ॥  
 द्रोणा गोवर्धनो चान्या गौतम्यानुगता इमाः ।  
 आमां जलं घनं नाति वातश्लेष्मविकारकृत् ॥  
 पूर्वमागरगाश्चैव नद्यो नवशतैर्युताः ।  
 कावेरी वीरकान्ता च भीमा चैव पयस्विनी ॥  
 विभावरी विशाला च गौरिदा मदनस्वमा ।  
 पार्वती चापरा नद्यो दक्षिणाद्रिगमा इमाः ॥  
 प्रत्येकशो न सेवेत युक्तायाश्च पृथक् पृथक् ।  
 सर्वासां परिसंख्या च शतानाञ्चैकविंशतिः ॥  
 क्रोशं क्रोश भवेत् कूल्या योजने योजने नदी ।  
 याजनद्वयतो ज्ञेया महानोरा बुधैर्नदी ॥  
 भूमिः पञ्चविधा ज्ञेया कृष्णा रक्ता तथा सिता ।  
 पीता नीला भवेच्चान्या गुणास्तासां प्रकीर्तिता ॥  
 कृष्णा च मधुरा रूक्षा कषाया पीतवर्णिनी ।  
 रक्ता सा च भवेत्तिक्ता मधुरास्ना सिता स्मृता ॥  
 नीला सकटुका ज्ञेया भूमिभागा जल विदुः ।  
 मधुनं मधुरं नीरं कृष्ण भूमिपरिश्रितम् ॥  
 पीताश्रितं कषायञ्च रक्तायां क्षारमाधुरम् ।  
 सितायामम्लमधुरं भूमिभागेन लक्ष्येत् ॥

इति भूमिभागजलम्

तथा चतुर्विधं तोयं वक्ष्यामि शृणु कोविद ।।  
 पापादकं तथा रोगादकमंशूदकं परम् ॥  
 आरोग्योदकमित्येवं वारौणां भेद ईरितम् ।  
 विष्ठाजुष्टं ग्राहि नीरं क्षमिकौटसमाकुलम् ॥  
 समलं नीलशैवालं पापञ्च नर्दितञ्च यत् ।

स्नाने पाने न तत् शस्तं नराणां वाह्वेषु च ॥  
 स्नानेन त्वगतं रोगं कण्डुकुष्ठविसर्पकृत ।  
 पानेन कफगुल्माद्यान् कृमिजान् रसमम्भवान् ।  
 करोति विविधान् रोगान् तस्मात् तं परिवर्जयेत् ॥

इति पापोदकगुणाः ।

विण्मूत्रौ तृणनीलिका विषयुतं तप्तं घनं फेनिलम् ।  
 दन्तग्राह्यं मनात्तेवं हि मलिलं दुर्गन्धिं वै गर्हितम् ॥  
 नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पणौघपङ्काविलम् ।  
 चन्द्राकींशसुगोपितं न च पिवेन्नीरं सुदोषान्वितम् ॥  
 बहुवृक्षलताकुञ्जच्छायः कूपोऽथवा सरः ।  
 अथयं चाप्यधस्तीयं कृमिशैवालसंयुतम् ॥  
 क्लिन्नं सपिच्छलं कृष्णं वृक्षमूलाश्रितं च यत् ।  
 बहुपर्णसमायुक्तं दुर्गन्धं मूत्रगन्धवत् ॥  
 रोगोदकं विजानीयात् करोति विषमान् गटान् ।  
 गुल्मप्लीहाशः पाण्डुश्च जलं वापि जलोदरम् ॥  
 शूलं कुष्ठञ्च कण्डूञ्च सेवितेन करोति हि ।

इति रोगोदकगुणाः ।

दिवासूर्यांशुमन्तप्तं रात्रौ चन्द्रांशुशीतलम् ।  
 अशूढकमिति ख्यातं सर्वरोगनिवारकम् ॥  
 कफमेदोऽनिलघ्नञ्च दीपनं वस्तिशोधनम् ।  
 श्वामकामहरं नीरं चक्षुष्यं नेत्ररोगहृत् ॥

इति अशूढकगुणाः ।

पाटशेषन्तु कथितं तच्चारोग्यजलं विदुः ।  
 कामश्वामहरं पथ्यं मारुतञ्चापकर्षति ॥  
 मद्यां ज्वरं हरत्याशु भेदकञ्च कफापहम् ।  
 प्रतिश्यायं पाचयति शूलगुल्माशनाशनम् ॥

टीपनञ्च हुताशस्य पाण्डुशोफीदरापहम् ।

अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥

इति आरीग्योदकम् ।

मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तान्धिते पुनः ।

मन्निपातममृत्ये च तत्र शीतोदकं हितम् ॥

शरदीव तथा ग्रीष्मे काथेत् पाटावशेषितम् ।

शिशिरे च वसन्ते च कुर्यादुर्द्धावशेषितम् ॥

विपरीतमृतुं दृष्ट्वा प्रावृषं वार्द्धभागिकम् ।

काथ्यमानञ्च निर्वगं निष्फेनं निर्मलञ्च यत् ॥

अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ।

तत्पादहोनं वातघ्नं चाङ्गं पित्तविकारजित् ॥

कफघ्नं पादशेषन्तु पानीयं लघु पाचनम् ।

धारापाते हि विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् ॥

मृतशीतं त्रिदोषघ्नं कफान्तं भ्रमिशीतलम् ।

दिवसे कथितं तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् ।

रात्रौ मृतन्तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥

इति एषोदकगुणाः ।

मदात्यये सदाहे च रक्तपित्ते तथोर्द्धगे ।

रक्तमेहे विशेषेण नोष्णतोयं प्रशस्यते ॥

पाश्वं शूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ।

आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ।

अजीर्णं च तथा काशे न शीतमुदकं हितम् ॥

प्रतिश्याये प्रसेके च ज्वरे कुष्ठे व्रणेषु च ।

शोफे नेत्रामये चैव मन्दाग्नौ च तथा क्षये ॥

सूतिजातासु नारीषु रक्तस्रावेऽप्यरोचके ।

एतेषां सिद्धिमिच्छद्भिः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥

क्षीर्णेऽमे क्षुत्प्रपन्ने च पित्तं हन्त्युदरानलम् ।  
 करोति गुल्मं शूलं वा तथा आन्ते बह्वदकम् ॥  
 तस्मात्क्षीर्णेऽनलं हन्ति अजीर्णे वारि भेषजम् ।  
 भुक्त्यन्तात्परतः शस्तं पीतं वारि गुणात्मकम् ॥  
 अध्वशान्ते क्षुधाक्रान्ते शोफक्रोधातुरेषु च ।  
 विषमासनोपविष्टे पीतं वारि रुजाकरम् ॥  
 तस्मात् प्रसन्ने मनसि पानीयं मन्दमाचरेत् ।  
 तृष्णा गरीयसी घोरा मद्यः प्राणविनाशिनी ।  
 तस्माद्देयं तृषार्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् ।  
 तृषितो मोह मायाति मोहात् प्राणान् विमुञ्चति ॥  
 अतः सर्वास्ववस्थासु न कचिद्धारि वाय्यते ।  
 आदौ पीतं दहत्यग्निं मध्ये पीतं रमायनम् ॥  
 तदन्ते च जलं पीतं तज्जलं दुर्जरं भवेत् ।  
 भोजनादौ जलं पीतमग्निसादं कृशाङ्गताम् ॥  
 अन्तं करोति स्थूलत्वं मूर्ध्नि मामाशयात् कफम् ।  
 मध्ये मध्याङ्गतां साम्यं धातूनां जरणं सुखम् ॥

इति तीयपानविधिः ।

इति श्रीमहर्षिर्विद्यभाषिते हारीतोत्तरे तीयवर्गे नाम

सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि क्षीरवर्गन्तु वत्सक ! ।  
 दधि सर्पिर्वसा तक्रं तेषां सर्वगुणागुणम् ॥  
 यद् यदाहारजातन्तु रसं क्षीरशिरानुगम् ।  
 सरो जलञ्च भुक्तञ्च तथा पित्तेन संयुतम् ॥  
 पाचितं जाठरे वक्त्रौ पित्तेन सह मूर्च्छितम् ।

पच्यमानं शिराप्राप्तं क्षीरं तद्विद्धि पुत्रक ! ॥  
 तेन क्षीरमिति ख्यातमग्निसोमात्मकं पयः ।  
 अमृतं सर्वभूतानां जीवनं बलकृन्मतम् ॥  
 हारीतः संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ।  
 कथं रमस्य सम्पत्तिः कथं मञ्ज्वीयते विभो ! ॥  
 कथं रक्तस्य संस्थाने क्षीरं पाण्डुत्वं मीयते ।  
 कथं तत्र कुमारौणां बन्ध्यानां न कथं भवेत् ॥  
 एवं पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ।  
 शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ ! यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥  
 क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तं पाकतां गतम् ।  
 रक्तं श्वेतत्वं मायाति तथा क्षीरं सितं भवेत् ॥  
 क्षीरनाड्यौ कुमारौणां बन्ध्यानां न कथं भवेत् ।  
 अल्पधातुबलं यस्मात् तस्मात् क्षीरं न जायते ॥  
 बन्ध्यानां क्षीरनाड्यस्तु वातेन परिपूरिताः ।  
 क्षीरञ्च न भवेत्तस्मादार्त्तत्वं चाधिकं यतः ॥  
 प्रसूतासु च नारीषु बलेन सह सूयते ।  
 तेन स्त्रोतोविशुद्धिः स्यात् क्षीरमाशु प्रवर्तते ॥  
 तस्मात् सद्यः प्रसूतायां जायते श्लेष्मिकं पयः ।  
 तेन काठिन्यमायाति तस्मात् तत् पक्विवर्जयेत् ॥  
 स्त्रोतोविशुद्धिकरणं बलकृद्दोषनाशनम् ।  
 पयस्त्रिदोषशमनं वृष्यञ्चाग्निप्रवर्द्धनम् ॥  
 कृष्णा वृष्या च वातघ्नी पयस्तस्या विशिष्यते ।  
 श्वेता पयः श्लेष्मकञ्च वातिकं रक्तिकापयः ॥  
 पित्तमंशमनी पीता तस्याः क्षीरं विशिष्यते ।  
 कृष्णासृक् पित्तसंयुक्ता श्वेता श्लेष्मगुणान्विता ॥  
 कफवाताश्रिता पीता रक्ता वातगुणान्विता ।



अहर्द्वर्षगुणास्तदवज्ज्ञातव्याश्च महामते ! ॥

धारोणां शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् ।

शृतोष्णमाबिकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥

ाव्यं पवित्रञ्च रमायनञ्च पथ्यञ्च हृद्यं बलपुष्टिदं स्यात् ।

प्रायुःप्रदं रक्तविकारपित्तत्रिदोषहृद्दोगविषापहं स्यात् ॥

इति गवां पयोगुणाः ।

हागं कषायं मधुरञ्च शीतं ग्राहि क्षयक्षिप्तघ्नं पित्तहारि ।

तामज्वराणां रुधिरातिसारं हितं पयश्कागलजं त्रिदोषजित् ।

इत्यजापयोगुणाः ।

श्रीरभ्रं मधुरं रूक्षमुष्णं वातकफापहम् ।

न शस्त रक्तपित्तिनां वातिकानां हितं भवेत् ॥

इति मेषोपयोगुणाः ।

स्नग्धं मरुच्छीतकरञ्च तन्द्रानिद्राकरं वृष्यतमं श्रमघ्नम् ।

ालप्रदं पुष्टिकरं कफस्य मञ्जीवनं माहिषमुच्यते पयः ।

इति सहिषीपयोगुणाः ।

रूक्षं तथोष्णं लवणं कफस्य निवारणं वातविकारहारि ।

तद्यु प्रशस्तं कटुकं कुमीणां शोफार्शमामीष्ट्रपयोऽनुकूलम् ॥

इति उष्ट्रीपयोगुणाः ।

मञ्जीवनं वृंहणमेव सात्त्व्यं सन्तर्पणं नेत्ररुजापहञ्च ।

पित्तस्य रक्तस्य च नाशनञ्च नारीपयः स्नेहनमेव शस्तम् ।

इति नारीपयोगुणाः ।

निशाशीतांशुसंशीतं निद्रालस्यश्रमानुगम् ।

कफक्षत् सघनं शीतं क्षीरं प्राभातिकं भवेत् ॥

इति प्राभातिकक्षीरगुणाः ।

वासरे सूर्यसन्तापात् सदोष्णं कफवातजित् ।

हितं तत्पित्तशमनं सुशीतं भोजने निशि ॥

इति दिनक्षीरगुणाः ।

अल्पास्त्रुपानव्यायामात् कटुतिक्ताशनैर्लघु ।  
 पिण्याकास्त्राशिनीनान्तु गुर्वभिष्यन्दि शीतलम् ॥  
 क्षौणानां दुर्बलानाञ्च तथा जीर्णञ्चरार्दिते ।  
 दीप्ताग्नीनामतन्द्रानां अमशोषविकारिणाम् ॥  
 व्यवायिस्त्रुवौर्याणां श्वासिनां विण्माग्निनाम् ।  
 राजयक्ष्मायुतानाञ्च क्षीरपानं विधीयते ॥  
 न शस्तं लवणैर्युक्तं क्षीरं चास्त्रेन वा पुनः ।  
 करोति कुष्ठं त्वग्दोषं तस्मान्नैव हितं मतम् ॥

इति क्षीरपानविधिः ।

आम्लं स्वादुरमं ग्राहि गुरुणं वातरोगजित् ।  
 मेढः शुक्रवल्लेष्म रक्तपित्ताग्निशफक्तम् ॥  
 स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम् ।  
 वातापहं पवित्रञ्च दधि गव्यं गुणप्रदम् ॥

इति गवा दधिगुणाः ।

आजं दधि भवेक्षोणं क्षयवातविनाशनम् ।  
 दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्निप्रदीपनम् ॥  
 विपाके मधुरं वृष्यं रक्तपित्तप्रसादनम् ।  
 शस्तं काश्यापहं प्रोक्तं वातपित्तनिवर्हणम् ॥

इति आजदधिगुणाः ।

घनं माहिषमुद्दिष्टं मधुरं रक्तदोषकृत् ।  
 कफशोफहरं शस्तं पित्तकृत् वातकोपनम् ॥

इति माहिषदधिगुणाः ।

आविकं पित्तकृद्वातशमनं कफकोपनम् ।  
 गुल्माशःकुष्ठरोगे च रक्तपित्ते न शस्यते ॥

इति आविकदधिगुणाः ।

आरदं दधि गुर्वम्लं रक्तपित्तविवर्द्धनम् ।

शीफलणाज्वरात्तीनां करोति विषमज्वरम् ॥

इति शारददधिगुणाः ।

गुरु स्निग्धं च मधुरं कफकुहलवर्द्धनम् ।  
षष्ठ्य मेध्यञ्च हैमन्तं पुष्टिदं तुष्टिद्विष्टिदम् ॥

इति हैमन्तदधिगुणाः ।

शैशिरं मधनं चाश्लं मधुरं गुरुमेव च ।  
तृथं बलकरं पित्तश्रमापहरणं परम् ॥

इति शैशिरदधिगुणाः ।

वासन्तं मधुरं स्निग्धं किञ्चिदश्लं कफात्मकम् ।  
बलहृदीर्यहृत् प्रोक्तं वसन्ते न प्रशस्यते ॥

इति वासन्तदधिगुणाः ।

नघ्नु चाश्लं भवेद्ग्रीष्मे चाल्युष्णं रक्तपित्तकृत् ।  
शोषभ्रमपिपासाकृत् दधि युक्तं न ग्रीष्मके ॥

इति ग्रीष्मदधिगुणाः ।

वार्षिकं हितकृत् प्रोक्तं दधि शस्तं न दोषलम् ।  
शोषवातभ्रमान् हन्ति श्रमातिमारनाशनम् ॥

इति वार्षिकदधिगुणाः ।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु दोषकृत् न हितं भवेत् ।  
हैमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु तद्धितं मतम् ॥  
न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यष्टतशर्करम् ।  
नालवणं हि भुञ्जीत भुञ्जीतोदकमिश्रितम् ॥  
लवणाम्बु समायुक्तं दधि शस्तं निशि ध्रुवम् ।  
ज्वरासृक् पित्तवैसर्पिकुष्ठिनां पण्डुरोगिणाम् ॥  
संप्राप्तकामलानाञ्च शोफिनाञ्च विशेषतः ।  
विशेषाद् यक्ष्मरोगे च अपस्मारे च पीनसे ॥

प्रतिश्यायार्दितानाञ्च भोजने न हितं दधि ।

इति दधिवर्जनम् ।

हिक्रश्वामार्शःप्लीहानामतौमारं भगन्दरे ।

शस्तं प्रोक्तं दधि ह्येषां लवणेन विमूर्च्छितम् ॥

इति दधिभोजनविधिः ।

गव्यं त्रिदोषशमनं तक्रं श्रेष्ठन्तदुच्यते ।

दीपनं रुचिकृन्मोध्य मर्शोदरविकारजित् ॥

इति गव्यतक्रगुणाः ।

माहिषं कफकृत् किञ्चिद्वनं शोफकरं नृणाम् ।

प्लीहाशोग्रहणीगुल्मपाण्डुामयविनाशनम् ॥

इति माहिषतक्रगुणाः ।

क्वागलं लघु संस्निग्धं त्रिदोषशमनं परम् ।

गुल्माशोग्रहणीशूलं पाण्डुामय विनाशनम् ॥

इति क्वागीतक्रगुणाः ।

तथाच त्रिविधं तक्रं कथ्यते शृणु पत्रक ॥

यथा योगेन तत्सम्यक् शस्यते येषु रोगिषु ॥

समुद्धृतघृतं तक्रमर्द्धितघृतञ्च यत् ।

अनुद्धृतघृतं चान्यदित्येतत् त्रिविधं मतम् ॥

सर्वं लघु च पथ्यञ्च त्रिदोषशमनं परम् ।

ततः परं वृष्यतमं क्रमेण समुदीरितम् ॥

समुद्धृतघृतं तक्रं लघु पथ्यतमं मतम् ॥

गरोदराशोग्रहणीपाण्डुरोगज्वरातुरं ॥

वर्चा मूत्रग्रहे वापि प्लीहाव्यापदमहिषु ॥

हितं संप्रीणनं वल्यं पित्तरक्तविरोधकृत् ॥

अर्द्धाद्धृतघृतं तस्माद् वृष्यं गुरु कफप्रदम् ।

मधुरं पित्तरक्तघ्नं अमघ्नं परमं मतम् ॥  
अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु विद्यात् कफावहम् ।  
बलप्रदन्तु क्षीणानामामशोफातिसारकृत् ॥

इति विविधतक्रगुणाः ।

समरं निर्जलं धोलं मथितं सरवर्जितम् ।  
अर्द्धोदकमुदश्वित्यात्तक्रं पादजलान्वितम् ॥  
बह्वटकं दीपनीयं रक्तपित्तप्रकोपनम् ।  
पौनसे श्वासकासे च न शस्तमिदमुच्यते ॥  
वातपित्तहरं धोलं भवेत्तद विडि पुत्रक ! ।  
करेण मर्दितं यत्तु तर्पणं कफपित्तनुत् ॥  
उदश्विच्छ्लेषलं वृष्यं अमहत् परमं मतम् ।  
तक्रं ग्राहि कषायास्त्रं वीर्याणाम् दीपनं लघु ॥  
अमापहरणं स्निग्धं ग्रहण्यर्गोऽतिमारनुत् ।  
इति तक्रगुणाः प्रोक्ता न दद्याद् यत्र तच्छृणु ॥  
याते शोफे च क्षीणानां नोष्णकाले शरत्कृ च ।  
संमूर्च्छाभ्रमटणासु तथा च रक्तपित्तके ॥  
न शस्तं तक्रपानञ्च करोति विविधान् गटान् ॥

एतेषा तक्र निषिद्धम् ।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोत्थेष्वामयेषु च ।  
मार्गावरोधे दृष्टेऽग्नौ गुल्मार्शसि प्रशस्यते ॥  
शस्तं प्रोक्तं तक्रपानममीषां सर्वदा हितम् ।  
सर्वकालेषु तच्छस्तं दीपनं लवणान्वितम् ॥

एतेषु तक्रं पथ्यतमम् । इति तक्रविधिः ।

नवनीतं नवं ग्राहि हृद्यं रोचनदीपकम् ।  
क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्रहण्यर्शविकारनुत् ॥  
चक्षुष्यं शिशिरं स्निग्धं वृष्यं जीवनहं हणम् ।

क्षीरोद्भवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत् ॥  
 स्मृत्यायुरग्निः क्रीजः कफमेदोविवर्द्धनम् ।  
 वातपित्तकफोन्मादशोपालक्ष्मीज्वरापहम् ।  
 सर्वदोषापहं शीतं मधुरं रसपाकघोः ॥

इति नवनोतविधिः

क्षणाया गोः पयःफेनमजानां वातिशस्यते ।  
 मन्दाग्नीनां क्षणानाञ्च विशेषादतिमारिणाम् ॥  
 उत्साहदौपनं वल्यं मधुरं वातनाशनम् ।  
 मद्योबलकरञ्चैव तस्याः क्षीरं विलाडितम् ॥  
 क्षीणे ज्वरेऽतिसारे च कामे च विषमज्वरे ।  
 मन्दाग्नी कफमाश्रित्य पयःफेनं प्रशस्यते ॥  
 गवान्तु क्षीरफेनं वा तक्रणं सहितं तथा ।  
 पक्तास्रं भक्षयेद्वापि ग्रहणी तस्य लभ्यते ॥  
 तास्त्रूलं नव सर्वतः क्षीरं पीत्वा तु मानवः ।  
 यावत्तच्च भवेत् क्षीरं भुक्तान्नद्वारि शस्यते ॥

इति फेनः ॥

विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तकफापहम् ।  
 चक्षुष्यं बलकृन्मध्यं गव्यं सर्पिर्गुणात्तमम् ॥

इति गव्यघृतम्

आजं मन्दोपनीयञ्च चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ।  
 कासं श्वासं क्षयेऽर्शं तल्लघुं पाके कफापहम् ॥

इति अजघृतम् ।

वातपित्तशमं सर्वं सुशीतं माहिषं घृतम् ।  
 मधुरं गुरुं विष्टम्भि भवत्यल्पगुणात्मकम् ॥

इति माहिषघृतम् ।

औष्ण्यं कटुं घृतं पाके शोषकमिविषापहम् ।

दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मीदरापहम् ॥

इति उष्ट्रीघृतम् ।

पाके लघ्नाविकं सर्पिः सर्वरोगविषापहम् ।

वृद्धिं करोति चास्थीनां वाश्मरीशर्करापहम् ॥

इति आविकं घृतम् ।

वृद्धिं करोति देहांग्नेर्लघुपांके विषापहम् ।

चक्षुष्यं दीपनञ्चाग्नेर्वीतदोषनिवारणम् ।

वृद्धिं करोति चास्थीनां तत्प्राक्तञ्च विषापहम् ॥

इति अश्वोघृतम् ।

कफेऽनिले योनिदोषे शोषे पित्तेषु तद्वितम् ।

मात्सर्यं स्त्रीणाञ्च चक्षुष्यं सर्पिः स्यादसृतोपमम् ॥

इति नारीघृतगणा

तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहहृत् पयसोघृतम् ।

इति चारीदमवघृतम्

दीपापहं वर्ज्जिमन्थुजणञ्च मूर्च्छाहिकान्मादकणीक्षिशूले ।

शोफार्शमोर्द्यानिदोषे व्रणेषु शस्तं सर्पिर्जीर्णमेव नृणां स्यात् ॥

उग्रगन्धं पुराणं स्याद्दशवर्षाषितं घृतम् ।

यथा यथा जरां याति गुणवत् स्यात्तथा तथा ।

इति जीर्णघृतगणाः ।

अलक्षये तर्पणभोजनेषु श्रमेषु पित्तासृजि रोगयुक्ते ।

अत्रामये कामलपाण्डुरोगे क्षये न सर्पिश्च वदन्ति शस्तम् ॥

त्वरे विदग्धेषु विसूचिकाया मरोचके वा शमिते तथाग्नी ।

गानात्ययेऽपि मदात्यये वा शस्तं न सर्पिर्बहु मन्यते सुधीः ॥

इति घृतवर्गः ।

इति श्रीमद्भारविद्यभाषिते हारीतीक्षरे अष्टमोऽध्यायः ।

## नवमोऽध्यायः ।

मूत्रं गोजाविमाहिष गजाश्वोद्वखरोद्भवम् ।  
 मूत्रं मानुषजं चान्यत् समासेन गुणान् शृणु ॥  
 तीक्ष्णं चोष्णं क्षारमेवं कषायं मेध्यं तृष्णाश्लेष्महाप्यस्थिभृच्च ।  
 तन्माङ्गल्यं रक्तपित्तप्रभेदि भ्रूशङ्ककण्ठहृनुरोगहृच्च ॥  
 कण्डू किलासगदशूलमुखान्तिरोगान्  
 गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान् ।  
 काशं मकुष्ठजठरक्रिमिरोगजालं  
 गोमूत्रमेकमपि पीतमहो निहन्ति ॥

इति गोमूत्रगुणाः ।

आजं मूत्रं तीक्ष्णमुष्णं कषायं योज्यं पाने शूलगुल्मात्तिनाशि ।  
 कामश्वासकामलापाण्डुरोग अर्शस्विनां श्रेष्ठमेतद्वदन्ति ॥

इत्याजमूत्रम् ।

मक्षारं कटुकं तिक्तं मूत्रं वातघ्नमाविकम् ।  
 दुर्नासोदर शूलघ्नं कुष्ठमेहविशोधनम् ॥

इति मेषमूत्रम् ।

क्षारं सुतिक्तं कटुकं कषायं प्रभेदि वातस्य समङ्करोति ।  
 पित्तप्रकोपि महिषस्य मूत्रं गुल्मार्श पाण्डूदरशूलनाशम् ॥

इति महिषीमूत्रगुणाः ।

सुतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं कफकोपनम् ।  
 क्षारं मण्डलकुष्ठानां नाशनं गजमूत्रकम् ॥

इति गजमूत्रगुणाः ।

कफकाशहरं हृदि कृमिदद्रुविनाशनम् ।  
 दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातश्लेष्मविकारनुत् ॥

इति अश्वमूत्रगुणाः ।



श्रीष्टं कफहरं रुक्षं कृमिदद्रुविनाशनम् ।

अष्टं कुष्ठोदरोन्माद शोषार्शःकृमिवातनुत् ॥

इति श्रीष्टसूत्रगुणाः ।

गार्दभं वा घनं सूत्रं तैलयोग्यं क्वचिद् भवेत् ।

सक्षारं तिक्त कटुकमुन्मादकुष्ठरोगजित् ॥

इति गार्दभसूत्रगुणाः ।

मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते ।

चक्षुरोगहरं वल्यं दीपनं कफनाशनम् ॥

इति नरसूत्रगुणाः ।

असूताया घनं सूत्रं प्रसूताया भवं लघु ।

न हि गुणविशेषः स्यात् समता पाकवीर्ययोः ॥

अप्रसूतायाः प्रसूतायाश्च सूत्रगुणाः ।

सौरभेयकसूत्रन्तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते ।

तच्च वृषणह्रीनानां किञ्चिल्लघुतरं मतम् ॥

वृषसूत्रञ्च शोफघ्नं कृमिदोषविनाशनम् ।

कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनं चाग्निदीपनम् ॥

अजागवौभवं सूत्रं पाने शस्तं भिषग्वदेत् ।

आविक माहिषं चाश्व तैलपाके विधीयते ॥

गजसूत्रप्रलेपञ्च कण्डूदद्रुविमर्पनुत् ।

कारभ स्वरसूत्रं वा तैले नस्ये विधायकम् ॥

इति सूत्रवर्गाध्यायः ।

—

अथातः संप्रवक्ष्यामि इक्षुवर्गं गुणाधिकम् ।

रसायनोत्तमं वल्यं रोगवारणमुत्तमम् ॥

स्निग्धञ्च तर्पणं वृष्यं वृहणं च सजौवनम् ।

खादुगुणाभिवद्धत्वादातपित्तप्रशान्तिकृत् ।

वृथोऽप्यन्तर्विटाही स्यात् मितेक्षुः कफकृन्तः ॥

इति श्रुतेक्षुगुणाः ।

तद्वत् सुकृष्णो भवनं गुणानां वृथो भवेत्तर्पणदाहहन्ता ।

सञ्जीवनं स्यान्मधुरो रसेन शोषापहर्ता व्रणशोफकारी ॥

इति कृष्णक्षुगुणाः ।

यन्त्रेण पीडितरमः कश्चितो गुरुश्च

वृथः कफश्च कुरुतेऽथ सुशीतलश्च ।

पात्रे विटाही बलकश्च सुशीभनश्च

सर्भवितो रुधिरपित्तरुजं निहन्ति ॥

इति यन्त्रोद्भवरसगुणाः ।

दन्तैर्निष्पीडितरमो रुचिकृद्गुरुश्च

सन्तर्पणो बलकरः कफकृत् अमघ्नः ।

विष्टम्भकारी रुधिरस्य तथैव पित्त-

दोष निहन्ति सकलं वमनञ्च शोषम् ॥

इति दन्तनिष्पीडितरसगुणाः ।

रमः पर्युषितो नेष्टो ह्यम्भो वातापहो गुरुः ।

कफपित्तकरः शोषो भेदनश्चाथ मूत्रलः ॥

इति पर्युषितरसगुणाः ।

पक्वो गुरुतरः स्निग्धः सतीक्ष्णः कफवातहा ।

पित्तघ्नोऽपि विशेषेण गुल्मातोसारकामनुत् ॥

इति पक्वरसगुणाः ।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि वृंहणं कफशुक्लम् ।

पित्तघ्नं अमहारि स्यात् रक्तदोषनिसूदनम् ॥

इति फाणितरसगुणाः ।

बल्यो वृथो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः ।

नातिपित्तहरो मेध्यः कफक्रिमिकरो गुडः ॥

पित्तघ्नी मधुरः शुद्धो वातहा मूत्रशोधनः ।  
 स पुराणोऽधिकगुणो गुल्मार्शोऽरोचकापहः ॥  
 क्षये कासे क्षतक्षीणे पाण्डुरोगेऽसृजःक्षये ।  
 हितो योगेन संयुक्तो गुड़ः पथ्यतमो मतः ॥  
 गुदामये कामलशोफमेहं गुल्मामये पाण्डुहलीमके च ।  
 वाते सपित्तासृजि राजरोगे रुचिप्रदो रोगहरो गुड़ः स्यात् ॥  
 कासे शोफे गुड़ो नेष्टः अन्यत्रापि हितो मतः ।  
 योगयुक्तोऽपि सर्वत्र हितो गुणगणो न यः ॥  
 क्षामक्षीणे पवनकुपिते श्वासमूर्च्छातुराणां  
 अध्वश्रान्तश्रममदविषे मूत्रकृच्छ्राश्मरौणाम् ।  
 जीर्णैः क्षामज्वरविषमगं रक्तापित्तप्रकोपे  
 तृष्णादाहक्षयरुधिरगे सर्वरोगान् निहन्ति ॥

इति गुड़गुणाः ।

मत्स्यण्डौ सिता मधुरा वातपित्तविनाशिनी ।  
 किञ्चित् शीतगुणोपेता बल्या वृष्या रुचिप्रदा ॥

इति मत्स्यण्डौगुणाः ।

वातपित्तहरं शीतं स्निग्धं बल्यं सुखप्रियम् ।  
 चक्षुष्यं श्लेष्मकृच्छीकृतं खण्डं वृष्यतमं मतम् ॥

इति खण्डगुणाः ।

शीता रुच्यतमा प्रोक्ता वृष्या शुक्रविवर्द्धिनी ।  
 पित्तघ्नी मधुरा बल्या शर्कराप्यायिनी नृणाम् ॥  
 शर्करान्या सुसिता च कासशूलप्रमर्दिनी ।  
 हितापित्तासृजि शोषे मूर्च्छाभ्रमिगदापहा ॥

इति शर्करागुणाः । इति इक्षुवर्गः ।

सन्धानं शीतलं बल्यं महातिसारनाशनम् ।  
 सुखादु शीतलं चैव वृंहणं तण्डुलोदकम् ॥

इति तण्डुलोदकगुणाः ।

तुषोदकं वातहरं प्रभेदि प्रकोपयेत् रक्तपित्तं सदैव ।

विपाचनं स्याज्जरणं क्षमिघ्नमजीर्णहन्ता कटुकं विपाके ॥

इति तुषोदकगुणाः ।

जातं युवाम्लं कटुकं विपाके वातापहं श्लेष्महरं सरक्तम् ।

पित्तप्रकोपं कुरुते सभेदि विदूषणं पित्तगदासृजश्च ॥

मूर्च्छापहं काञ्जिकमेव रुच्यकं गोधूमजं शूलहरं कषायकम् ।

मन्दीपनं स्याज्जरणं हि वातनुत्त्वजीर्णदोषं हरते सदैव च ॥

इति यव-गोधूम-काञ्जिकगुणाः ।

युगन्धराम्लं कफवातहन्तृ शूलामयानां जरणं करोति ।

तौक्ष्णं तथाम्लं श्रमदोषहन्तृ मेहार्शसोऽसृग्हितकृन्मतश्च ॥

इति युगन्धराम्लगुणाः ।

शोषे मूर्च्छाज्वरात्तानां भ्रमकण्डविषादिते ।

कुष्ठेषु रक्तपित्तेषु काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥

पाण्डुरोगे यक्ष्मगदे तथा शोफातुरेषु च ।

क्षतक्षीणे पथिथ्यान्ते मन्दज्वरनिषीडिते ।

तेषां नैव हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥

इति काञ्जिकपरिहारः ।

पौतं जरयते चामं वाह्यदाहश्रमापहम् ।

लेपने कुष्ठकण्डुघ्नं तैलयुक्तं समौरहत् ॥

भूलं वातादितानान्तु तथाजीर्णविवन्धिनाम् ।

श्रेष्ठं प्रोक्तं तथाम्लञ्च गुणाधिक्यं नरेषु च ॥

इति काञ्जिकवर्गाः ।

धान्यमण्डं पित्तहरं श्रमघ्नश्चाश्वरौहरम् ।

वातलं रक्तशमनं ग्राहि मन्दीपनं परम् ॥

इति धान्यमण्डगुणाः ।

युगन्धरानां मण्डन्तु श्लेष्मकृद्वातलं मतम् ।

पित्तसंशमनीयञ्च मूत्रलं ग्राहणञ्च तत् ॥

इति युगन्धरमण्डगुणाः ।

रक्तशाल्यद्रवमण्डं मधुरं ग्राहि शीतलम् ।

प्रमेहानश्मरीं हन्ति वातलं पित्तहृत्तथा ॥

इति रक्तशालिमण्डगुणाः ।

मधुरं शीतलं किञ्चित् श्लेष्मलं शोषनाशनम् ।

अश्मरी-मेह-सञ्छेदि वातलं श्वेततण्डुलम् ॥

इति श्वेततण्डुलमण्डगुणाः ।

यवमण्डं कषायं स्याद् ग्राहि चोष्णं विपाकि च ।

इति यवमण्डगुणाः ।

तद्वह्नीधूमसम्भूतं मधुरं पित्तवारणम् ।

इति ग्रीधूममण्डगुणाः ।

ग्लानिसृच्छीकरं मद्यः कोट्रवाद्यक्तं लघु ।

इति कोट्रवमण्डगुणाः ।

तद्वच्च क्षुद्रधान्यानां वातलं पित्तकारकम् ।

कराति श्लोषदं गुल्मं प्रतिश्यायादिकोपनम् ॥

इति क्षुद्रधान्यमण्डगुणाः । इति मण्डवर्गाः ।

अथातो यृषवर्गाध्याय व्याख्यास्यामः ।

कुलत्थयूषो मधुरः कषायः कफं सपित्तं विनिहन्ति शीघ्रम् ।

मेहाश्मरीपायुजमेदहन्ता सन्दीपनो मूत्रविशोधनश्च ॥

इति कुलत्थयूषगुणाः ।

आढक्ययूषं मधुरञ्च शीतं विशोषणं वातनिवारणञ्च ।

श्लेष्मापहं पित्तहरं नराणां कृमिं निहन्त्यादापि दारुणञ्च ॥

इति आढकीयूषगुणाः ।

शीतलं मधुरं मौक्तं यूषं पित्तविकारजित् ।

वातदोषहरं प्रोक्तं ज्वराणां शमनं परम् ॥

इति सुहृद्यूषगुणाः ।

मासूरो ग्राहको यूषो वृंहो स्वादुः प्रमेहजित् ।

पित्तश्लेष्मज्वरघ्नः स्यात्तथातीसारनाशनः ॥

इति मासूरयूषगुणाः ।

कषायं कटुकक्षोणं वातघ्नं पुंस्त्वदोषकृत् ।

रक्तपित्तं निहन्याशु चणानां यूषमुच्यते ॥

इति चणकयूषगुणाः ।

घनं सवातं कफकुन्माषयूषं सपित्तकृत् ।

अम्लं पर्युषितं तच्च शस्यते तैलपाचने ॥

इति माषयूषगुणाः ।

अन्यानि चैव शस्तानि कौलत्थान्युषितानि च ।

मसूरास्त्रिपुटा बल्याः कलायाद्याश्च वर्जिताः ॥

इति यूषविधिः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि तैलानाञ्च गुणगुणम् ।

तच्च ज्ञेयं समासेन यथायोगं यथाविधि ॥

कषायानुरमं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च ।

पित्तकुहातशमनं श्लेष्मरोगादिवर्द्धनम् ॥

अल्पं रुचिकरं मेध्यं कण्डूकुष्ठविकारनुत् ।

वृथ्यं अमापहं ज्ञेयं तिलतैलं विदुर्बुधाः ॥

छिन्ने भिन्ने च्युते घृष्टे क्षते भग्नेऽग्निदाहके ।

वाताभिष्यन्दि स्फुटने चाभ्यङ्गे तिलतैलकम् ॥

विषे व्यालशीनसर्प्याः सेकाभ्यङ्गावगाहने ।

पाने वस्त्रौ च नस्ये च तथा कर्णप्रपूरणे ।

तिलतैलं विधेयं स्यात् सव्वरोगनिवारणे ॥

इति तिलतैलगुणाः ।

कटुतिक्तं तथा ग्राहि स्यात् उष्णं कफवातनुत् ।

कृमिकण्डूशोधनं स्यात् पित्तकृत् सार्षपं श्रुतम् ॥

कर्णरोगे कृमिरोगे तथा वातामयेषु च । .

कण्डूकुष्ठामये चैव कफमेदोव्रणेषु च ॥

प्रशस्तं सार्षपं चैषां रोगिणाञ्च विभावयेत् ।

वस्तिकर्मणि नो शस्तं पित्तदाहकरं महत् ॥

इति सार्षपतैलगुणाः ।

अतमोप्रभवं तैलं घनं मधुरपिच्छिलम् ।

पाके कटूष्णवीर्यञ्च वातश्लेष्मनिवारणम् ॥

इति अतसीतैलगुणाः ।

एरण्डजं घनञ्चापि शीतमेव मृदु स्मृतम् ।

हृदस्तिजङ्घाकट्यू रू शूलानाहविवन्धनुत् ॥

आनाहाष्ठीलवान्तामृक् प्लीहादावर्तशूलिनाम् ।

वातपित्तविकाराणां विदध्याञ्च प्रशान्तये ।

तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्त्रं रक्तमेरण्डसम्भवम् ॥

इति एरण्डतैलगुणाः ।

महकारोद्भवं तैलं रूक्षं वातकफापहम् ।

रमे कषायमधुरं तिक्ताम्लं नातिपित्तकृत् ॥

इति सहकारतैलगुणाः ।

कौसुम्यतैलमुष्णन्तु विपाके कटुकं गुरु ।

विदाहकं विशेषेण सर्वदोषप्रकोपनम् ॥

इति कौसुम्यतैलगुणाः ।

मौवर्चलेङ्गुदीपिलुशिशपासारसम्भवम् ।

सरलागुरुदेवाह्वशङ्खिनीसम्भवन्तु यत् ॥

तुम्बुरुत्यं करञ्जीत्यं ज्योतिषत्युद्भवं तथा ।

अर्थः कुष्ठकृमिश्लेष्मशुक्रमेदोऽनिलापहम् ॥

करञ्जारिष्टके तिक्ते नात्युष्णेन विनिर्दिशेत् ॥  
 कषायं मधुरं तिक्तं मारकं व्रणशोधनम् ।  
 अचातिमुक्तकाक्षोड़नारिकेलमधूकजम् ॥  
 त्रपुषैर्वारुकूष्माण्डश्लेष्मान्तकपियालजम् ।  
 वातपित्तहृदशोघ्नं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ॥  
 पित्तश्लेष्मप्रशमनं श्रीपणीकिंशुकोद्भवम् ।  
 फलोद्भवानि तैलानि यान्युक्तानि च कानिचित् ॥  
 गुणकर्म च विज्ञाय फलवत्तानि निर्दिशेत् ।  
 यावन्तः स्यावराः स्नेहाः समासेन प्रकीर्तिताः ॥  
 सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः ।  
 सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं प्रशस्यते ॥

इति तैलवर्गः ।

वसा मज्जा च वातघ्नी बलपित्तकफप्रटा ।  
 शोकरौ माहिषोरभ्रा वातला श्लेष्मवाहिनी ॥  
 सर्पनकुलगोधयालेपने व्रणकुष्ठहा ।  
 मत्स्य शुशुक मकरग्राहादीनां वसा हि या ।  
 सा विमर्षहरा हृद्या कुष्ठरोगविनाशिनी ॥

इति श्रीमहर्ष्यविद्यभाषते हारीतसंहिते नवमोऽध्यायः समाप्तः ।

### दशमोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नविधिं व्याख्यास्यामः ।

रक्तशालिर्महाशालिः कलमः पष्टिकोऽपरः ।  
 खञ्जरीटापसाही च जीवकान्या कपिञ्जला ॥  
 सौगन्धी सुफला चान्या विलवामौ कचारका ।  
 गरुडा रुक्मवन्तौ च फलधान्या तथा परा ॥



विलजा मागधी पीता एतेऽष्टादश शालयः ।  
 रक्तशालि स्त्रिदोषघ्नश्चक्षुष्यो मूत्ररोगहृत् ॥  
 महाशालिर्गुरुर्वृष्यश्चक्षुष्यो बलवर्द्धिदः ।  
 शैतो गुरु स्त्रिदोषघ्नो मधुरो गौरषष्टिकः ॥  
 खञ्जरीटा त्रिदोषघ्नो पसाही वातपित्तनुत् ।  
 जीवका वातपित्तघ्नी कलमः श्लेष्मपित्तहा ॥  
 कपिञ्जला श्लेष्मला स्यात् सौगन्धी कफवातला ।  
 विलवामो गुरुश्चापि पित्तघ्नी शुकवर्द्धिनी ॥  
 मुफला पित्तवातघ्नी कचोरा पित्तनाशिनी ।  
 गरुडोऽल्पातिशूकश्च पित्तमूत्रगटापहा ॥  
 रुक्मवन्तो लघू रुचिबलपष्टिकरा मता ।  
 फलधान्या लघुः पथ्या वातला श्लेष्मवर्द्धिनी ॥  
 विलजा मागधी पीता सामान्यास्ता गुणागुणैः ।  
 रुचिकृत् बलकृन्मूत्रदोषघ्नी च श्रमापहा ॥  
 शालयो दम्भरुज्जाताः कपाया लघुपाकिनः ।  
 सुपथ्या बद्धविण्मृता रुक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥  
 केदारप्रभवा वृष्या बल्याः पित्तविनाशिनः ।  
 रक्तमूत्रविकारघ्ना वातलाः कफकृन्मताः ॥  
 देशे विदेशे भिन्नानि नामानि परिलक्षयेत् ।  
 समान् गुणैश्च सर्वैस्तान् भूमिभागोद्भवान् विदुः ॥  
 शालयश्चिन्नरूढा ये मूत्रला बद्धवर्चसः ।  
 श्लेष्महा लघुपाकाश्च मूत्रला वातला हिमाः ॥

अति शालिवर्गः ।

श्यामाकः कोद्रवः कङ्गुर्नीवारः कुरुविन्दकः ।  
 क्षुद्रधान्यमिदं प्रोक्तं शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यते ॥  
 श्यामाकः शोषणो रुक्षो वातलः कफवारणः ।

कोद्रवो ग्राही रूक्षः स्याद्रक्तपित्तविशोधनः ॥  
 नाधिकः कफकृत् प्रोक्तो रुच्यः स्वादुः प्रकीर्तितः ॥  
 कङ्कुस्तु भग्नसन्धानवातकृद् वृंहणी गुरुः ॥  
 रूक्षः श्लेष्महरोऽतौव वाजिनां गुणकृद् भृशम् ।  
 नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफवातकृत् ॥

इति तटधाम्नी

विदलान्नानि वक्ष्यामि शृणु पुत्र ! यथाक्रमम् ।  
 यवगोधूमचणका माषा मुद्गादकौ तथा ॥  
 मुकुष्टकाः कुलत्याश्च मसूरा स्त्रिपुटास्तथा ।  
 निष्पावकाः कलायाद्या विदलान्नाः प्रकीर्त्तिताः ॥  
 रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः कषायः शुक्रवर्द्धकः ।  
 स्थैर्यकृत् पित्तकफहा कासश्वासहरो यवः ॥

इति यवगणः ।

मधुरो गुरुविष्टम्भी वृथो बल्योऽथ वृहणः ।  
 इपत् कषायमधुरो गोधूमः स्यात् त्रिदोषहा ॥

इति गोधूमगणः ।

रक्ते कफे पीनमके तु कुष्ठं गलामये वातरुजे मप्रित्तं ।  
 शीतः प्रतिश्यायकृमिं निहन्ति शुष्कस्तथाद्रिश्मकः प्रशस्तः ॥

इति चणकगणः ।

स्निग्धोष्णवृथो मधुरश्च बल्यो माषश्च वातान्तकवृंहणश्च ।  
 शुक्रप्रदः श्लेष्मकरो गुरुश्च सन्तर्पणः स्तन्यविवर्द्धनो हि ॥

इति माषगणः ।

शीतः कषायो मधुरो लघुः स्यात् पैत्ताम्रजित् दोषहरः सरश्च ।  
 विपाकतोऽसौ कटुकप्रधानो मुद्गस्तथान्यात् कथितोऽभिरम्यः ।

इति मुद्गगणः ।

मृदुः कषाया च सरक्तपित्तं निहन्ति कासानतिवातला स्यात्

मज्जरारोचककासकृदिहृद्रोगदुर्नामहराढकी स्यात् ॥

इति षाढकीगुणाः ।

क्षपित्तं कफवातहन्ता चोष्णः कषायो मधुरः प्रदिष्टः ।  
ह्री सुशीतो गुदकीलगुल्मं मुकुष्टकः सर्वगदान्निहन्ति ॥

इति मुकुष्टकगुणाः ।

णञ्जयेन्मार्तपीनमर्नां कामप्रतिश्यायविवन्धगुल्मान् ।  
क्लां सक्लान्तु वलामपित्तं निहन्ति मेदोऽपि कुलत्थकोऽयम् ॥

इति कुलत्थगुणाः ।

त्रो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः शूलार्तिगुल्मग्रहणीविकारम् ।  
तीति वातामयवर्द्धनञ्च पित्तासृजं ग्राहहरो मसूरः ॥

इति मसूरगुणाः ।

त्रो विशोषी मधुरः प्रदिष्टो वायुं करोत्यस्थिगतं बलिष्ठम् ।  
न विवन्धमशोफकर्त्ता प्लौहाशहृद्रोगविकारकारी ॥

इति त्रिपुष्टगुणाः ।

प्यावको वै सवलामशोफशुक्रान्तको रुक्षगुणो विटाहो ।  
प्रायकः स्यान्मधुरो गुरुश्च स्तन्यामपित्तञ्च करोति वातघ्नः ॥

इति पानप्यावकगुणाः ।

क्षित्कपाया मधुराः प्रदिष्टा रक्तप्रशान्तिं जनयन्ति वात्यः ।  
क्षित्मवातं विनिहन्ति पित्तं कलायका मुद्गसमानरूपाः ॥

इति कलायगुणाः ।

लो विपाकं मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपनपथ्य उक्तः ।  
ताऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्रस्त्वच्योऽतिकेश्योऽनिलह्ना गुरुश्च ॥  
लेषु सर्वर्षसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्यः ।  
ते प्रदिष्टो बहुधान्यवर्गो ग्रन्थस्य विस्तारभयाच्च किञ्चित् ।  
ये प्रसिद्धाः सुतरां हि लोके तेषां गुणाः श्रेष्ठतमाः प्रदिष्टाः ॥

इति धान्यवर्गः ।

अथातः शाकवर्गे व्याख्यास्यामः ।

शाकं चतुर्विधं प्रोक्तं पत्रं पुष्पं फलं तथा ।  
 कन्दञ्चापि समुद्दिष्टं वक्ष्याम्येतान् पृथक् पृथक् ॥  
 द्विविधं शाकमुद्दिष्टं गुरु विद्याद् यथोत्तरम् ।  
 प्रायः सर्वाणि शाकानि विष्टम्भोनि गुरुणि च ॥  
 रुक्षाणि बहुवर्च्चांसि सृष्टविण्माकृतानि च ।  
 चक्षुष्या सर्वरोगघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा ॥  
 स्वादुःपाकं त्वसृक्पित्तविपघ्नस्तण्डुलीयकः ।  
 हन्ति वातं विड् विबन्ध मूत्रवातकफं हिता ॥  
 मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् ।  
 विशेषतः पित्तहर इत्युक्तः काममर्दकः ॥  
 त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रमायनी ।  
 वास्तूकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम् ॥  
 तर्ह्यञ्जली तु विज्ञेया वातपित्तविकारिणाम् ।  
 केतकी वातहा वृष्या तन्दानिद्राकरी मता ॥  
 सैथिका वातशमनी रक्तपित्तापहा मता ।  
 सार्पपं च त्रिदोषघ्नं रुचिदं चाग्निवर्द्धनम् ॥  
 शतपुष्पा त्रिदोषघ्नी मध्या पथ्या रुचिप्रदा ।  
 ज्वरघ्ना सिंहिका प्रोक्ता अतीसारं प्रशस्यते ॥  
 कुसुमं रुचिकृदातं हन्ति दृष्टिप्रसादनम् ।  
 किञ्चित् पित्तकरं स्वादु विपाके च कफापहम् ॥  
 किञ्चिच्चास्रं भवेत् क्षारं प्रशस्तमग्निमान्द्यके ।  
 भेदनं रुक्षमधुरं कषायमतिवातलम् ॥  
 उष्णा कषायमधुरा चाङ्गुरी वह्निदीपनी ।  
 वत्सादनी तथा फञ्जी तैलपर्णी तु सिंहिका ॥  
 चक्रमर्दक इत्यन्ये दुर्जरा वातकोपनाः ।

पिण्डालुकं बला भिण्डी चिञ्चकान्या बलादनी ॥

एते श्लेष्मकराः शाकाः वातहाग्निप्रशान्तकृत् ।

तथैव शतपुत्री च जयन्ती काकतिन्दुकः ॥

अटरूपक वेत्ताय गुडुची निम्बपर्पटाः ।

किराततिक्तमहितास्तिक्ताः पित्तहरा मताः ॥

सर्वे शाका दृष्टिहरा वीर्यशुक्रौजोनाशनाः ।

वर्णापहारका ज्ञेया अतो यत्नाद् विवर्जयेत् ॥

इति शाकवर्मः ।

अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्यकनिवारकम् ।

नक्ताम्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च ॥

पीनमश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ।

शाल्मलेः पुष्पशाकन्तु प्रदरं नाशयेद् ध्रुवम् ॥

रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु ।

कफपित्तामजिद् ग्राहि वातलञ्च प्रकीर्तितम् ॥

कूष्माण्ड कालिङ्ग चिचिण्ड चिमेष्ट पटोलकैर्वाकृत्पुष्पलावूः ।

तुण्डोरककर्णिककारवेत्तं कोशातकी वल्लिफलानि चैव ॥

वार्त्ताकुमिह्रीवृहतीफलानि वर्तन्ति धीराः करहाटक स्यात् ।

एतैस्तु शाकैः रसवीर्यमुक्तमन्यान्यविज्ञातफलानि सम्यक् ।

कूष्माण्डं त्रिविधं ज्ञेयं बालं मध्यं तथोत्तरम् ।

वातघ्नं रोचकं बालं मध्यमं स्यात् त्रिदोषहृत् ॥

पक्वं पित्तहरं शीतं दीपनं वास्तिशोधनम् ।

शोफं वातकफौ हन्ति रक्तापित्तनिवर्हणम् ॥

इति कूष्माण्डगुणाः ।

कालिङ्गं कफक्ष्मातकारणं पित्तनाशनम् ।

इति कालिङ्गगुणाः ।

चिचिण्डो वातपित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः ।

शोषणोऽतिहितः किञ्चिद्गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥

इति चिचिण्डगुणाः ।

चिर्भटो रुक्षमधुर स्त्रिदोषकारकः स्मृतः ।

अपको वातकफकृत् पक्वः किञ्चिद्दिशिष्यते ॥

इति चिर्भटगुणाः ।

पटोलपत्रं विनिहन्ति पित्तं नालं कफघ्नं प्रवदन्ति धीराः ।

फलञ्च तस्य त्रिकदोषशान्तिं करोति नूनं ज्वरिणो हितं स्यात् ॥

इति पटोलगुणाः ।

एवार्कं स्वादु शीतं सक्षारं कफवातकृत् ।

नातिपित्तकरं रुच्यं दीपनं दाहनाशनम् ॥

इति एवार्कगुणाः ।

त्रपुषं गुरु विष्टम्भि कफकृत् स्वादु शीतलम् ।

इति त्रपुषगुणाः ।

वर्चोभेदिन्यलावु हि रुक्षा गुर्व्यतिशीतला ।

इति अलावुगुणाः ।

तुण्डिका चाग्निरुचिकृद् वातपित्तनिवारणी ।

त्रिदोषघ्नं कर्कटकं रुचिकृन्मधुरं तथा ॥

इति तुण्डिकाकर्कटयोगुणाः ।

कारवेल्लं वातलञ्च कफघ्नं पित्तनाशनम् ।

उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तदोषहरं नृणाम् ॥

इति कारवेल्लगुणाः ।

कोशातकी फलं स्वादु मधुरं वातपित्तनुत् ।

विपाके च कफं हन्ति ज्वरे शस्तं प्रदिश्यते ॥

इति कोशातकीगुणाः ।

इति वल्लिफलशकानि ।

निद्राकरं प्रीतिकरं तथैव सवातलं श्वासविमर्दनं हि ।

तासकासारुचिनाशनञ्च न वृन्ताकं पित्तकरं फलं स्यात् ॥

इति वृन्ताकगुणाः ।

या वृहतीफलमेव शस्तं सन्दीपनं स्यात् कफवातनाशनम् ।  
ण्डूविसर्पज्वरकामलादौ तथारुचौ शस्तमिदं वदन्ति ॥

इति फलशकगुणाः ।

कन्दशाकान् प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र ! पृथक् पृथक् ।

शूरणं पिण्ड पिण्डालु पलाण्डु गृञ्जनं तथा ॥

ताम्बूलपर्णकन्दः स्याद्वह्निकन्दस्तथापरः ।

वराहकन्दमप्यन्यं कन्दशाका इमे स्मृताः ॥

दीपनः शूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ।

विशेषादर्शमां पथ्यः प्लौहगुल्मविनाशनम् ।

अम्लिकायाः स्मृतं कन्द ग्रहण्यर्शोहितं लघु ॥

पिण्डको वातलो श्लेष्मो ग्राही वृथो महागुरुः ।

पिण्डालुकः श्लेष्मकरः शुक्रवृद्धिकरो मृदुः ॥

पलाण्डुर्वातकफहा शुक्रलः शूलगुल्मनुत् ।

ताम्बूलपर्णकन्दः स्याच्छुक्रलो विशदो लघुः ॥

हस्तिकन्दो गुरुर्ग्राही शुक्रवृद्धिप्रदो मतः ।

वराहकन्दश्चार्शोघ्नो वातगुल्मनिवारणः ॥

अन्ये ते ज्ञातकन्दाश्च तेन प्रोक्ता मयानघ ॥

सर्वेषां कन्दशाकानां शूरणः श्रेष्ठ उच्यते ।

दीपनोऽर्शः शूलगुल्मकृमिप्लीहविनाशनः ॥

दद्रूणां रक्तपित्तानां कुष्ठिनां न प्रशस्यते ।

एते कन्दाः समाख्याताः श्रीमन्तो हि भिषग्वर ! ॥

इति कन्दशाकवर्गः ।

आम्रं जम्बूश्च कोलश्च दाडिमामलकन्तथा ।

खर्जूरश्च परुषश्च मातुलङ्गं पियालजम् ॥

नागरङ्गाम्लिका चैव द्राक्षा च करमर्दकम् ।  
 क्षौरिका मधुरा चैते फलवर्गे प्रकीर्तिताः ॥  
 अपक्वमास्त्रं फलमेव शस्तं संग्राहि पित्तासृजि कोपनञ्च ।  
 तथा विपक्वं मधुरन्तु चाल्पं भेद्यं सपित्तामयनाशनञ्च ॥  
 जम्बूग्रीवौ मधुरकफह्वा रोचनो, वातहारी  
 कोलं चाम्लं मधुरमथवा श्लेष्मलं ग्राहि शस्तम् ।  
 श्रेष्ठं वातादिकरुजह्वरं टाडिमञ्चामञ्च  
 तद्वत्प्रोक्तं मधुरमपि तं स्वादु राजादनञ्च ॥  
 परुषकैट्यैकपीलुकानां पियालसिन्धौकरमर्दकानाम् ।  
 फलानि चैतानि निहन्ति पित्तं हन्याच्च सर्वातुरसन्धिवातम् ॥  
 म्यान्मातुलुङ्गः कफवातहन्ता हन्ता कृमौणां जठरामयघ्नः ।  
 सटोषरक्तादिविकारपित्तमन्दोपनः शूलविकारहारी ॥  
 श्वासकामारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ।  
 दौपनं लघु रुच्यञ्च मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥  
 त्वक्तीक्षा दुर्जराति स्यात् कृमिवातकफापहा ।  
 स्वादुः शीता गुरुः स्निग्धा त्वङ्मांसं वातपित्तजित् ॥  
 मध्यं शूलानिलच्छर्दिकफारोचकनाशनम् ।  
 दौपनं लघु संग्राहि गुल्माशोघ्नन्तु केशरम् ॥  
 हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसवलप्रदम् ।  
 शूलाजीर्णादिरोगेषु मन्दाग्नौ कफमारुते ॥  
 अरुचिश्वासकासेषु स्वरसाऽस्योपदिश्यते ।  
 रसेऽतिमधुरो हृद्यो वीर्यपित्तानिलापहा ॥  
 कफकृद्, ज्वरः पाके मातुलुङ्गस्य कल्ककः ।  
 तिक्तं गुण्यन्तु वीजञ्च गुल्मनुत् स्यात्तथापरम् ॥

इति बीजपुरगुणा

निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमुष्णमुदरग्रहापहम् ।



तपित्तकफशूलिनां हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम् ॥  
दोषमद्योज्वरपीडितानां दोषाश्रितानां विषविह्वलानाम् ।  
तग्रहे बड्गुदे हितञ्च विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥

इति निम्बकगुणाः ।

रङ्गकं स्वादुगुणोपपन्नं सन्दीपनं रोचकमर्शसाञ्च ।  
दोषहृच्छूलकमौन्निहन्ति मन्दाग्निकास्रवसनापहारि ॥  
क्षौफलञ्चास्त्रमपक्वशीलं तदस्रपित्तामकरं विदाहि ।  
तामये शूलगदे प्रशस्तं पक्वं तथा शीतगुणोपपन्नम् ॥

इति अम्लिकाफलगुणाः ।

द्राक्षाफलं मधुरमम्लकप्राययुक्तं  
क्षारिणं पित्तमरुतां कफहारि शीघ्रम् ।  
श्रेष्ठं निहन्ति रुधिरामयदाहशोष-  
मूर्च्छाज्वरश्वसनकाशविनाशकारि ॥  
कप्रायघ्ना विपाके च द्राक्षा चैव कफे हिता ॥

इति द्राक्षागुणाः ।

नारिकेलं सुमधुरं गुरु स्निग्धञ्च शीतलम् ।  
हृद्यं मल्लोहणं वस्तिशोधनं रक्तपित्तनुत् ॥  
विष्टम्भि पक्वं मतिमन् ! अपक्वं कफवातलम् ।  
वृहणं शीतलं वृष्यं नारिकेलफलं विदुः ॥

इति नारिकेलगुणाः ।

हृद्यं मनोज्ञं कफवृद्धिकारि शीतञ्च मन्तर्पणमेव बल्यम् ।  
रक्तं सपित्तं श्वसनञ्च दाहं रम्भाफलं हन्ति सदा नरस्य ॥  
अपक्वं ग्राहि च शीतलञ्च कषायकं वातकफं करोति ।  
विष्टम्भि बल्यं गुरु दुर्जरञ्च आरण्यरम्भाफलमेव तद्वत् ॥

इति कदलीफलद्वयगुणाः ।

कपित्थमम्लमधुरं कषायं विशदं गुरु ।

हृद्रोगकासातिसारकृदिश्लेष्मामयापहम् ॥

इति कपित्थगुणाः ।

अपक्वं खर्जूरफलं त्रिदोषशमनं मतम् ।

पक्वमेव हितं श्रेष्ठं त्रिदोषशमनं परम् ॥

इति खर्जूरगुणाः ।

कषायं मधुरं भेदि पृगं पित्तकफापहम् ।

इति पूगफलगुणाः ।

लागवल्लीललं हृद्यं सुगन्धि कफवातजित् ।

इति तासूलगुणाः ।

खट्विरः कफपित्तघ्नः कण्ठः कुष्ठनिवर्हणः ।

चूर्णकं पित्तहृत्तीक्ष्णं तासूलं कफवातजित् ॥

मयोगात् सुरसं स्याद् मुखवैरस्यनाशनम् ।

दन्तश्रेय्यकं शोषपीतमश्वामरोगहृत् ॥

गामपाटवरगुडिस्वरकान्तिकरं मतम् ।

कण्ठः कन्नामुरसाञ्ज फल कपूर संयुतम् ॥

इति मखट्विर तासूलगुणाः ।

इति फलवर्गः ।

इति अमरकषायवियर्माप्रित हारीतसंहिता दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

आत्रेय उवाच ।

अथ वक्ष्यामि मात्तिकं त्रिविधं शृणु पुत्रक ॥

भ्रामरं सारघं क्षौद्रं तेषां वक्ष्मि गुणागुणम् ॥

शीत कषायं मधुरं लघु स्यात् सन्दीपनं लेखनमेव शस्तम् ॥

संशोधनञ्च व्रणशोधनञ्च संरोपणं हृद्यतमञ्च बल्यम् ॥

त्रिदोषनाशं कुरुते च पुष्टिं कासक्षये वा क्षतजे च कृद्वा ॥

हिक्काभ्रमे शोषणपीनमानां रक्तप्रमहे च तथातिसारे ॥  
 रक्तातिसारे च सरक्तपित्ते तृणमोहहृत्पाश्वर्गदेऽपि शस्तम् ।  
 नेत्रामये वा ग्रहणीगटे वा विषे प्रशस्तं भ्रमरैश्चितं यत् ॥  
 भ्रामरं मधुनं जाड्यं भूयिष्ठं मधुरञ्च यत् ।  
 रूक्षं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेखनम् ॥

इति भ्रामरमधुगणाः ।

नस्मात्तद्वृत्तरं रूक्षं सारघं नातिशीतलम् ।  
 श्वामकामक्षये अष्टं कामलाशीविनाशनम् ॥

इति श्वारवमधुगणाः ।

क्षौद्रं शीतं लघु रूक्षं दीपनं वलकृन्मतम् ।  
 अतिसारे नेत्ररोगे क्षते वा क्षतसंहितम् ॥

इति क्षौद्रमधुगणाः ।

भ्रामरं वृक्षमस्थाने विटपे सारघं भवेत् ।  
 रन्ध्रं तु कोटरे वापि क्षौद्रं तत्र प्रशस्यते ॥

इति मधुगणाः ।

अथ सुरावर्गं व्याख्यास्यामः ।

गौडौ माध्वौ तथा पैष्टौ निर्यासा कथिता परा ।  
 इति चतुर्विधा ज्ञेया सुरास्तासां प्रभेदकाः ॥  
 भटेन द्वादशाः प्रोक्ताः सुरासौवीरकामवैः ।  
 मीधु गौडौ च मत्स्यण्डौ गुडेन प्रभवास्त्रयः ॥  
 माव्वीकं मधुकं माध्वं मधुना संयुता सुरा ।  
 पैष्टौसौवीरकारिष्ठास्तण्डुलप्रभवास्त्रयः ॥  
 ऋद्धीकारमसम्भूता ताडमण्डौरसोद्भवा ।  
 निर्यासा सा तु विज्ञेया तासां वच्मि गुणागुणम् ॥  
 मीधुः कषायान्मृकमाधुरो वा सन्दीपनो भेदमलापहा च ।

आमातिसारानिलपित्तशूलश्लेष्मामयार्शोग्रहणीगदघ्नः ॥

इति मीधुगुणाः ।

गोडी कषाया मधुराम्लशीता सन्दीपनी शूलरुजापहन्त्री ।  
हृद्या त्रिदोषं शमयत्यजीर्णं पाण्डुमयार्शःश्वसनं निहन्ति ॥

इति गोडीगुणाः ।

हरति मलसमूहं दीपनी पाण्डु मेहान्  
लघु, मधुर सुशीता रोचनी पित्तहन्त्री ।  
जरयति सकलं वा पीतमल्पातिमात्रं  
श्वसनरुधिरकाशान् हन्ति वा कामलाञ्च ॥

इति शार्करगुणाः ।

माध्वीकं शीतलं चाम्लं मधुरमपि तथा कषायोष्णकञ्च  
हन्यात्पित्तामयार्शः श्वसनमपि तथा चातिसारं प्रमेहान् ।  
शूलानाहोपमर्दं जरयति सकलं दीपयत्यग्निमान्द्यं  
तस्मादुवातासवातं वमनमपि तथा हन्ति सर्वांश्च रोगान् ॥

इति माध्वीकगुणाः ।

कषाया मधुरा चाम्ला सुरा सन्दीपनी मता ।  
कार्श्यार्शोग्रहणीदोषमूत्राघातविनाशिनी ॥

इति सुरागुणाः ।

पैष्टी सन्दीपनी रुच्या कफकृद् वातनाशिनी ।  
पित्तला पाण्डुरोगाणां कारिणी बहुधा मता ॥

इति पैष्टीगुणाः ।

वातपित्तकरा रुक्षा कषाया विशदा गुरुः ।  
श्लेष्मला भेदनी ग्राही मूत्रकृच्छ्रशिरोऽर्त्तिकृत् ॥

इति मधूकवृक्षसुरागुणाः ।

श्लेष्मदोषकरा वृथा वातला श्लेष्मवर्द्धिनी ।

फाशङ्खलासविध्वंसकारिणी ताडमण्डिका ॥

इति ताडमण्डीगणः ।

पूर्णे कषायपित्ते च योगयुक्ता सुरा हिता ।

बहुदोषकरा चैव श्लेष्मरोगे विशेषतः ॥

अमज्वरातुरे शोषे शोफे पाण्डुमये क्षये ।

मतेः क्लमेत्वपस्मारे पथक्षीणे अमेषु च ॥

श्रान्ते वा विषपीते वा सर्पदष्टे जलोदरे ।

रक्तपित्ते तथा श्वामे वारुणी न हिता मता ॥

इति मद्यधर्मः ।

प्रायस उवाच ।

धूरिणः शृङ्गिणश्चैव जखिनोऽन्ये प्रकीर्त्तिताः ।

खापटा पक्षिणश्चान्ये मत्स्याश्चान्ये सरीसृपाः ॥

जलेचरा जलाधारा आमारण्यनिवासिनः ।

श्रानृपा जाङ्गला जीवास्तथा साधारणोऽपरः ॥

भृगा रुरुकचिन्नाङ्गास्तथा मयमाहिपाः ।

शूकराद्या विवर्णास्ते शृङ्गिणो ग्रामवासिनः ॥

गण्डारवनगजाद्याः शृङ्गिणोऽरण्यवासिनः ।

शूकराच्छूकराद्या ये धूरिणो वा भवन्त्यमी ॥

शशकशङ्खकी गोधा सार्जाराद्या नग्नायुधाः ।

सर्पमत्स्यादिका ये च ते विज्ञेयाः सरीसृपाः ॥

मत्स्यकुम्भीरकाद्या ये कच्छपा दुर्जरादयः ।

इससुरसचक्राद्या कुमुदाश्च कपिञ्जलाः ॥

श्रानृपास्तेषु विज्ञेयाः श्लक्ष्णला वातकोपनाः ।

शशलावकवार्त्ताका गोधाहरिणकुक्कुटाः ॥

छिक्कराद्यास्तथान्येऽपि तित्तिराद्याश्च कुचकाः ।

भारद्वाजास्तथा श्येना मूषका वरवारणाः ॥

इत्येते जाङ्गला जीवा ये जलेन विना स्थिताः ।  
 शूकरा मृगशलाद्याः सलिलाशयमाश्रिताः ॥  
 मकराद्याश्च गण्डारा गवया मेघवर्वराः ।  
 माहिषाद्याश्च ये चैव ते च साधारणा मताः ॥  
 कुरुरवमकराः कङ्कचटकपिकभृङ्गमारमाः ।  
 आडिदात्यूहहंसा जलकरटिकापिङ्गाष्टिष्टिभाद्याः ॥  
 जलेचरा विहङ्गास्तं भामकाः खञ्जरीटकाः ।  
 इत्येते जलजा जीवाः स्थलजाः स्थलवारिणः ॥  
 उद्रा गजा वाजिनश्च माहिषाः सौरभाजकाः ।  
 खरशूकरमपाश्च श्वाना माज्जरिमूपकाः ॥  
 इत्येते पशवो ज्ञेया ग्रामवासनिवासिनः ।  
 कुक्कुटाः कलविङ्गाश्च पाशवतकपोतकाः ।  
 पक्षिणो ग्रामचाराश्च वक्ष्मि चैषां गुणगुणमः ।  
 शुङ्गिणां हरिणः श्रेष्ठो बल्यो रोचनदीपनः ॥  
 विदीपघ्नो लघुः पाके मधुरो ज्वरिणां हितः ।

शतं हरिणमासयथा ।

क्षते क्षयार्शभोः पाण्डावगात्रकनिषीडितः ।  
 काशश्वासातुराणाञ्च एणमांसं सुखावहम् ॥

शतं एणमासयथा ।

चित्राङ्गो वातशमनो वृंहणो बलकृन्मतः ।  
 श्लेष्मलः कथितो वापि दुर्जरो मेदवर्धनः ॥

शतं चित्राङ्गरा ।

किकरो लघुः वृंहो च मधुरो दीपनाशनः ।  
 तुल्यो हरिणमांसस्य ज्वरे वापि प्रशस्यते ॥

शतं किकरगुणाः ।

रोहितो वृंहणश्चैव विबन्धी दुर्जरो घनः ।

ज्वरिणां विषमाग्नीनामतिमारे न शस्यते ॥

इति रौहितगुणाः ।

तथैव गण्डगवयमहिषोष्टुरङ्गकाः ।

विश्वन्धिगुरवः स्निग्धा वातलाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥

• इति गण्डगवयमहिषोष्टुरङ्गगुणाः ।

वातघ्नं रौचनं वृष्यं दुर्जरं अमनाशनम् ।

वातलं पित्तशमनं रुचिदं धातुवर्द्धनम् ॥

इति शूकरमासगुणाः ।

शशको जाङ्गलश्रेष्ठो लघु, वृष्यश्च दीपनः ।

रुचिकृत्तर्पणो बल्यः स्निग्धोऽपि दीपशमनो मतः ॥

ज्वरे च पाण्डुरोगे च क्षये काशे गुदामये ।

राजयक्ष्माणि पाण्डौ च तथातीसारिणां हितः ॥

इति शशकमासगुणाः ।

शक्कको वृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ।

वातश्लेष्महरो हृद्यो मधुरो धातुवर्द्धनः ॥

इति शक्कमासगुणाः ।

रक्तपित्तहरा वृष्या स्निग्धा मधुरशीतला ।

श्वामकासहरा प्रोक्ता गोधा चाशीहिता बला ॥

इति गोधामासगुणाः ।

स्निग्धो बलकरः शक्रवर्द्धनो मधुरो लघुः ।

दुर्नाम्नामिदोपघ्नो वातहारी च मूषकः ॥

इति मूषकमासगुणाः । इति चतुष्यदाना मासगुणाः ।

अथातः पक्षिमांसानि व्याख्यास्यन्ते ।

पक्षिणाञ्च महाश्रेष्ठो लावको जाङ्गलात्मकः ॥

संग्राही दीपनः प्रोक्तः कषायो मधुरो लघुः ।

तथा विपाके मधुरः सन्निपातेऽतिपूजितः ॥

इति लावकसामग्राः

तथैव तित्तिरो वृष्यो मेधाग्निलवर्द्धनः ।  
 सर्वदोषहरो बल्यो बलाकाममता गुणैः ॥  
 कृष्णगौरप्रभेदाश्च श्रेष्ठो गौरश्च तित्तिरः ।  
 तृतीय तित्तिरोऽन्योऽपि सामान्यो गुणलक्षणैः ॥  
 सवातलोऽतिबलकृद्बलः किञ्चिद्रसायनः ॥

इति तित्तिरगुणाः

वात्तार्त्तिको विशदो वृष्यो यथा लावास्तथैव च ।  
 मेधावृद्धिं स्रोतसाञ्च करोत्युत्पादनं शिखी ।  
 सवातलोऽतिबलकृद्बलः किञ्चिद्रसायनः ॥

इति लावकसमग्रगुणाः

सुस्निग्धो श्लेष्मलो वृष्यो घृतः शक्रविवर्द्धनः ।  
 सामवृद्धिकरो बल्यो द्वितीयश्च सयूरकः ॥

इति द्वितीयसयूरगुणाः

तथैव कुक्कुटो ज्ञेयो मधुरश्च गुणात्सकः ।

इति कुक्कुटगुणाः

कपोतो वृ हृणो बल्यो वातपित्तविनाशनः ।  
 तर्पणः शक्रजननो हितो नृणां रुचिप्रदः ॥

इति कपोतगुणाः

तथा पारावतो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ।  
 बल्यो वृष्यो रुचिकारस्तथा हारीतको मतः ॥  
 पोतको भङ्गिका चुद्रा तथाच कुनटौ स्मृता ।  
 एते तुल्यगुणा ज्ञेया लघुवातापहारिणः ॥  
 लघुश्च कृकरो ज्ञेयः कायाग्निलवर्द्धनो भृशम् ।  
 तथा लघुर्वातहरः काष्ठकुट्टोऽग्निलवर्द्धनः ॥



वातश्लेष्माधिको ज्ञेयः शीतलः शुक्रवर्द्धनः ।

अश्मरीं हन्ति विशदो बलकृन्मांसलक्षणः ।

चकीरः शुकशारी च समदोषा गुणागुणैः ॥

इति चकीरशुकसारिगुणाः ।

क्रौञ्चो वृष्योऽतिरुचिकृदश्मरीं हन्ति नित्यशः ।

शोषमूर्च्छाहरो दीप्यो हन्ति काममरोचकम् ॥

इति क्रौञ्चगुणाः ।

कोकिलः श्लेष्मलो ज्ञेयः पित्तमंशमनो मतः ।

इति कोकिलगुणाः ।

पापौहक स्त्रिदोषघ्नो बल्यः शुक्रविवर्द्धनः ॥

इति पापौहकगुणाः ।

गृहचटकोऽतिवृष्यो बलशुक्रविवर्द्धनः ।

सर्वदोषहरश्चापि दीपनो मांसवर्द्धनः ॥

इति गृहचटकमांसगुणाः ।

इति स्थलचराणाञ्च मांसवर्गः प्रकाशितः ।

अथातो जलचराणां मांसवर्गं प्रवक्ष्यते ॥

हमः श्लेष्मकरो बलातिरुचिकृद् वृष्यो गुरुः शीतल-

श्चक्राहोऽतिकषायशुक्रजननो वृष्योऽतिरुच्यो मृदुः ।

ज्ञेयः मारमकः कफानिलहरो वृष्यो गुरुश्चोच्यते

रूक्षो वीर्यविवर्द्धनः कफहरः कङ्कस्तथा भामकः ॥

आडो वातविकारकासहननी बल्या तथा दीपनी

क्रौञ्चो वा गरशुक्रदोषहननस्तुल्यस्तथा कर्कटैः ॥

दात्यूहो मरुतस्य नाशनकरो वृष्योऽतिशुक्रप्रदः

श्रेष्ठः सर्वगुणः अमोपशमनः शुक्रप्रदो वातहा ।

चतुष्पादेषु लघ्वी स्त्री विहगेषु लघुः पुमान् ।

पूर्वाङ्गन्तु लघु, स्त्रीणां पुंसां पराङ्गमादिशेत् ॥  
 देहमध्यं गुरुप्रायं सर्वेषां प्राणिनां मतम् ।  
 गुरुण्यण्डानि सर्वेषां गूर्वा ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥

इति जलपक्षिमामगुणाः ।

मत्स्यानां मकरः श्लेष्मो दीपनो वातनाशनः ।  
 रुचिप्रदः शुक्रकरो ग्राही चोष्णविकारहा ।  
 मूत्राशमरीणां शसनो गुल्मातिसारनाशनः ॥

इति मकरगुणाः ।

शृङ्गी वातविनाशनो रुचिकरो वृथ्यः कफघ्नो मतः ।  
 वातघ्नो नहि पित्तकृत् बलकरः स्याद्रोहितः सर्वदा ॥  
 श्लेष्माकरो तु शफरी नलमौनः कफात्मकः ।  
 शकुली च विशाला च ज्ञेयौ वातकफात्मकौ ॥  
 विलं विमत्स्यं ज्ञेयञ्च वातपित्तकफाकरम् ।

इति मत्स्यमामगुणाः ।

कच्छपो मधुरः स्वादुः शुक्रवृद्धिकरो मतः ।  
 वातश्लेष्माकरो बल्यो वृंहणी रूक्ष एव च ॥

इति कच्छपगुणाः ।

कुलीरोऽतिबल्यो वृथ्यः पाण्डुक्षयविनाशनः ।  
 शोथ्रातिसारग्रहणीस्थविराणां स्त्रियां हितः ॥

इति कुलीरगुणाः ।

काकः कोकिलः शूकरास्त्वथ खरोऽष्टाश्वदयो भल्लुकाः ।  
 व्यालाः सौरभयो वृकप्रभृतयो ये चान्यजोवा नृणाम् ॥  
 मण्डूकाश्च मरीचुपादिकगणा यृकाः कलिङ्गाश्च ये ।  
 कोकः सारसशारिका शुक इमे भक्ष्या न शस्तास्तथा ॥  
 गृहचटकचकोराः काकजात्याश्च श्येनाः  
 पिक शुक विषमृङ्गीभृङ्गदात्यूहकङ्काः ।

जलकरटकपोता पोतकी-खञ्जीटाः

कलविकमशकाद्या यूकपिङ्गादयोऽन्ये ॥

एतं भक्ष्या नैव भक्ष्या न चेष्टा .

ये चाप्यन्येऽज्ञातनामाण्डजाश्च ।

अन्येचापि श्वापदा ये च निन्द्या-

स्ते चाग्राद्या वर्जिताश्चात्र सर्वे ॥

इति मासवर्ग

इति श्रीमच्छास्त्रेयसाधने द्वागीतीतरे एकादशीऽध्यायः

### द्वादशाऽध्यायः ।

अथार्ता भोजनवर्ग व्याख्यास्याम

भण्डः परिस्रवी भक्तस्तर्पणी वातनाशनः ।

मृचमहसमोरघ्ना रुचिकृन्मृचलो न्तः ॥

आशुमण्डो भवेद्ग्राही मधुरो वा कफात्मकः ।

तपणः क्षयदोषघ्नः शक्रवृद्धिकरः परः ॥

प्रसावतभक्ता युगन्धराणां भक्तश्च घनो विशदमाधुरश्च ।

फे त्रिदोषनाशनश्च कथ्यते कासश्च श्वासात्मकः एव स स्मृतः ॥

इति युगन्धरभक्तगुणाः ।

नोपनी स्वदकरा यवागूः सम्पाचनी दोषमलामयानाम् ।

न्तर्पणी धातुबलेन्द्रियानां शक्ता भवेत् स्याज्ज्वररोगिणाञ्च ॥

भागैकञ्च भवेत्तत्र द्विभागं जलं क्षिपेत् ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पलीचञ्चनागरम् ॥

धान्यकस्य समांशानि पिष्ट्वा श्वेतांश्च तण्डुलान् ।

संशुद्धा शिथिला किञ्चित् सा यवागूर्निगद्यते ॥

यवागूमुपभुञ्जानो जनो नारुचिमाचरेत् ।

शाकमासफलैर्युक्ता यवागूः स्याच्च दुर्जरा ॥

इति यवागूगुणाः ।

पञ्चकोलकधानाकैस्तथा रास्त्रान्वितः पुनः ।

मण्डस्त्रिदोषशमनो ज्वराणां पाचनः परः ॥

इति मण्डगुणाः ।

पायसं गुरु विष्टम्भजननं श्लेष्मवातलम् ।

पित्तमंशमनं बल्यं वृष्यं श्रेष्ठं रसायनम् ॥

इति पायसगुणाः ।

गुरुर्विष्टम्भजननी वातश्लेष्मकरी स्मृता ।

पित्तमंशमनी बल्या वृष्या चैव बलप्रदा ॥

सुदृढतण्डूलसंयुक्ता माषतण्डुलकैः पुनः ।

अन्यथा धान्यगुणवान् वक्ष्यते च भिषग्वर ॥

तिलानां संयुता हृद्या धातुपुष्टिविवर्द्धिनी ।

गुरुर्विष्टम्भमलकृद्, जरा श्लेष्मकोपनी ॥

इति केशरागुणाः ।

सूपश्चाक्तस्त्रिदोषघ्नो रञ्जितश्चैव सर्पिषा ।

धातुवर्द्धिकरः श्रेष्ठो वृंहणो बलवर्द्धनः ॥

इति सूपगुणाः ।

वातश्लेष्मकरो हृद्यो खलको बलकारकः ॥

इति खललग्नाः ।

कफानिलहरो हृद्यो दीपनो दाडिमाम्लकः ।

इति दाडिमाम्लकगुणाः ।

पपटस्तैलसंभृष्टो दोषहा च ज्वरापहः ।

रुचिकृत् बलकृच्चैव दाहशोषतृषापहः ॥

इति पपटगुणाः ।

शिण्डाकी च गुरुः स्निग्धा दुर्जरा चैव शीतला ।

पित्तश्लेष्मकरा वल्या धातूनाञ्च वलप्रदा ॥

इति शिखंडाकीगुणाः ।

दुर्जरा मधुरा रुच्या वटिका माषकादिभिः ॥

इति वटिकागुणाः ।

गुडेन दधिसंयुक्ता, हिता शिखरिणी नृणाम् ।

धातुवृद्धिकरा वृष्या वातपित्तविनाशिनी ॥

इति शिखरिणीगुणाः ।

शीतलः पित्तशमनो भ्रमसूर्च्छादृषापहः ।

खण्डेन संयुतः श्रेष्ठो घृतजुष्टो जलाधिकः ॥

इति मीर्षगुणाः ।

शक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ।

नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्य इत्यभिधीयते ॥

मन्यः सद्यो बलच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ।

साम्बः स्नेहश्च मगुडो मूत्रकृच्छस्य साधनः ॥

इति मन्यगुणाः ।

सिद्धं मांसं वेशवारिण युक्तं बल्यं श्रेष्ठं स्वादु मन्दोपनञ्च ।

शीतं शुद्धं दोषराशीन्निहन्ति स्नेहयुक्तं दीपनं दुर्जरञ्च ॥

नहि मांसमसं किञ्चिदन्यद्देहमहत्त्वकृत् ।

मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वात् विशिष्यते ॥

इति मांसगुणाः ।

अङ्गारैः परिपक्वञ्च वार्त्ताकं दीपनं लघु ।

बल्यञ्च स्नेहसंयुक्तं घनं घनगुणात्मकम् ॥

इति अङ्गारगुणाः ।

अङ्गारमण्डको हृद्यो दीप्योऽरीचकदोषहा ।

त्रिदोषघ्नोऽथवा ग्राही ज्वरिणां शस्यते हि तत् ॥

इति अङ्गारमण्डगुणाः ।

अत्युष्णं मण्डकं पथ्यं लघु चैव यथोत्तरम् ।  
त्रिकशूलं पार्श्वशूलं परिणामं तथैव च ।  
तृणामारुतच्छर्दिघ्नमामाशयकरं तथा ॥

इति अत्युष्णमण्डकगुणाः

तप्तकर्परपक्वा या रोचनी, मधुरा घना ।  
कफवृद्धिकरी वल्या पित्तरक्तप्रदायिनी ॥  
प्रिकाष्ठतपूरन्तु त्रिदोषशमनं परम ।  
वृथं संवृंहणं स्वादु क्षतक्षयनिवारणम् ॥

इति पुरिकागुणाः

गुरुणो दुर्जरो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ।  
प्रपक्वा श्लेष्मको हृद्यो वृथो वातानुलोमतः ॥

इति पुपकगुणाः

सौमालिका घना स्वादु रोचनी बलवर्द्धनी ।  
दुर्जरा दोषशमनी वृथालुकरणी मना ॥

इति सौमालिकागुणाः

वृंहणी वातपित्तघ्नी पथ्या लघुतरा मता ।  
फेणिका रोचनी वल्या सर्वधातुजलप्रदा ॥

इति फणीगुणाः

विष्टम्भी मधुरो हृद्यो घनो वातकफात्मकः ।  
समितो वा त्रिदोषघ्नो दुर्जरो जायते पुनः ॥

इति भिन्नवटकगुणाः

अभिन्नो दुर्जरो वल्या घनतृणाप्रदः स्मृतः ।  
तौक्ष्णा विपाके विष्टम्भी दुर्जरो जायते पुनः ॥

इति अभिन्नवटकगुणाः

कटुकास्तर्पणा वल्या दुर्जराः शोषकारकाः ।

अन्ताग्नौ न प्रशस्यन्ते मोदका बहुवर्णकाः ।

द्रव्यं गुणविशेषेण रमास्वादेन वा पुनः ॥

इति मोदकगुणाः ।

पोलिका कथिता धन्या कफदोषकरो मता ।

ब्रूया वीर्यप्रदा ज्ञेया दोषना वीर्यवर्द्धनी ॥

इति यवपोलिकागुणाः ।

विटला तु माषपर्णा सिद्धा खपरिकेण तु ।

रुच्या वान्नाविशेषेण दोषान् सर्वान् विभावयेत् ॥

अन्यानि चान्नपानानि नैवोक्तानि महामते ।।

अन्यिभिस्तैरभीरुश्च लोको नोवाच न क्षमः ॥

इति चवर्गः ।

अमान्ते भोजनं यस्तु पानं वां कुरुते नरः ।

ज्वरः संजायते तस्य कृदिर्वा तत्क्षणाद्भवेत् ॥

कृत्वा तु भोजनं मद्यो व्यायामं सुरतं तथा ।

यः करोति विपत्तिः स्यात्तस्य गात्रस्य निश्चितम् ॥

न चातिशीतं भुञ्जीत नात्युष्णं भोजने हितम् ।

कुर्याद्वातकफं शीतमुष्णं भवति मारकम् ॥

न आन्तो भोजनं कुर्यात् न व्यायामसमाकुलः ।

विप्रमस्थो न भुञ्जीत करोति विविधान् गदान् ॥

आदौ फलानि भुञ्जीत वर्जयित्वा तु कर्कटीम् ।

न नक्तं दधि भुञ्जीत भोजनाद्धेन धारणम् ॥

भुक्तोपविशतः स्थौल्यं बलमुत्तानशायिनः ।

आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥

न वादौ सलिलं पेयं भोजने पानमाचरेत् ।

अर्द्धाहारेण भुञ्जीत तृतीयं व्यञ्जनेन तु ॥

चतुर्थं तोयपानेन पूर्णाहारः सुजायते ।

भोजनोर्द्ध्वं च क्रमते शतपादं शनैः शनैः ॥  
 पश्चादुत्तानशयनं ततो वामे क्षणं शयेत् ।  
 भुक्तोपरि समाचम्य मार्जयेदक्षिणौ करैः ॥  
 पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेददरं सुधौः ।  
 उद्गीरयेत् समुद्गारं नचोद्गारस्य धारणम् ॥  
 व्यायामञ्च व्यवायञ्च धावनं पानमेव च ।  
 युद्धं गीतञ्च पाठञ्च क्षणं भुक्त्वा विवर्जयेत् ॥  
 न मद्यः पीते पठनं गमनं न च कारयेत् ।  
 न यानवाहनारोहं विवादं न च कारयेत् ॥  
 दिवास्त्रापं न कुर्यात्तु भुक्तोपरि च विश्रमत् ।  
 अकालशयनात् श्लेष्मा प्रतिश्यायः प्रपीनसः ॥  
 क्षयः शोफः शिरोऽर्त्तिश्च जायते चाग्निमन्दता ।  
 मन्दपीते परित्यान्तं हिक्काश्वासातुरेषु च ॥  
 भयशोकक्षुधात्तानां पठनान्मैथुनेन च ।  
 व्यवाये वृद्धवाले च भाराक्रान्ते तथातुरे ॥  
 अतीसारे तु शोषे च तृष्णापानात्ययेऽपि च ।  
 ग्रीष्मे वात्ये निशादृष्टे दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥

इति द्वादशोऽध्यायः

• इति श्रीमहर्षिर्विद्यभाषिते हारीतौत्तरे अन्नपानादिक नाम  
 प्रथमस्थानं समाप्तम् ।



## द्वितीयस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।



आत्रेय उवाच ।

अथातः सप्रवक्ष्यामि द्वितीयस्थानमुत्तमम् ।  
शुभाशुभानि कार्याणि स्वस्थारिष्टानि मानुषे ।  
शृणु पुत्र ! समासेन यथावत् संप्रकाशये ॥

हारीत उवाच

महाप्राज्ञ ! मया ज्ञातमन्नपानं यदुत्तमम् ।  
उदानो ज्ञातुमिच्छामि रोगाणां योगकारणम् ।  
कर्मजा व्याधयो ये च तान् वदस्व महामते ! ॥

आत्रेय उवाच ।

कर्मजा व्याधयः सर्वे प्रभवन्ति शरीरिणाम् ।  
सर्वे नरकरूपाः स्युः साध्यासाध्या भवन्ति हि ॥  
अज्ञात्वा यत् कृतं पापं पश्चात् कृच्छ्रं समाचरेत् ।  
प्रायश्चित्तवलेनापि साध्यरूपो भवेद् गदः ॥  
क्रियते ज्ञातरूपेण पश्चात् कृच्छ्रं समाचरेत् ।  
प्रायश्चित्तं न तु कृतं कष्टसाध्यो भवेद् गदः ॥

ब्रह्मघ्नगोघ्नधरणोपतिघातकश्च

आरामतोयधरणीहरपारदारौ ।

स्वाम्यङ्गनागुरुवधुकुलजाभिगामी

एते दश प्रवलरूपधरा गदाश्च ॥

पाण्डुः कुष्ठं राजयक्ष्मातिमारो मेहो मूत्रं चाश्मरी मूत्रकृच्छ्रम् ।

शूल श्वासः कासशोफव्रणाश्च दोषाश्चेत पापरूपा नृणां स्युः ॥

ज्वरोऽजीर्णं तथा कृदिभ्रमो मोहाग्निमन्दता ।  
 यक्तृप्लीहाशःशोषाश्च एते चैवोपद्रुषकाः ॥  
 व्रणं शूलं शिरःशूलं रक्तपित्तं तथोर्ध्वगम् ।  
 एते रोगा महावोरा अभिशापाद्भवन्ति हि ॥  
 अन्येऽपि बहुधा रोगा जायन्ते दोषसूत्रवाः ।  
 अतो वक्ष्ये समासेन शृणु त्वञ्च महामते ! ॥  
 ब्रह्मघ्नो जायते पाण्डुः कुष्ठो गोबधकारकः ।  
 राजघ्नो राजयक्ष्मो स्यादारमघ्नोऽतिमारवान् ॥  
 स्वाम्यङ्गनाभिगमने मेहरोगा भवन्ति हि ।  
 गुरुजायाप्रसङ्गेन सूत्ररोगोऽश्मरीगदः ॥  
 स्वकुलजाप्रसङ्गेन जायते च भगन्दरः ।  
 शूलो परोपतापी च पैशुन्यात् श्वासकार्मिनः ॥  
 मार्गविघ्नकरा ये च जायन्ते पादरोगिणः ।  
 अभिशापाद् व्रणोत्पत्तिर्यक्तृहापि प्रजायते ॥  
 सुरालये जले वापि शक्तद्वष्टं करांत यः ।  
 गुदरोगा भवन्त्यस्य पापरूपातिदारुणाः ।  
 परोपतापिनाञ्चैव जायते हि महाज्वरः ॥  
 परान्नविघ्नकरणादजीर्णमपि जायते ।  
 गरदश्चुर्दिरोगी स्याद् भ्रमिर्मिथ्याभिभाषिणः ॥  
 धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात् कदन्नदोऽग्निमान्द्यवान् ।  
 यक्तृप्लीहा भवेद्रोगो भ्रूणपातकसम्भवः ॥  
 व्रणं शूलं शिरःशूलं परतापोपकारिणः ।  
 अपेयपानरतको रक्तपित्तो प्रजायते ॥  
 दावाग्निदायको यस्तु जायते च विसर्पवान् ।  
 बहुवृक्षच्छेदनाच्च जायते च बहुव्रणः ॥  
 परद्रव्यापहाराच्च जायते ग्रहणीगदः ।

कुनखी स्वर्णहरणात् काष्ठहृद्द्रुगवान् ॥  
 रौप्यस्तेयात् श्वित्रकुष्ठं ताम्रहर्तुर्विपादिका ।  
 तपुचौरः सिध्मलश्च मुखरोगी च सौमहृत् ॥  
 वर्वरो लोहचौरः स्यात् चारचौरोऽतिमूत्रलः ।  
 घृतचौरो नेत्ररोगी तैलचौरोऽतिकण्डुकी ॥  
 परच्छिद्रौ च कृष्णाक्षो वक्रोक्त्या वक्रलोचनः ।  
 दोषवक्ता श्यामदेहो दृष्टवक्त्रौष्ठदोषलः ॥  
 रसनाशाज्जिह्वरोगौ गोत्रहा नासिकाव्रणी ।  
 एते चैव महादोषास्ततो वक्ष्यामि निष्कृतिम् ।  
 कृच्छ्रेण येन सिध्यन्ति पापरूपा महागदाः ॥

अथ पापदोषप्रतीकारः ।

गोदानं भूमिदानञ्च स्वर्णदानं सुरार्चनम् ।  
 कृत्वा पश्चात् प्रतीकारं कुर्यात् पाण्डूपशान्तये ॥  
 महापापेषु सर्वस्वं तद्वर्द्धमुपदोषजे ।  
 अथ वापि पङ्कटांशात् कल्प्यं व्याधिवलावलात् ॥  
 कुर्यात् सर्वं कृतं कर्म कुष्ठरोगोपशान्तये ।  
 गोभूहिरण्यदानञ्च तथा मिष्टान्नभोजनम् ॥  
 चतुर्विधं दानमिदं दत्त्वा कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ।  
 कदाचिदपि सिध्येत आयुषश्च वलक्रिया ॥  
 मेहे सुवर्णदानञ्च शूले श्वासे भगन्दरे ।  
 अर्शोभ्यस्त्वन्नदानेन श्वासकासादिमुच्यते ॥  
 ज्वरे चेश्वरपूजा च रुद्रजाप्यं समाचरेत् ।  
 मतिदानान्नदानञ्च शास्त्रदानं भ्रमातुरं ॥  
 अग्निहोमं चाग्निमान्ये कन्यादानञ्च गुल्मके ।  
 मेहाश्मरीविनाशाय लवणञ्च प्रदापयेत् ।  
 बहुभोजनदानेन शूलरोगादिमुच्यते ॥

महाज्वरे शान्तिकञ्च सहस्रं पूजयेत् शिवम् ।  
 स्नापयेत्तेन सिद्धिः स्याज्ज्वररोगादिसुच्यते ॥  
 घृतमधुप्रदानेन रक्तपित्तं प्रशाम्यति ।  
 वनस्पतिस्नापनेन विसर्पात् परिमुच्यते ॥  
 तुलसीसिञ्चनेनाथ अन्तं याति बहुव्रणः ।  
 चतुर्विधेन दानेन साध्यः स्याद् ग्रहणीगदः ॥  
 सुवर्णदानात् कुनखी श्यावदन्तः सुखी भवेत् ।  
 रौप्यदानाच्छिवकुष्ठं साध्यं वापि प्रदृश्यते ॥  
 सिम्भले त्रपुदानञ्च वर्वरे लोहदानकम् ।  
 मुखव्रणे ददेन्नागं गोदानं बहुमूत्रकं ॥  
 नेत्ररोगे घृतं दद्यात् सुगन्धं नासिकागदे ।  
 तैलदानं कण्ठुरोगे रसदानञ्च जिह्वके ॥  
 श्यावदन्तेन देवानां संस्तुतिः प्रविधीयते ।  
 उष्ट्रं दद्यात् पित्तरोगे लृतारोगे ददंत गाः ॥  
 अन्यांश्च कथयिष्यामि मनुष्याणां शरीरगान् ।  
 लज्वाटः परनिन्दायां परतर्केण काण्णगः ॥  
 श्वरघाताद्वक्त्रनासः पक्षपातेन पक्षहा ।  
 वामनः स्वप्रशंसायां परद्वेषातिपिङ्गलः ॥  
 परस्त्रीकृत्य कर्त्ता च जायते विकृतात्मकः ।  
 एते महागदाश्चान्ये जायन्ते पापसम्भवाः ॥  
 यदि वात्र न सिद्धेत परभावो भवेन्न च ।  
 प्रायश्चित्तं यथाकृन्तु कारयेद्भिषजाम्बरः ॥  
 भूयो जन्मान्तरे यावत् पापरोगांश्च भुञ्जति ।  
 प्रायश्चित्ते कृते वापि न पुनर्जायते भवे ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयोऽरिष्टके स्थाने

पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

आत्रेय उवाच ।

शृणु पुत्र ! समासेन यथावत् संप्रकाशयते ।

तथारिष्टपरिज्ञानं भेषजं संप्रचक्ष्यते ॥

वातिकः पैत्तिकश्चैव भयाङ्गीनवलादपि ।

विष्ठामूत्रसञ्चिते च षट्सु रोगः प्रजायते ॥

संवत्सरेण फलदो निशायां स्वप्ने तु यामे प्रथमे शुभस्य ।

स्याद्वत्सराङ्गं भवति द्वितीये यामत्रये वै विहितस्तृतीये ॥

निशावमाने प्रवदन्ति किञ्चिद्दशाहतः स्यात् फलदो मनुष्यः ।

वर्षाद्दिनादौ फलदोहि दृष्टः षाण्मासिको मध्यदिने प्रदिष्टः ॥

दिनावमाने सुधिभिः प्रदिष्टं यामत्रये स्वप्नफलं नराणाम् ।

स्वप्नेषु शुभ्राणि शुभाय धीराः सर्वाणि चेमानि विवर्जयित्वा ॥

कर्पासभस्मास्थि कपालशूलं कुर्यान्नराणां विपदं रुजं वा ।

सर्वाणि कृष्णानि विनिन्दितानि स्वप्ने नराणां विपदं रुजं वा ।

कुर्वन्ति चैतानि विवर्जयित्वा गोवाजिराजद्विजहस्तिमत्स्यान् ॥

मुकुरकुसुमभृङ्गानातपत्रं ध्वजं वा

दधि फलमथ नौकामन्नताम्बूलवस्त्रम् ।

कमलकलमशङ्कं भूषणं काञ्चनं वा

भवति सकलमिदं श्रेयसे रोगिणाञ्च ॥

दिनकरनिशिनाथं मण्डलं तारकाणां

विकचकमलकुञ्जेः पूर्णपद्माकराभः ।

तरति मलिलराशिं प्रौढनद्याश्च पारं

सुखदसुविभवाप्तौ रोगिणां रोगमुक्तिः ॥

देवद्विजो वापि तरुर्नृपो वा स्वप्नेषु वाक्यं वदते यथैव ।

तथैव नान्यच्च भवेन्मनुष्यो यदयस्य सौख्यं विपदं रुजं वा ॥

गोवाजिकुञ्जरनृपाः सुमनः प्रशस्तं  
 स्वप्नेषु पश्यति नरः मरुजः सुखाय ।  
 रोगान्वितश्च रुजनाशनमश्ववाय  
 बद्धोऽपि वै सुदृढबन्धविमोचनाय ॥

यो भूषणं पश्यति मन्दिरं वा कन्यां दधिक्षीरकुमारकं वा ।  
 सपुष्पवल्लीपलितं द्रुमं वा स्वस्थो धनाग्निं रुजनाशनाय ॥  
 स्वप्ने पयःपानमतिप्रशस्तं पानं सुरायास्त्वजभोजनं वा ।  
 घृतं यवागूकशरीदनं वा क्षीरयिकं भोजनकं सुखाय ॥  
 शिला भुजङ्गा दशते कराग्रं नरस्य सुप्तस्य शरीरकेषु ।  
 पुत्रस्य लाभ वदते धनं वा नाशं विदध्यादचिराद्भुजं वा ॥  
 सश्वेतवस्त्रां रमणीं सुरम्यां स्वप्ने समालिङ्गति यो मनुष्यः ।  
 तस्य प्रकर्षणं सुखं प्रियं स्यात् सपुत्रलाभश्च रुजां विनाशः ॥  
 यो धान्यमुदीक्षति सुप्तिकाले गोधूममिडाययवादिकं वा ।  
 धान्याप्तिरम्यामयनाशहेतुः स्वप्नेषु शौघं मनुजे सुखाय ॥

सफलो धनसम्पत्तिर्दीप्तिरोगविनाशनम् ।

सुखञ्च पुष्पिते ज्ञेयं सम्पूर्णं वाञ्छितं फलम् ॥

इति शुभस्वप्नानि ।

काकैः कङ्कैः करभभुजगैः शूकरोलूकगृध्रैः  
 जम्बूकैर्वा वृकखरमहिषेष्टातिरूक्षैः श्वभिश्च ।  
 व्याघ्रैर्गर्हैर्मकरकपिभिर्भक्ष्यमाणं स्वकायं

दृष्ट्वा योऽसौ भजति नितरां हानिमापद्भुजं वा ॥

योऽभ्यञ्जितं पश्यति चात्मविग्रहं सर्पिर्वमातैलविशेषकेण ।

शौघं रुजाप्तिर्भवतीह तस्य वदन्ति धीरा निपुणं विधेयम् ॥

व्याघ्रोद्वखरसंयुक्ते रथे सौरभसंयुते ।

उह्यमानो दिशं याम्यं गच्छेच्च स मृतिं भजेत् ॥

रक्तवस्त्रां कृष्णवस्त्रां मुक्तकेशीं विसर्पिणीम् ।

वामां हतां रुदन्तीं वा गायन्तीमथ पश्यति ॥

अथाह्वयति संक्रुद्धा समालिङ्गति चर्वति ।

यः पश्येत् स्वापकाले तु व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥

यस्य स्वप्ने बलिः कुष्ठो दन्तपातः प्रदृश्यते ।

शौर्यन्ते केशरोम्राणि स सुखी चापदं लभेत् ॥

यस्य खड्गादिकुन्तास्त्रेस्तोमरादिप्रहारतः ।

रक्तञ्च दृश्यते देहं स सुस्थो व्याधिमृच्छति ॥

शून्यागारं पश्यते यो मनुष्यः प्राप्तादमालोकयते विहीनम् ।

तापं सम्यक् पुष्पिताना द्रुमाणां तद्यः सो वै मृत्युमेव प्रयाति ॥

नरः प्रेक्षते भिन्नदेवं घटं वा तथा भग्नं शाखिनं मन्दिरं वा ।

गौणं पश्येत् स्वापकाले गृहं यो व्याधिग्रस्तो मृत्युमेव प्रयाति ॥

पितरो दिशि दक्षिणस्यामाश्रिताश्च तस्य चाण ।

तनुते हि तस्य मृत्युं यस्य शूलविघातदर्शनम् ॥

कर्पासभस्मास्थिकपालशूलं चक्रञ्च पाशन्वथ वा प्रपश्येत् ।

तस्यापटं रोगधनक्षयं वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम् ॥

इति प्रदिष्टानि शुभाशुभानि निशासुपुषे मनुजे विशेषात् ।

तथा विजानौहि महामते ! त्वं गदस्य नाशाय विधेयमत्र ॥

स्नानञ्च दानञ्च सुरार्चनं वा होमन्तथा मन्त्रविधारणञ्च ।

दुःस्वप्नमेतैः सुविनाशमेति शुभाश्च मौख्यं वितनोति शीघ्रम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

आर्य उवाच ।

शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ ! सर्वदेहार्थसाधकम् ।

वैद्यशास्त्रस्य सारं यत् स्वस्मारिष्टन्तु मानुषे ॥

यो न पश्येद्ध्रुवं सम्यक् स्वस्थोऽपि मनुजो बुधः ।

तस्य परमासमध्ये तु मृतिश्चैवोपपद्यते ॥

यो वै द्वितीया मथ मध्यलेखां नरो न पश्येत् द्विजराजकस्य ।

मासत्रयं प्राप्य विमृज्य देहं जीवो ब्रजेदेव यमस्य लोकम् ॥

यः कर्णघोषं न शृणोति दृष्टं मृताश्च यूकाः प्रपतन्ति मौली ।

यो वैपरीत्यं विमृणोति शब्दं मासद्वयं प्राप्य जहाति जीवम् ॥

यः स्वस्थदेहः श्वसते मुखेन नेत्रेऽरुणे श्यावमथैव वक्तम् ।

जिह्वा विशीर्णा दशनाश्च कृष्णाः स्वस्थोऽपि शीघ्रं यमलोकगन्ता

यस्य प्रभाते च शिरोव्यथा स्याद्दीपे गतेऽस्तं न च गन्धमेति ॥

विपश्यते यः पटलं च रणोः स वै मृतिं याति न दीर्घमायुः ।

यः सूर्यविम्बे शशिनं प्रपश्येद्दिना परीवेशमवेक्ष्यमाणः ॥

धूमावृतं वा रविमण्डलञ्च प्रपश्यते शीघ्रमृतिं स गच्छेत् ।

स्वस्थो निरभ्रं गगने च पश्येद् यः शक्रचापं विदिशादिशासु ।

तथैव विद्यान्न जनाग्रतो यः स शीघ्रमुग्रं यमलोकमेति ॥

यो वै नेत्रे निरुद्धे द्युति मथ चपलां पश्यते वै पुरस्तात् ।

कर्णे रन्ध्रं निरुद्धा ध्वनिमपि मनुजः संशृणोत्येव नित्यम् ॥

तिक्ताद्यानां रमानां कथमपि रमनास्वादमात्रं न वेत्ति ।

क्षिप्रं वैवस्वतस्यालयगति विलसन् दृश्यते मानुषश्च ॥

यस्यात्युष्णं शरीरं शिशिरमथ मनुष्यस्य यस्याविलञ्च

शीतं नोचेद्भिमजलसिकते रोमहर्षो न यस्य ।

दण्डाघातेन देहे भवति स पुनः आङ्गदेवस्य लोके

लोकानां दर्शनाय द्रुतमतिरुचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥

तैले जले दर्पणके घृते वा परस्य नेत्रे प्रतिविम्बमात्मनः ।

पश्येन्न योऽसौ यमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव ॥

इति स्वस्थारिष्ठानि ।

उपद्रवैश्च ये पुष्टा व्याधयो यान्त्यवार्थ्यताम् ।



रसायनादिना वत्स ! तावदेकमनाः शृणु ॥  
 घातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम् ।  
 अश्मरीमूढगर्भश्च तथाचोदरमष्टमम् ॥  
 अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महागदाः ।  
 प्राणमांसक्षयश्वासतृणाशोषवमिज्वरैः ॥  
 मूर्च्छातीसारहिक्काभिः पुनरतैरुपद्रुताः ।  
 वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥  
 यस्य जिह्वा भवेत् श्यावा पीता वा नीलसम्भवा ।  
 श्वासो भवत्यतीवोष्णः शरीरं पुलकान्वितम् ॥  
 नीलनेत्रेऽरुणे पीते कण्ठे च घुर्घुरायते ।  
 न जीवति ज्वरार्त्तस्तु लक्षणं यस्य चेदृशम् ॥  
 मुखे श्वासो भवेद् यस्य श्यावा दन्तावली पुनः ।  
 स्तब्धनेत्रोऽवली यः स्याज्ज्वरार्त्ता नैव जीवति ॥  
 बहुमूत्रो बहुश्वासो क्षामोऽरोचकपीडितः ।  
 हतप्रभेन्द्रिया यश्च ज्वरो शीघ्रं विनश्यति ॥  
 यस्यास्यात् स्रवते रक्तं शिरोऽर्त्तिर्यस्य दृश्यते ।  
 अन्तर्दाहो वह्निः शीतः स ज्वरो मृत्युमृच्छति ॥  
 यस्ताम्यति विमंजस्तु शीते निपतितोऽपि वा ।  
 शीतार्दितोऽन्तरुणश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥  
 यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि सङ्घातशूलवान् ।  
 नित्यं वक्त्रेणोच्छसेच्च तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥  
 हिक्काश्वासपिपासार्त्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ।  
 सन्ततोच्छासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥  
 आविलाक्षं प्रताम्यन्तं तन्वायुक्तमतीव च ।  
 क्षीणशोणितमांसञ्च नरं नाशयति ज्वरः ॥  
 घनं निष्ठीवनं नेत्रं प्लावारोचकपीडितम् ।

अन्तर्दाहोऽसिता जिह्वा शीघ्रं नाशयते ज्वरः ॥  
 यस्य वोपद्रवार्त्तस्य शान्तिस्तस्य प्रदृश्यते ।  
 दारुणापद्रवश्चान्यः पुनश्च बहु रूपवान् ॥  
 तेन मृत्योर्वशं याति सिद्धिं नेच्छेद्विषग्वरः ।  
 यस्यादौ दृश्यते चैवाप्यतिसारस्तथा ज्वरः ॥  
 श्वासः शोषश्च यस्य स्यात् सोऽपि शीघ्रं मृतिं व्रजेत् ।  
 श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपौडितम् ॥  
 विशेषेण नरं वृद्धमतौमारो विनाशयेत् ।  
 यस्यातिसारशोफाः स्युस्तथारोचकशूलवान् ॥  
 सोऽपि शीघ्रं मृतिं याति बहुभिः प्रतिकर्मभिः ।  
 बालस्य चातिवृद्धस्य विकलस्य नरस्य च ॥  
 सर्वाङ्गे जायते शोफः सोऽपि मस्त्रियते ध्रुवम् ।  
 यस्याध्मानश्च शूलश्च श्वासस्तृष्णा विमूर्च्छनम् ॥  
 शिरोऽर्त्तियस्य दृश्येत सोऽपि मृत्युमवाप्नुयात् ।  
 पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः ॥  
 पाण्डुसङ्घातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति ।  
 पाण्डुत्वक् पाण्डुनेत्रे च मूत्रं वा पाण्डुरं भवेत् ॥  
 शुक्लाक्षमन्नदंष्टार मूर्ध्निश्वासनिपौडितम् ।  
 कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥  
 धातुहीनो भवेद्यस्तु शोफश्वासनिपौडितः ।  
 बहुभोज्यो घृणावांश्च राजयक्ष्मी विनश्यति ॥  
 हृङ्गारः शीतलो यस्य फुत्कारे चोष्णता भवेत् ।  
 स्निग्धनाडी न निर्वाहः शीघ्रं याति यमालयम् ॥  
 अङ्गकम्पो गतेर्भङ्गो मुखं वा कुङ्कुमप्रभम् ।  
 फुत्कारे च भवेद्वायुः स च याति यमालयम् ॥  
 चिरप्रवृद्धरोगन्तु भोजनेऽप्यसमर्थकम् ।

भग्नगात्रमुपेक्षत भेषजोऽप्यरहस्यकम् ॥  
 एतादृशं नरं ज्ञात्वा नोपचारं चरेत् बुधः ।  
 विट् ध्वंसश्वासशोफार्त्तं तथा ज्वरनिपीडितम् ॥  
 गम्भीरश्चमनं यस्य उदरं क्षयते नरम् ।  
 श्वासः शूलं पिपामा च विद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥  
 भवन्ति दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ।  
 नेत्रं जिह्वाधरो यस्य रक्तौ वा रुधिरं वमेत् ॥  
 रक्तमूत्रौ रक्तमारौ रक्तपित्तौ विनश्यति ।  
 लोहितं कटयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥  
 रक्तानाञ्च दिशां द्रष्टा रक्तपित्तौ विनश्यति ।  
 मुखशोफो भवेद् यस्य भ्रमारोचकपीडितः ॥  
 विब्रम्भादरशूली च उदरो क्षयमाप्नुयात् ।  
 आधानं बद्धविटकञ्च कूर्दिहिकारुजान्वितम् ॥  
 रुजाश्वाससमाविष्टं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ।  
 यस्य तृष्णा भवेद्दुघोरा मुहुर्वापि वमिर्भवेत् ॥  
 भ्रमोपपन्नो भवति न स जीवति मानवः ।  
 अपूर्णं दिवसे नारौ ज्वरार्त्ता पुष्पमाप्नुयात् ॥  
 सा न जीवेत् महाप्राज्ञ ! यस्या हि सारणी भवेत् ।  
 यः शोफश्वाससंयुक्तस्तृणायुक्तश्च शूलवान् ॥  
 कामलापाण्डुरोगार्त्तौ नरश्च स विपद्यते ।  
 वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ॥  
 भगन्दग्नात् प्रस्रवन्ति यस्य तं परिवर्जयेत् ।  
 शूलञ्च नाभौ वृषणे बद्धमूत्रं रुजान्वितम् ॥  
 अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ।  
 गर्भकोषपरिष्वङ्गो विवृद्धो योनिसङ्गतः ॥  
 हन्ति स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्तोपद्रवान्वितः ।

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातिमारपीडितम् ॥  
 पूर्यमाणं विरिक्तञ्च वर्जयेद्दरान्वितम् ।  
 बहुशोऽतिरुजार्त्तन्तु प्रक्षीणं वलितभ्रुवम् ॥  
 नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणमप्रस्मारो विनाशयेत् ।  
 शूलं सुप्तत्वचं भग्नमाध्मानपरिपीडितम् ॥  
 रुजार्त्तिमन्तञ्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ।  
 यथोक्तोपद्रवारिष्ट मतिप्रसृतमेव च ॥  
 पीडकापीडितं गाढं प्रमहो हन्ति मानवम् ।  
 प्रभिन्नं प्रसृताङ्गञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥  
 पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ।  
 अवाङ्मुखो वोन्मूखो वा क्षीणमांसवलो नरः ॥  
 जागरुको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥

इति व्याधिरिष्टानि

यः शीलवान् क्रोधनता मुपैति यः क्रोधवान् शीलगुणं च ध-  
 हावेव मृत्युं तनुतो विधिक्ष ! स्थूलो नरः शीघ्रतरं कृशाङ्गः  
 यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्मरतो यदि स्या-  
 म मृत्युभाजी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति  
 यो गौरवर्णो विदधाति काष्ण्यं कृष्णोऽपि गौरत्वमुपैति यश्च  
 तथा मृतिं याति नरः प्रकृत्या शीघ्रं विकृत्या जडतोऽपि यो  
 यो वैपरीत्यं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्र-  
 स वै मृतिं पश्यति यो न पश्येत् छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्न-

यो वेन्द्रियैः प्रतिहतः कृशतां प्रयाति

स्थूलोऽतिमात्रं स भवन् मरणं विपश्येत् ।

नूनं रसं खलु न वेत्ति जिघत्समानः

सोऽप्यन्तकप्रियतमो वदते मनुष्यः ॥

यस्यास्यगन्धमाघ्राय भजन्ते नीलमक्षिकाः ।  
नासिकायां शरीरे वा सोऽपि लोकान्तरं व्रजेत् ॥

इति पञ्चेन्द्रियविकारी नामाध्यायः ।

इति श्रीमहर्ष्यत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयेऽरिष्टके

स्थाने तृतीयोऽध्यायः ।

### चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ नक्षत्रयोगेन व्याधिर्यस्य प्रजायते ।  
साध्यामाध्यञ्च याप्यञ्च वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ॥

आदित्ययोगेन मघा विशाखा  
चन्द्रेण युक्ता कुज आर्द्रया तु ।  
मूलं बुधे सुरगुरौ यदि कृत्तिका स्यात्  
शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः ॥  
एतान् वदन्ति निपुणा यमघण्टयोगान्  
व्याधिप्रपन्नमनुजो यदि पुण्ययोगात् ।  
जीवेद्यदा कथमसौ करणेन हौनो  
घोरां तरन् सुविपदञ्च कथं सुखं स्यात् ॥

आदित्येनानुराधा भवति हिमरुचिश्चोत्तरामंप्रयुक्तो  
भीमः सप्तर्षियुक्तो बुध इह तुरगी योग एषोऽशुभाय ।  
जीवो वा चेन्मृगशिरसि गतोऽश्लेषया भार्गवो वा  
हस्तेनाद्रित्यपुत्रः प्रवदति न शुभं शास्त्रविद् योगयुक्तः ॥

इति मृत्युयोगः ।

दिनकरकरयुक्तः सौम्ययुक्तोऽपि सोम-  
स्तुरगसहितभीमः सोमपुत्रोऽनुराधा ।  
सुरगुरुरपि पुण्ये रेवती शुक्रवारे

दिनकरसुतयुक्ता रोहिणी सौख्यहेतुः ॥

इति श्रमतयो

शूले वज्रेऽतिगण्डे वा व्याघाते व्यतिपातके ।  
 विष्कम्भयोगयुक्ते च नक्षत्रे क्रूरदैवते ॥  
 एतैरमाध्या ज्वारिणस्तस्माद् योगान् परीक्षयेत् ।  
 योगं ऋक्षे तथा वारं क्रूरे प्राप्ते न जीवति ॥

इति क्रूरयो

सिद्धः शुक्लः शुभः प्रोतिरायुष्मांश्च सुकर्मणः ।  
 धृतिर्द्विध्रुवा हपेः सुखमाध्या इमे स्मृताः ॥

इति योगावज्ञा

मघा विशाखा भरणी तथाद्री मूलं तथा कृत्तिकहस्तऋत  
 एतान् प्रगस्तान् मुनयो वदन्ति वारक्रमणैव विचिन्तनीया  
 मघाभरणीहस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपि वै ।  
 मृत्युमाप्नुयते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ॥  
 अश्विनी रोहिणी पुष्या ऋगज्येष्ठा पुनर्वसुः ।  
 एते माध्यास्य विज्येया ज्वारिणाश्च विधीयतः ॥  
 पूर्वात्रयं स्वातिरथापि चित्रा त्वष्टापयाद्री श्रवणं धनिष्ठा ।  
 मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिरसाध्ययोगो ज्वरितस्य चा  
 एतेषु मद्योज्वरपौडित्या माध्यं सुयाध्यं कुरुते नरस्य ।  
 तस्मात्तु विज्ञाय बुधश्च कुर्यात् रुजां विनाशं प्रतिकर्मभिश्च  
 अश्विन्या मकरात्रन्तु भरण्यां मृत्युमौक्षते ।  
 कृत्तिकायां नवरात्रं रोहिण्यान्तु दिनत्रयम् ॥  
 ऋगण बहुषोडा स्यादाद्रीयां मृत्युरेव च ।  
 पुनर्वसौ च पुष्ये च मघरात्रन्तु पीड्यते ॥  
 नवरात्र तथाश्लेषा मघास्वेति यमालयम् ।  
 पूर्वा मासत्रयं ज्येष्ठं उत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥

पूर्वात्रये त्रयो मासाः शुभा ज्ञेया मनीषिभिः ।  
 एतेषां तुर्यगे पादे यदि रोगस्तदा मृतिः ॥  
 हस्ते न प्राप्यते सौख्यं चित्रा पञ्चदशाहकम् ।  
 स्वातिः षोडशरात्रन्तु विशाखा विंशरात्रकम् ॥  
 अनुराधा पक्षमेकं ज्येष्ठा दण्डिनानि तु ।  
 मूलेन मृत्युमाप्नोति आपादासु त्रिपञ्चकम् ॥  
 उत्तरा विंशरात्रेण श्रवणे मासकद्वयम् ।  
 मासद्वयं धनिष्ठा स्यात् सप्तर्षिर्दिनविंशतिः ॥  
 नवरात्रं भवेत् पूर्वा उत्तरा पञ्चकत्रयम् ।  
 दशाहं रेवतीषोड्हा मुच्यते व्याधिभिस्ततः ॥  
 कृत्तिकासु ज्वरस्तीव्रो व्याधिर्भवति पैत्तिकः ।  
 प्रथमे चरणे चैव दिग्दिनानि विनिर्दिशेत् ॥  
 दशैव द्वितीये भार्गवे तृतीये दिनपञ्चकम् ।  
 रोहिण्यां नवरात्रन्तु प्रथमेऽंशे प्रकौत्तितम् ॥  
 द्वितीये द्विगुणं प्रोक्त तृतीये दशरात्रकम् ।  
 नक्षत्रे चन्द्रदेवत्ये सप्ताहं प्रथमेऽंशकं ॥  
 तथैव पञ्चरात्रं स्यात् मध्ये द्वादशवासरात् ।  
 तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनन्तरम् ॥  
 उत्तरा प्रथमांशे च वासराणि चतुर्दश ।  
 द्वितीये सप्तरात्रन्तु तृतीये दिवसान् नव ॥  
 यदि हस्ते भवेद्रोगः प्रथमे सप्तरात्रकम् ।  
 चत्वार्यहानि द्वितीये तृतीये दिनपञ्चकम् ॥  
 मृत्युं विद्यात्तथा चान्ते त्वाष्ट्रे यस्य भवेज्ज्वरः ।  
 त्रिभिर्मासैर्द्वितीयांशे रोगो भवति दारुणः ॥  
 तृतीयांशे तथा ज्ञेयं वासराणि त्रयोदश ।  
 वायव्ये प्राक् सप्तदश द्वितीये चैकविंशतिः ॥

अस्यैव तु तृतीयांशे मृत्युमेव विनिर्दिशेत् ।  
 प्रथमांशे विशाखायां त्रिगुणाः षोडश स्मृताः ॥  
 द्वितीये द्वादश प्रोक्तास्तृतीयेऽपि तथैव च ।  
 मैत्रांशे प्रथमे सप्त द्वितीये पक्षमादिशेत् ॥  
 तृतीयांशे चतुःषष्टिर्वासराणां महामुने ।  
 पक्षमैन्द्रे प्रथमके द्वित्रिभागे च षोडशः ॥  
 मूलकेऽंशे तृतीये तु पक्ष एव मनोषिभिः ।  
 आद्ये पूर्वं त्रयो मासा मध्यमेऽहानि षोडशः ॥  
 तृतीये च पुनर्मृत्युर्वासरात् संप्रजायते ।  
 वैश्वे च प्रथमे पक्षं मध्ये द्वादशरात्रिकम् ॥  
 दिनानां विंशतिः प्रोक्ता तृतीयांशे महामुने ! ।  
 सप्ताहमादौ श्रवणे विंशतिर्मध्यमे सता ।  
 षोडशाहं तृतीयांशे सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ।  
 विंशतिर्वासरः पूर्वा मध्यमे मासयुग्मकम् ॥  
 मासस्तृतीये विज्ञेयो देवज्ञैश्च निवेदितम् ।  
 वारुणे दारुणे रोगस्त्रिपक्षं प्रथमांशके ॥  
 द्वितीये मासषट् कन्तु षोडशाहं तृतीयके ।  
 अहिब्रध्ने पक्षमादौ मध्ये मासं विनिर्दिशेत् ॥  
 अन्तेऽष्टाविंशतिर्ज्ञेया षोडा स्यात् पापकर्मणि ।  
 रेवत्याः प्रथमे चाष्टौ द्विभागे चैव षोडशः ॥  
 दश पर्वाहपूर्वांशे मध्ये सप्तदशस्तथा ।  
 अन्ते त्रिंशद्दिनान्येवं प्रोक्तानि पूर्वसूरिभिः ॥  
 अश्विन्याः प्रथमे भागे दिनमेकं प्रकीर्तितम् ।  
 द्वितीये पञ्चरात्रन्तु तृतीये सप्तकं तथा ॥  
 भरण्याः प्रथमे चांशे सप्तवासरमेव च ।  
 मध्ये मृत्युस्तथाचान्ते रोगो मासत्रयावधिः ॥



एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक् कुर्यात् प्रशमनक्रियाम् ।

नक्षत्रस्य त्रयो भागा आत्रेयेण प्रकाशिताः ।

इति श्रीमद्भर्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयेऽरिष्टके स्थाने नक्षत्रज्ञानं  
नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

### पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ नक्षत्रहोमं व्याख्यास्यामः ।

अर्कः खदिरपालाशो वटरो पारिभद्रकः ।

दूर्वा शमी कुशः काशः पौष्पलो वटमश्ववः ॥

जम्बूाम्रः करहाटश्च सोमवल्ली कलिद्रुमः ।

रक्तमारश्चन्दनञ्च जयन्ती वृद्धदारकम् ॥

शतावरी सहचरी स्वर्णक्षीरी निशायुगम् ।

उडुम्बरस्तथा विल्वः समिद्धर्गः प्रकीर्तितः ॥

इति समिधः ।

रक्तचन्दन-गोरोचना गैरिक-निम्ब विल्व-पत्तङ्ग-कुङ्कुमकस्तु-  
रिका-घनसार-श्रीपणी-सुरदारु-हरिचन्दनपद्मक हरिद्राद्वय-  
कालीयका गुरु-शिशपा-शाल सरल-ककुभेङ्गुदी-शैलेयक मनो-  
ह्वा-पिप्पल-न्यग्रोधपलाशानि गन्धानि । पद्म विल्व-सुरमेङ्गुदी-  
नाग-कैशर-जयन्ती-शमी-चम्पकार्क-किंशुक-कर्णिकार गिरि-  
कर्णिका-सहचरी शैलूष-जम्बूाम्रार्जुन-पियालोत्पल-केतकी-  
युथिका-काञ्चनार-पाटला वर्वरौ अगस्तिका-कङ्काराशोकानि  
पुष्पाणि । धूपदीपादिभिः अलङ्कारैरलङ्कृतं वास्तुमण्डलं कृत्वा  
ईशानादिक्रमेण नक्षत्रमण्डले यथोक्तगन्धपुष्पैरर्चयेत् । तन्मण्डल-  
मध्ये आदित्यादिनवग्रहान् समभ्यर्च्य क्रमेण समिद्धिर्होमं  
कुर्यात् । दधिमधुघृताक्ताभिः समिद्धिरश्विन्यादिक्रमेण जुहुयात्  
आकृणोति अर्कसमिधा इदमश्विन्यै । विष्णोरराटमसीति खदिर-

समिधा इदं भरण्यै । मधुमध्विति पलाशसमिधा इदं कृत्ति-  
 कायै । एवं क्रमेण काण्डादिति वदरौसमिधा रोहिणीम्  
 इमम्मे गङ्गे इति पारिभद्रसमिधा मृगशिरां औश्वते इति  
 दूर्वासमिधा आर्द्रां याः फलिनौरिति शमौसमिधा पुनर्वसुम्  
 अश्वे अश्विके इति कुशसमिधा पुष्याम् इमं देव इति कुश-  
 समिधा अश्लेषां त्रिम्बकं यजामहे इति पिप्पलसमिधा मघां  
 या ते रुद्र इति वटसमिधा पूर्वफल्गुनीं सद्यो जातेन इति  
 जम्बुसमिधा उत्तरफल्गुनीं शन्नो देवौरिति आस्रसमिधा  
 हस्तां कयानश्चित्रेति करहाटसमिधा चित्रां द्रुपदादिवेति  
 सोमवल्लीसमिधा स्वातीं सोमं राजानमिति विभीतकसमिधा  
 विशाखां मूर्धानन्दिवमिति रक्तमारसमिधा अनुराधाम् अभी-  
 षुण इति चन्दनसमिधा ज्येष्ठाम् आतून इति जयन्तीसमिधा  
 मूलां भद्रं कर्णेभिरिति वृद्धदारकसमिधा पूर्वाषाढाम् आया-  
 होति शतावरौसमिधा उत्तराषाढां सर्वतः पाणिपादन्त इति  
 सहचरौसमिधा अवणाम् अप्यायस्वेति स्वर्णक्षीरौसमिधा  
 धनिष्ठां माता रुद्राणामिति हरिद्रासमिधा शतभिषां देवोव  
 इति दारुहरिद्रासमिधा पूर्वभाद्रपदां स्वस्तिन इति उडु-  
 स्वरसमिधा उत्तरभाद्रपदां योवः शिव इति विल्वसमिधा  
 रेवतीं होमयेत् । घृतेन पूर्णाहुतिं दद्यात् नवग्रहान् हुत्वा  
 तस्मात् समिद्धिः स्नानमाचरेत् । शुक्लवस्त्रोत्तरीयं यज्ञोप-  
 वीतसहितं रोगिणं कृत्वा वेदादिमन्त्रैरभिषिच्य ब्राह्मणेभ्यो  
 भूवस्त्रहरण्यादिदानं कुर्यात् । इति विधाने कृते सम्यक्  
 शान्तिर्भवति ।

इति श्रीमहर्षात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयेऽरिष्टके स्थाने

होमविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथ रोगाभिभूतानां दूतारिष्टं भिषग्वर ! ।

शुभं वाशुभमेवान्यत् समासेन प्रचक्षते ॥

आतुरोपक्रमार्थन्तु दूतो याति भिषग् गृहे ।

तस्य परीक्षणं कार्यं येन संलक्ष्यते गदः ॥

वृज्जान्धमूकं वधिरञ्च वामनं स्त्रियञ्च कुञ्जं दृषितं विजीर्णम् ।

ग्रान्तं क्षुधात्तं अमितञ्च दीनं शस्तं न वै वेदविदो वदन्ति ॥

रूपायकृष्णादसुपोतवाससा तथैव वस्त्रावृतमस्तकेन ।

प्रश्रुप्तुर्तेर्वा नयनेश्च युक्ताः केशैस्तथा मुण्डितमस्तकाश्च ॥

मर्ककराक्षार्द्धेशिरोरुहाश्च खर्वास्तथा धर्मवहितष्कृताश्च ।

गतान्न शंसन्ति विदुर्मनौन्द्रा दूतान्नराणां रुजनाशनाय ॥

यः कर्कशः क्रोधनपाशपाणिभिर्षग्विगर्ही तमसो वृतश्च ।

गते न शस्ताः प्रवदन्ति धीरा दूता विकारं प्रतिवर्द्धयन्ति ॥

यः काष्ठहस्तोद्धतपाशपाणिस्तथातुरोदीनवचो हि रोदितः ।

रत्ननिर्गतो गमनात्सुकोऽपि वर्ज्यरुजात्तोऽशुभकारिदूतः ॥

यो रज्जुहस्तोद्धतपाशपाणिर्याम्यां दिशं च परिभूय तूर्णम् ।

यो वावदौति प्रवलं मरोपात्तथा समागच्छ वदेच्च दूतः ॥

न कूटहस्तोऽवष्टभ्य वक्रपादेन तिष्ठति ।

तस्मादाकुण्ठवादी यो न शस्तो वैद्यकर्मणि ॥

यथा गच्छति शौघ्रेण आविश्योत्थाय मुह्यति ।

पादौ प्रसार्य विशति मस्तके विन्यसेत् करम् ॥

भिनत्ति लोष्ट्रकाष्ठञ्च दृणं स्फोटयते क्वचित् ।

अथवा स्पृशते नासां स्तनं वा स्पृशते पुनः ॥

भूमिं लिखति पादेन रेखां वापि करोति यः ।

निद्रां वा कुरुते यस्तु सदूतोऽरिष्टकारकः ॥

यः श्वेतवस्त्रावृतपूर्णपाणिः संपूर्णताम्बूलमुखः प्रशस्तः ।

द्विजस्तथा मानवकः सुशीलः प्रज्ञाधिकश्चाह्वयते सुखाय ॥

कुसुमसुकुरचक्रच्चातपत्रं सरोजं

सितकिशलयगन्धं पद्मकिञ्जल्कपुष्पम् ।

करतलगतवस्त्रं धूपपूगाङ्गरागं

करतलघृतमेतत् सौख्यकर्त्ता हि दूतः ॥

आगत्योदौच्य पूर्वामथ वरुणदिश मेशमाश्रित्य शान्तो

दृष्ट्वा वैद्यं प्रहस्य प्रवदति निपुणं नाति नौचं न चोच्चम् ।

उत्तिष्ठेति प्रसादं कुरु वचनमिदं सौख्यवार्त्तां तनोति

प्राज्ञैः स्वार्थे प्रकृष्टं सुखमगदहरं रोगिणां वैद्यलाभम् ॥

पूर्वां दिशं समासाद्य प्रशान्तः शान्तया गिरा ।

वदन्ति वैद्यलाभाय रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥

यश्चागत्योपविष्टोऽपि श्लोकं वाथ सुभाषितम् ।

वदते शान्तया वाचा वैद्यलाभश्च शान्तये ॥

योऽभिवाद्यापि वैद्यस्य क्षेमं संपृच्छते पुनः ।

फलं ददाति पुष्पं वा रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥

तस्य सौख्यं रुजां शान्तिर्यस्य दूता इदं विदुः ।

किमत्र बहुनोक्तेन रम्यो दूतः सुखावहः ॥

एवं जानाति यो वैद्यस्तस्य सिद्धिः सुनिश्चिता ।

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयेऽष्टिके दूतपरीक्षालक्षणे

नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

आत्रेय उवाच ।

इदानीं निर्गमे पुत्र ! प्रवेशे वा गृहस्य च ।

शुभाशुभानि सर्वाणि वक्ष्यामि शकुनानि ॥

राजा गजो द्विजमयूरक-खञ्जरीटा-  
 खाषः शकुन्तरजकः शितवस्त्रयुक्तः ।  
 पुत्रान्विता च युवती गणिका च कन्या  
 श्रेयः सुखाय यशसां प्रतिदर्शयन्ति ॥

लटः श्येनोभामहारीतचक्रो भारद्वाजश्चक्रकरश्चागसंज्ञः ।  
 एते श्रेष्ठा दक्षिणे वाथ मध्ये वैद्यावेशे निर्गमे श्रेयसे च ॥  
 सर्पिलृकौ वानरः शूकरश्च गोधा ऋक्षः कृकलाशः शशश्च ।  
 एतेऽरिष्ठा निर्गमे वा प्रवेशे कार्याघाते नोपकारिषु शस्ताः ॥

मृगा वा पिङ्गलो वापि प्रशस्ता दक्षिणे सदा ।  
 निर्गमे वा प्रवेशे च दक्षिणे शुभदायकः ॥  
 एका वा त्रयो वा पञ्च सप्त वा नवसंख्यया ।  
 भाग्यकाले नराणान्तु मृगा यान्ति प्रदक्षिणाः ॥

शिखिहयगजगोधा रामभो भृङ्गराजो  
 मुखरपिककपोताः पोतकी शूकरी वा ।  
 तटनु विहगराजो मङ्गलाशंसिनः स्यु-  
 वेदति शकुनवेत्ता वामतो निर्गमे च ॥  
 तित्तिरिः कुररः क्रीञ्चः सारसा भामशूकराः  
 वामे तु शुभशंसो च निर्गमे कार्यसिद्धये ।

काको दक्षिणतः श्रेष्ठो निर्गमे शुभदायकः ।  
 प्रवेशे गदितः श्रेष्ठो वामतः कृष्णवायसः ॥  
 मालको हि शशकोऽपि कर्कटकौर्त्तनञ्च गदितं न सुखाय ।  
 शुभदर्शनं असौ भवेयुः सर्पगोधाकृकलाशविडालाः ॥  
 शने हितकरं प्रवदन्ति खञ्जरीटमरालक्षिकराणां ।  
 मत्तः शुभकराः प्रवदन्ति दार्वाघाटवराटकशुकाश्च ॥

इति शुभाशुभशकुनानि ।

निर्गमे विविधकार्यसिद्धये भृङ्गराजरजतं पयो जलम् ।

मत्स्यमांसरुधिरं सृतकं वा धौतवस्त्रमुकुरञ्च पिधानम् ॥  
 मार्गं छिन्दति मार्जारः सर्पो वा कृकलाशकः ।  
 गाधा वापि प्रवेशे च पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥  
 स्खलन्ति पादशौर्षाणि वचनानि स्खलन्ति वा ।  
 विकुण्ठं वचनं श्रुत्वा पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥  
 गृहाणां ज्वलनं दृष्ट्वा भिद्यते सजलं घटम् ।  
 पतनं भूरुहाणाञ्च दृष्ट्वा कुर्यान्न चक्रमम् ॥  
 आक्रोशवचनं श्रुत्वा मार्जारिणां रुतं तथा ।  
 कलहं गृहलोकस्य दृष्ट्वा चक्रमणं न च ॥

इति दर्शनारिष्टम् ।

कनककङ्कणमेव विभूषणं मफनपुष्पमथामववारुणी ।  
 फलमशाककर ज्वरिणां मत शुभकरो हि भवेत् भिषक् ततः ॥

इति शकुनाध्यायः ।

एवं ज्ञात्वा परमनिपुण पानसन्नादिकानां  
 वीर्यं चैषां गुणमपि तथा कोपनं कोपवेगम् ।  
 आदानं वा पुनरपि चय कोपनस्योपचारम् ॥  
 वेद्या विद्वान् भवति भवने पूजितो राजलोकैः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ।

इति श्रीमहर्षिर्विद्यभाषिते हारीतसंहिते द्वितीयस्थाने समाप्तम् ।

## अथ तृतीयस्थानम् ।

चिकित्सास्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रोगसङ्करकारणम् ।

अमाद् व्यायामरोधाद् वा चिन्ताशोकभयादपि ॥

क्रीधादौषधगन्धेन क्षयादुधातोर्विशेषतः ।  
 उदीर्य कोष्ठादग्निञ्च रक्तपित्तं तथा वह्निः ॥  
 त्वगाश्रितञ्च संभूय ज्वरं सद्यः करोति हि ।  
 उक्तहेतुर्ज्वरो वापि ज्वरान्मन्दानलो भवेत् ॥  
 मन्दानलान्मन्दशक्तिस्तस्मादस्मात्तिसेवनात् ।  
 जायते कामला तस्मात् प्ररुढे स्याद्वलीमकम् ॥  
 हलीमकाद्भवेत् पाण्डुस्तस्माद् यक्ष्मा प्रजायते ।  
 यक्ष्मणो जायते शोफः शोफाददरमेव च ॥  
 तस्माद् गुल्माच्च वाताह्यं गुल्मात् श्वासोऽथ शूलिता ।  
 मन्दाग्नित्वं भवेत्तस्मात् स्वरभेदोऽथ वा क्षयः ॥  
 एतेषां सर्वरोगाणां मृत्युर्नास्ति स्यात् ज्वरेण तु ।  
 ज्वरेण मृत्युर्विज्ञेयो न मृत्युः स्याज्ज्वरं विना ॥  
 शृणु भेषजरोगज्ञ ! द्वितीयं रोगमङ्कुरम् ।  
 मन्दज्वरो भवेन्नृणामतीमारस्ततो ज्वरः ॥  
 तेन चापि भवेद्विक्का शोषो मोहो भ्रमोऽरुचिः ।  
 एतेषां शोफतो मृत्युस्तृतीयः कथ्यतेऽधुना ॥  
 दिवास्वप्नादिदोषैर्वा प्रतिश्यायश्च जायते ।  
 तस्मात् कामः समुद्दिष्टः कासात् पीनम एव च ॥  
 तस्मात् क्षयः क्षयात् शोफो ज्वरेणापि मृतिं व्रजेत् ।  
 ज्वरः क्षयश्च यक्ष्मा च कुष्ठगुल्मार्शं सङ्ग्रहाः ॥  
 गर्करा मेह उन्मादस्त्वपस्मारो भगन्दरः ।  
 एते मुहाघोरतरा याप्यं कुर्वन्ति मानवम् ॥  
 वातपित्तादयो दोषास्तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ।  
 जायन्ते व्याधयः सर्वे तेषां वक्ष्याम्युपक्रमम् ॥  
 वातः पचति सप्ताहात् त्रिरात्रात् पित्तमेव च ।  
 श्लेष्मा सार्द्धदिनेनापि विपचेद्भिषजां वर ! ॥



दन्धजं वातपित्तञ्च नवरात्रेण पच्यते ।  
 श्लेष्मवातौ दशाहेन पञ्चाहात् पित्तश्लैष्मिकम् ॥  
 दन्धजानाञ्च तुर्याहात् पाचनं शमनं भवेत् ।  
 त्रिदोषस्य च घोरस्य पाचनं द्वादशे दिने ॥  
 सन्निपातञ्च पचति चतुर्दशदिनैरपि ।  
 ज्ञात्वा दोषवलं पक्वं तस्माद्देयन्तु पाचनम् ॥  
 युक्तं निदानलक्षैस्तु तस्मात् संशमनक्रिया ।  
 सप्ताहेनापि पचन्ते सप्तधातुगता मलाः ॥  
 चिरादपीह पचन्ते सन्निपातज्वरे मलाः ।  
 विरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥  
 न भवेत् सप्तमे चाङ्गि विरामज्वरकारणम् ।  
 विचार्य भेषजं दद्यादजीर्णं सतिमान् भिषकः ॥  
 मन्दो हि सुतरामग्निर्भेषजं न विपाचयेत् ।  
 सर्वेषु दोषशाम्येषु पाचनं लङ्घनं स्मृतम् ॥  
 लङ्घितं मध्यलङ्घितमर्तिलङ्घितमेव च ।  
 लक्षणं वक्ष्यते चैषां मनुष्याणां शृणुष्व मे ॥  
 गतक्लमोऽरुचिर्ग्लानिरिन्द्रियाणां प्रसन्नता ।  
 लङ्घने दोषपाकन्तु शुद्धलङ्घितलक्षणम् ॥  
 किञ्चित् क्लमोऽरुचिर्ग्लानिरिन्द्रियाणां विवर्णता ।  
 बहुदृष्ट्याल्पक्षुत्वापि अमश्वैव भिषग्वरः ॥  
 किञ्चित् संस्निग्धता गात्रे रुचिर्वाधातिबन्धता ।  
 मध्यपाको च दोषः स्थान्मध्यलङ्घितलक्षणम् ॥  
 वैकल्यं जायते तन्द्रा विड्भेदश्च विनिद्रता ।  
 वेपथुश्च शिरोऽर्त्तिश्च क्षुत्क्षामं शूलमेव च ॥  
 श्यावास्यं स्रवतो नेत्रे मूर्च्छामोहश्चातुरम् ।  
 अतिलङ्घितमेतैस्तु लक्षणं संविभावयेत् ॥



धैलाज्वरे भूतज्वरे तथा पित्तज्वरेऽपि च ।  
 आयासे क्रोधजे वापि भयकामज्वरेऽपि च ॥  
 एतेषां लङ्घनं नैव कारयेद् भिषगुत्तमः ।  
 बालं वृद्धं कृशं क्षीणमतिसारव्रणातुरम् ॥  
 गुर्विणीं सुकुमारञ्च लङ्घयेन्न कदाचन ।

इति लङ्घनीयाः ।

सामे मन्दज्वरे तीव्रेऽरुचिविड्वन्धकेऽपि च ॥  
 अजौर्णे तु प्रशस्तञ्च लङ्घनं मात्रयान्वितम् ।  
 स्निग्धत्वं चातिगात्राणामुदरं गर्जते नृशम् ॥  
 शिरोऽर्त्तिर्जठराध्मानः प्रततं कण्ठकूजनम् ।  
 अरुचिः पीतता मूत्रे निद्रातन्त्रातुरं नरम् ॥  
 आमज्वरञ्च विज्ञाय लङ्घयेद्विषगुत्तमः ।

इति लङ्घनयोग्याः ।

अनशनवमनविरेचन-रुधिरस्रुति-तप्ततीयपाचनैश्च ॥  
 स्वेदनकर्मसमेतैः षड्विधं लङ्घनं गदितम् ।  
 क्षुत्क्षामं अमशैथिल्य अमवेगज्वरातुरम् ॥  
 अन्तर्दाहं रक्तमूत्रं विरामज्वरलक्षणम् ।  
 वातिको लङ्घनैः षड्भिः पित्तिकस्तु दिनत्रयम् ॥  
 मस्रभिः पच्यते श्लेष्मा दृष्ट्वा लङ्घनमाचरेत् ।  
 त्रिदोषो दशरात्राणि पच्यते लङ्घनैस्तु सः ॥  
 दिने पञ्चदशे प्राप्ते पच्यते सान्निपातिकः ।  
 मुञ्चेद्वा चातुरं हन्ति भवेद्वा विषमज्वरः ॥  
 बाल्ये रक्तमया दोषाः रक्तपित्तादनन्तरम् ।  
 षोडशे तु मसे प्राप्ते त्रिदोषप्रभवा गदाः ॥  
 पञ्चविंशतिसप्तासे ज्वरो वै सान्निपातिकः ।

तृषितं सलिलञ्चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ॥  
 दीपनं स्यात्तु कफजे वातपित्तानुलोमनम् ।  
 उदीर्य्य चाग्निं स्रोतांसि मृदुकस्य विशोधयेत् ॥  
 वातपित्तकफस्त्रेद-शक्नुन्मूत्राणि सारयेत् ।  
 मुस्तपर्पटकोटीच-नागरोशीरचन्दनैः ॥  
 शृतशीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ।  
 यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ॥  
 कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि ।  
 अर्द्धशिष्टन्तु तद्वं य पाने पेयादि मस्विधौ ॥  
 एतां क्रियां प्रयुञ्जीत पट्टात्रं सप्तमेऽहनि ।  
 पिबेत् कषायसंयोगान् ज्वरघ्नान् साधुसाधितान् ॥  
 वातपित्तकफेरेव रसरक्तममुञ्चयात् ।  
 जायते यो ज्वरः सम्यक् पक्वे काथन्तु दापयेत् ॥  
 काथः सप्तविधः प्रोक्तः पाचनः शमनस्तथा ।  
 दीपनः क्लेदनो भेदो सन्तर्पणविशोषणः ॥  
 पाचनञ्च नरं देयं निशासु प्रविजानता ।  
 पूर्वाह्णे शमनो देयोऽपराह्णे दीपनः स्मृतः ॥  
 सन्तर्पणो भेदनश्च कल्ये पानाय दापयेत् ।  
 मोहनोऽपि प्रभाते च काथः पानं प्रकीर्तितः ॥  
 रात्रौ यः प्रथमो यामो भूतवेला प्रकीर्तिता ।  
 द्वितीयं निशिरित्याहुर्निशौथञ्च ततः परम् ॥  
 गुणरात्रं ततो ज्ञेयं कल्यमप्रातराग्निनम् ।  
 पूर्वापराह्णमध्याह्नाः परार्द्धदिनशेषकाः ॥  
 पूर्वं दिनावसाने च भेषजानामुपक्रमः ।  
 पाचनो दीपनीयश्च शोषणः शमनस्तथा ॥  
 तर्पणः क्लेदनः शोषो काथः सप्तविधः स्मृतः ।

पाचनोऽर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः ॥  
 क्लेदनश्चतुरंशश्च शमनोऽष्टावशेषितः ।  
 दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः ॥  
 विशोषी षोडशांशश्च काथभेदाः प्रकीर्त्तिताः ।  
 पाचनः पचते दोषान् दीपनो दीप्यतेऽनलम् ॥  
 शोधनो मलशोधी स्यात् शमनः शमते गदान् ।  
 तर्पणस्तर्पते धातून् क्लेदी हृत्क्लेदकारकः ॥  
 विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात् काथं परीक्षयेत् ।  
 क्लेदी विशोषी विज्ञाय वमनं कारयेन्नरम् ॥  
 न लङ्घयेत् काथकृतं नान्तराणि च चालयेत् ।  
 न शोषयेत् पुनः स्थाप्यो नाशुचौ न च कामते ॥  
 स च काथो न शस्तः स्याद्रोगसङ्करकारणम् ।  
 न शोषयेत् पुनः काथं न च भूमिगतं पुनः ॥  
 दोषसंशमने नैते प्रशस्ता गटकर्मणि ।  
 विदीर्यते पततेऽपि स्फुटते काथतो जलम् ॥  
 एतेऽनिष्टकराः काथा न दोषशमनाय च ।  
 एतेर्विलक्षणैर्हीनं काथं दृष्ट्वा परीक्षयेत् ॥  
 कृष्णं नीलं घनं रक्तं पिच्छिलं शिथिलञ्च यत् ।  
 दग्धं कुणपगन्धञ्च विस्रगन्धं विवर्जयेत् ॥  
 एतैरसाध्यं जानीयात् रोगिणं नात्र संशयः ।  
 द्रव्यगुणानुवर्णेन द्रव्यगन्धं विनिर्दिशेत् ॥  
 तद्वद्विशुद्धं संच्छायं कषायममृतोपमम् ।  
 वातज्वरे लङ्घनान्ते दत्त्वा चान्नं तथोपरि ॥  
 निशासु पाचनं देयं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ।  
 त्रिरात्रात् पैत्तिके देयं श्लेष्मके प्रथमेऽहनि ॥  
 अविज्ञाते च दोषे च पाचनं न प्रदापयेत् ।

सप्तरात्रादि मर्यादा ज्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥  
 तस्मान्नवज्वरे पीतं दोषकृन्न च दोषहृत् ।  
 तस्मादादौ प्रदेयन्तु पाचनञ्च दिनत्रयम् ॥  
 शमनीयं प्रदेयन्तु पञ्चरात्रं ततःपरम् ।  
 शोधनं दीपनीयन्तु एकरात्रं प्रदापयेत् ॥  
 काथपाने क्लमो मूर्च्छा वैकल्यञ्च प्रदृश्यते ।  
 वमनञ्च यदा प्रोक्तं शमनं पथ्यर्कऽपि वा ॥  
 सदा पथ्यं प्रयोक्तव्यं नापथ्येन न सिद्धयति ।  
 अपथ्येन विना पथ्यैः सिद्धयते भिषगुत्तमैः ॥  
 विना पथ्यं न माध्यः स्यादौषधानां शतैरपि ।  
 ज्वरितोऽहितमश्रीयद् यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥  
 अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते स्त्रियतेऽपि वा ।  
 स क्षीणः कृच्छ्रतां याति यात्यसाध्यत्वमेव च ॥  
 तस्माद्रक्षेद्बलं पुंसां बलमेव हि जौवितम् ।  
 लङ्घिते चैव दोषे च यवागूपानमाचरेत् ॥  
 शालिपर्षिकमुद्गञ्च यूपं शस्तं वदन्ति हि ।  
 पञ्चकोलकससिद्धा यवागूर्मध्यलङ्घिते ॥  
 पांशुधानं यथा वृष्टिः क्लेदयत्यतिकर्दमम् ।  
 तथा श्लेष्मणि संवृद्धे यवागूः श्लेष्मवर्द्धनी ॥  
 भवेत् प्रशस्तं सततं तस्य सन्तपेणं हितम् ।  
 आजं दुग्धं गुडोपेतं पानाय ज्वरशान्तये ॥  
 तेन क्लमविनाशः स्यात् सुखमाशु प्रपद्यते ।  
 उदीच्याभिमुखं पूर्वाभिमुखं वोपवेशयेत् ॥  
 पाययेत् काथपानञ्च कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।  
 पानपात्रमधः कृत्वा शयीतोत्तानमेव च ॥  
 पीत्वा चैव तृपार्त्तोऽपि न जलं पाययेत् क्षणम् ।

गतकृमं नरं दृष्ट्वा तदा सम्पद्यते सुखम् ॥

इति श्रीमद्विषयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भेषज  
परिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

आविद्य उवाच ।

अनभिज्ञश्चिकित्सायां शास्त्राणां पठनेन किम् ।  
यथा पुलाको वीजैस्तु रहितो निष्प्रयोजकः ॥  
वरमाशौविषविषं कथितं ताम्रमेव च ।  
पीतमत्यग्निसन्तप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडाः ॥  
न तु श्रुतवतां वेशं विभ्रति शरणागताः ।  
गृहीतुमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥  
तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय जायते ।  
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यो विमोक्षयेत् ॥  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रोगवारणहेतुना ।  
युक्ता निदानलक्षैस्तु संहिता पारम्युता ॥  
पठितव्या समामेन संहिता ज्ञानहेतवे ।  
ज्ञात्वा रोगप्रतीकारं ततः कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥  
अविज्ञाय रुजं मस्यक् मोहादारभते क्रियाः ।  
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न सा मिद्धैः प्रजायते ॥  
निदानं रोगविज्ञानं भेषजानां गुणागुणम् ।  
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य मिद्धिर्न दूरतः ॥  
आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ।  
याप्य सर्वरुजाञ्चैव ततः कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥  
देशं कालं वयो वक्त्रं सात्त्वं प्रकृतिभेषजम् ।

एवं विज्ञाय सदैवस्ततः कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥  
 नास्ति रोगो विना दोषैर्दोषा वातादयः स्मृताः ।  
 ज्वरादयः स्मृताः रोगास्तान् सम्यक् परिलक्षयेत् ॥  
 आप्तानां चोपदेशेन प्रत्यक्षीकरणेन च ।  
 आतुरादिदृशा स्पर्शतः शीतादिप्रश्नतः परम् ॥  
 कच्छयाप्यः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते ।  
 असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यः कच्छतमोऽपरः ॥  
 याप्याः केचित् प्रकृत्यैव केचित् याप्या उपेक्षया ।  
 स्वभावाद्ग्राधयः साध्याः केचित् साध्या उपेक्षिताः ॥  
 साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा ।  
 घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥  
 व्याधिरुपरि यो व्याधिः सोपद्रव उदाहृतः ।  
 सोपद्रवा न जीवन्ति जीवन्ति निरुपद्रवाः ॥

ज्ञात्वात्यकोऽपि भिषजा परिचिन्तनीयो  
 नोपेक्षणीय इति रोगगणो ह्यसाध्यः ।  
 स्वल्पोऽपि शत्रुर्विषवाङ्मिसमानरूप-  
 श्चोपेक्षितो न शमतामुपयाति काले ॥  
 शत्रुः स्थानञ्चलं प्राप्य विक्रमं कुरुते वली ।  
 उपेक्षणं तथा प्राप्य विक्रमं कुरुते गदः ।  
 बहुविधपरिकर्मेणापि नीतं शमं यत्  
 क्लेशमपि हि न धार्यं रोगमूलं विधिज्ञैः ।  
 कथमपि बहुपथ्यैर्व्यावृत्तो वा वलिष्ठो  
 न शमयति हि रोगं बाल्यमात्रेण सम्यक् ॥  
 यथा स्वल्पं विषं तौत्रं यथा स्वल्पो भुजङ्गमः ।  
 यथा स्वल्पतरश्चाग्निस्तथा सूक्ष्मोऽपि रुग्ऋषुः ॥  
 यावत् स्थानं समाश्रित्य विकारं कुरुते गदः ।

तावत्तस्य प्रतीकारः स्थानत्यागाद्वलीयसः ॥  
 कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजा सन्ति चापरं ।  
 सहजाः कथिताश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधा मताः ॥  
 बहुभिरुपचारैस्तु ये न यान्ति शमं ततः ।  
 ते कर्मजाः समुद्दिष्टा व्याधयो दारुणाः पुनः ।  
 दोषजा वातपित्ताद्याः सहजाः क्षुत्तृषादयः ॥  
 स्नाद्वक्ष्यामि चादौ ज्वरमतुलगदं वाजिनां कुञ्जराणाम् ।  
 च्यानां वा पशूनां मृगमहिषखरोद्गादिवानस्पतौनाम् ॥  
 क्षीनामापधौना क्षितिधरफणिनां पत्रिणां मूषिकाणाम् ।  
 प्र प्राणपहारो ज्वर इति गदितो दुर्निवारो हि लोकं ॥  
 अमाध्याऽयं ज्वरो व्याधिर्गोमहिषश्चकुञ्जरं ।  
 किञ्चित् कृच्छ्रतमा नृणामन्यथा जीवघातकः ॥  
 या मृगाणां मृगयुर्वलिष्ठस्तथा गशाना प्रवलो ज्वरोऽयम् ।  
 न्यऽपि शक्ता मनुज विहाय सोढुं भुवि प्राणभृतः सुराद्याः ॥

अथ ज्वरकारणमाह ।

कर्मणा लभते यस्माद्देवत्वं मानुषो दिवि ।  
 ततश्चैव च्युतः स्वर्गान्मानुष्यमभिवर्त्तते ॥  
 तस्मात् स देवभावात्तु सहते मानुषा ज्वरम् ।  
 शेषाः सर्वे विपद्यन्ते पशुवर्गा ज्वरादिताः ॥  
 रागाणां रागराजोऽयं यथा मृगपतिर्मृगे ।  
 दाहात्मसु यथा वह्निस्तथा रागे ज्वरोऽधिकः ॥  
 रुद्रकोपाग्निमभ्रुतः सर्वभूतप्रतापनः ।  
 पातकः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् ॥  
 गवामोश्वरसंज्ञस्तु मानवानां ज्वरो मतः ।  
 हारिद्रो महिषाणान्तु मृगरोगो मृगेषु च ॥  
 अजावीनां प्रलापाख्यः करभेष्वलसो भवेत् ।

शुनोऽलर्कः समाख्यातो मत्स्येष्विन्द्रमदो मतः ॥  
 पक्षिणामभिघातस्तु व्यालेष्वैक्षितसंज्ञितः ।  
 जलस्य नीलिका प्रायो भूमेरुषरनामतः ॥  
 वृक्षस्य कोटराक्षस्तु ज्वरः सर्वत्र दृश्यते ।  
 त्रिपाङ्गुलप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥  
 वैयाघ्रचर्मवमनः कपिलोज्ज्वलविग्रहः ।  
 पिङ्गेक्षणो ऋषजङ्घो वीभत्सो बलवानयम् ॥  
 पुरुषो लोकनाशाय चामौ ज्वर इति स्मृतः ।  
 दग्धेन्धने यथा वह्निर्धातून् हत्वा यथा विषम् ॥  
 कृतकृत्यो व्रजेत् शान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः ।  
 तस्मात्तस्य समुत्पत्तिं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ॥  
 चतुर्विधा महाघोरो जातो येन तु चाष्टधा ।  
 दक्षाध्वरप्रशमनः कुपितो हि महेश्वरः ॥  
 श्वामं मुमोच दयिताविधुरोऽतितीव्रं  
 तेन ज्वरोऽष्टविधमभवतोऽष्टधा स्यात् ।  
 वातादिपित्तकफशोणितसन्निधानात्  
 स्वेच्छान्नपाननिरतादृतुवैपरित्यात् ॥  
 दोषा मलाशयगता जठराग्निवाह्याः  
 संप्ररयन्ति रुधिराश्रितवह्निपातम् ।  
 तेषां ततो हि दधते ज्वरनाम सिद्धं  
 व्यायामरोषजननाच्छतसम्भवत्वात् ॥  
 विरुद्धान्नविशेषेण पाननिर्भरवारिणा ।  
 कूपोदकेन सन्तुष्टस्तिग्मतीव्रांशुरश्मिभिः ॥  
 गन्धवातेन दोषाणाम् अभिघाताभिशापतः ।  
 ज्वरो नाम महाघोरो जायते मनुजे भृशम् ॥  
 पूर्वरूपं ज्वराणाम्तु सामान्यात्तु विशेषतः ।



जृम्भाङ्गमर्दभूयिष्ठं हृदयोद्देगि वातजम् ॥  
 श्वासो जडत्वं नयनप्लवः स्याद्रोमोद्गमो घूर्धुरकच्च जृम्भा ।  
 वैवर्णता चापि सशोषतास्ये ज्वरस्य च व्यक्तकलक्षणानि ॥  
 समीरणे च वै जृम्भा कफादैन्यं निषीदति ।  
 पित्तान्नयनमन्तापुः सर्वं वै मास्त्रिपातिके ॥  
 तस्माद्वक्ष्ये प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ।  
 ।चा यवानौ धनिका-सविश्वा कषायं पिबेत् निशि मोक्षमेव ।  
 म्वातिके वातगर्दे ज्वराणां सम्पाचके स्यान्मनुजे सुखाय ॥  
 नेशा मनिश्वा मृतवल्लिका च धान्यञ्च विश्वा मगुडः कषायः ।  
 नेशासु च क्षीरं सकीलमिश्रं पानं सपित्तज्वरपाचनाय ॥  
 ।चा यवानौ त्रिफला सविश्वा क्वाथो निशायां कफजे ज्वरे वा ।  
 म्पाचनं स्यान्मनुजस्य दांषे शूले प्रतिश्यायकपीनमेषु ॥  
 ।ठोवचानागरकाफलानां वत्सादनौधन्वयवासकानाम् ।  
 ताथो हितः सर्वभवे ज्वरे च सम्पाचनं स्यान्मनुजश्चिदोषे ॥  
 गात्रौ सुखोष्णतोयेन प्रचरेण च धीमताम् ।  
 अङ्गममर्दनं पथ्यं निद्राव्यायामवर्जितम् ॥

अथ ज्वरचिकित्सा ।

।पथुर्विषमवेगशोषणं कण्ठतालुवदने विरस्यता ।  
 स्तता चान्तिषु तोदनं क्षयो जृम्भणं शिरसि रुग्विनिद्रिता ॥  
 णता कररुहां प्रलापको गात्रभङ्ग दलितो वीभत्स्यति ।  
 तैतवत् स्वपिति जाग्रतो नरो लक्षणैर्भवति वातकृत् ज्वरः ॥  
 ।गरं सुरतरुश्च धान्यकं कुण्डली वृहतिकायुगं निशिः ।  
 ।समे निशि प्रशस्यते ज्वरे चास्थिसांसगतकोहि चोष्णवान् ॥  
 सर्वज्वरे विहितमेव महौषधाद्यं  
 वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहोमम् ।

हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव  
 तदालवृद्धयुवतौमृदुभिश्च पित्त  
 ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयञ्च ॥  
 इन्द्रियाणां क्षुब्धत्वञ्च नेत्रास्यस्य प्रसादता ।  
 मोक्षारमुष्णता कोष्ठे जीर्णे भेषजलक्षणम् ॥  
 क्लमहृत्क्लामसदनं शिरोरुक् भ्रंशमेव च ।  
 उत्क्लेदो जायते यस्य विद्यादुत्क्राममौषधम् ॥  
 दाहाङ्गमदनं मूर्च्छा शिरोरुक् क्लमदौनता ।  
 भ्रंसा रतिविशंपेण सदिशेषौषधाकृतिः ॥  
 नस्मादौषधशेषे च न दोषशमनं क्वचित् ।  
 कृप्यन्यनैकधा दोषा न देयं पाचनैर्विना ॥

गौध विषाकमुपयाति बलं निहन्त्या  
 दन्तावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।  
 प्राग्नुक्तसंवितमहौषधमेतदेव  
 दद्याच्च वृद्धशिशुभौरुवराङ्गनाभ्यः ॥  
 विल्वाग्निमन्यशुकनाशकपाटलीना  
 कुम्भारिका प्रतियुतं कथितं कषायम् ।  
 दन्तान् विशोधयति निवारयते समोर  
 नाशं करोति मरुतज्वरमाशु पुंसाम् ॥  
 रास्ना वृक्षादनी दारु सरलं सैलवालुकम् ।  
 कोष्णं सगुडमर्पिष्कं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥  
 किरातमुस्तमृतवल्लिकणा सवित्रो  
 गोकण्टको बृहतियुग्ममुदीच्यतिक्ताः ।  
 स्यात् शालिपूर्णकलसीकथितः समन्तात्  
 काथः समोरणभवं ज्वरमाशु हन्ति ॥  
 गुडची शतपुष्पा च म्लची रास्ना पुनर्नवा ॥

त्रायमाणाकषायश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥

इति वातज्वरचिकित्सा ।

मूर्च्छा दाहो भ्रममदतृषा वेगतौक्ष्णोऽतिसार-  
स्तन्द्रालस्यं प्रलपम वमिः पाकतात्वोष्ठवक्त्रे ।

स्वेदःश्वासो भवति कटुकं विह्वलत्वं क्षुधा वा  
एतैर्लिङ्गेर्भवति मनुजे पित्तिको वै ज्वरस्तु ।

रोध्रोत्पलामृतलताकमलं मित्ताढ्यं  
तत् सारिवासहितमेव हि पाचनेषु ।

निःकाथ्य पानमति चाशु निहन्ति पित्तं  
पित्तज्वरप्रशमनं प्रकरोति पुंसाम् ॥

क्वथितं तण्डुलपयसा शक्राह्वकटुरोहिणीमहितम् ।

क्वाथं यष्टौमधुना विनाशनं पित्तज्वराणान्तु ॥

दृगलभावासकपर्पटानां प्रियङ्गुनिम्बकटुरोहिणीनाम् ।

किराततित्तं क्वथितं कषायं सशर्कराढ्यं कथितञ्च पाचनम् ॥

मदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोषविकारयुक्तम् ।

एकोऽपि वै पर्पटको वरिष्ठः पित्तज्वराणां शमनाय योग्यः ।

तस्मात् पुनर्नागरवालकाढ्यः सिंही यथा कङ्कटके प्रवृत्तः ॥

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी ।

धान्यकानां तु क्वाथश्च पित्तज्वरविनाशकः ॥

अमृता पर्पटो धात्री क्वाथो पित्तज्वरं हरत् ।

मितारग्वधयोर्वापि काश्मर्या चाथवा पुनः ॥

द्राक्षापर्पटकं तिक्ता पथ्यारग्वधमुस्तकैः ।

क्वाथस्तृषाभ्रमदाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥

विदारिकारोध्रदधित्यकानां स्यान्मातुलुङ्गस्य च दाडिमानाम् ।

यथानुलाभेन च मूलपत्रं निहन्ति तट् दाहसमूर्च्छनञ्च ॥

उत्तानस्य प्रसुप्तस्य कांस्यं वा ताम्रभाजनम् ।

नाभौ निधाय धारास्व शीतदाहं निवारयेत् ॥  
 रस्यारांमाकुचभरनमितालिङ्गनं चेष्टमङ्ग'  
 अव्ययामं मुनिवरगदितं शीतलं सेवनं स्यात् ।  
 शुभ्राभोजं मलयजजलासिक्तमंशोतवासो  
 मुक्ताहारो विशदतुहिनं कौमुदीया सुखाय ॥  
 एभिर्हन्ति द्रुततरनिभं मानुषाणां तु पित्तम् ।  
 दाहं शोषं क्लममपि तथा तृड्भ्रमं मूर्च्छनञ्च ॥  
 एतैर्योगैर्भवति नितरां पित्तदाहस्य शान्ति  
 र्योग्या चैव प्रभवति सततं सत्क्रिया श्रीमताञ्च ।  
 यदि जिह्वागलतालुशोषो वै मनुजस्य च ॥  
 केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ।  
 पेय्यमाणं तालुलेपे सद्यः पित्तज्वरापहम् ॥

इति पित्तज्वरचिकित्सा ।

स्तैमित्वं मधुरास्यता च जड़ता निद्रा च तन्द्रा भृशं  
 गात्राणां गुरुता रुचिर्विरमता रोमोद्गमः शीतता ।  
 प्रस्वेदः श्रुतिबाधनञ्च कुरुते नत्रे च पाण्डुच्छवी  
 विष्टब्धा मलवृत्तिका च वमनं श्लेष्मज्वरे ते विदुः ॥  
 पिप्पल्यादिषु कल्कन्तु कफजे पाचनं हितम् ।  
 तद्वद्व्याघ्री च मिह्री च रोध्र कुष्ठपटोलकम् ।  
 ज्वरे कफात्मजे चेतत् पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥  
 वामागुडूची त्रिफला पटोलौ शठी च तिक्ता मधुना कषायम्  
 श्लेष्मप्रभूतेषु रुजेषु सम्यक् ज्वरं निह्न्यात् कफजञ्च शौघ्रम् ॥  
 आमलक्यभयाकृष्णा षड्ग्रन्था चित्रकं तथा ।  
 मलभेदिकफातङ्गज्वरनाशनदीपनः ॥  
 पिप्पली शृङ्गवेरञ्च षड्ग्रन्था वत्सकं फलम् ।  
 काथो मधुप्रगाढः स्यात् श्लेष्मज्वरविनाशनः ॥

क्षौद्रेण पिप्पलीचूर्णं लिह्यात् श्लेष्मज्वरापहम् ।

प्लीहानाहविबन्धार्त्तिकासखासविमर्दनम् ॥

इति श्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

तृष्णा मूर्च्छा वमिरथ कटुकं चानने रुक्षता स्यात्

अन्तर्दाहो वपुषि नयने पीतता कण्ठशोषः ।

निद्रानाशः श्वसनशिरसोरुक् प्रभेटोऽङ्गभङ्गो

रामोद्वेगं तमकमिति चेद्वातपित्तज्वरः स्यात् ॥

भेसृष्टोपैर्विहितञ्च मस्यक् विपाचनं पित्तमरुज्वरे च ।

फलत्रिकं शाल्मलिसंप्रयुक्तं रास्ना किरातस्य पिवत् कषायम् ॥

द्विपञ्चमूलौ सह नागरेण रास्नाकिरातस्य पिवत् कषायम् ।

द्विपञ्चमूलौ सह नागरेण गुडचिभृनिस्वपनः समेता ॥

कल्कः प्रशस्तः सगुडो मरुत्सु सपित्तवातज्वरनागहेषु ।

किराततिक्तामलकौशलोना द्राक्षापणानामकासृतानाम् ॥

क्राथः सुशौतो गुडभंयुतः स्यात् सपित्तवातज्वरनागहेषु ।

मसूरिकानाञ्चणकं जलेन द्राक्षावलकित्तरुक्षं च रास्ना ।

सत्रायमाणा कथितोऽपि यूपो मरुतसपित्तज्वरनागहेषु ।

अमृतामुस्तक वामा पर्पटं विश्वाजलेन क्राथः ।

पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्यान्न भद्रमुज्जः ॥

इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

निद्रागौरवगात्रमन्विशिरसश्चार्त्तिस्तथा पर्वणाम्

भेटो मध्यमवेगमत्र नयने वातान्विते श्लेष्मणि

मन्तापः श्वसनं रुचिः श्रुतिपथे कण्ठे च शुष्कावृत्ति

स्तन्द्रामोहमरोचकभ्रममथ श्लेष्मज्वरे पित्तले ॥

किरातं पर्पटं मुस्तं गुडूचौ विश्वभेषजम् ।

पित्तश्लेष्मज्वरे कुर्यात् पाचनं ज्वरनाशनम् ॥

नागर भद्रमुस्ता वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ।

पाठासृणालोदीच्याश्च काथः पित्तज्वरे कफे ।

पाचनो दीपनीयः स्यात् रक्तशोषनिवारणः ॥

द्राक्षासृतावामकरिष्टकानां भूनिम्बतिक्तेन्द्रयवाः पटोलम् ।

मुस्ता सभागी कथितः कपायः सपित्तश्लेष्मज्वरनाशनाय ॥

गुडूचिकानिम्बदलानि शुण्ठी मुस्तश्च कुस्तूस्वरुचन्दनानि ।

काथं विदद्यात् कफापित्तजातज्वरं निहन्याच्च गुडूचिकाद्यः ॥

एष सर्वज्वरान् हन्ति हृत्तासाद्यानरोचकान् ।

प्रतिश्याय पिपापान्न शोषदाहनिवारणः ॥

गुडूचिकानिम्बकवासकश्च शुण्ठी किरातं मगधा बृहत्थी ।

दात्री पटोलं कथितं कपायं पित्तज्वरः पित्तकफे ज्वरं च ॥

पटोली चन्दनं तिक्ता मूर्वापाठासृतागणः ।

पित्तश्लेष्मज्वरकृदि दाहकण्डनिवारणः ॥

पटोचवानापित्तुभट्टकस्य वलानि यष्टीमधुक वला च ।

कपाय एतन्प्रतिसाधितस्तु ज्वरं कफे पित्तभवे प्रशस्तः ॥

स दीपनी वातकफात्मके च तथैव पित्तासृजसम्भवे च ।

ज्वरं मलानां प्रतिभेदनः स्यात् ज्वरं च वाताश्रितके प्रशस्तः ॥

इति पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा

शोतं विषयप्रभेदज्वरमथुर्गतिं जडत्वं रुजा

मन्दोष्णार्शचित्रभन परुषता कासस्तमः शूलवान् ।

तन्द्रा क्रजनमात्मगौरवमथो स्तौमित्यजृम्भारुचि

प्रस्रवो मलसूत्ररोधसहितः स्यात् श्लेष्मवातज्वरः ॥

आरग्वधस्तिक्तकरोहिणी च हरीतकौ पैप्पलमूलमुस्ता ।

निःकाथ्य कल्का कफवातयुक्ते ज्वरे मशूले हितपाचनोऽयम् ॥

इति आरग्वध पञ्चकम् ।

मुस्तागुडूचौ सह नागरेण वासाजलं पर्पटकञ्च पथ्या ।

तुद्रा च दुस्पर्शयुतः कषायः पाने हितो वातकफज्वरस्य ॥

इति तुद्राद्यं पाचनम् ।

पर्यटनागाख्य-वचा-तन्तुककट्फलैलाभया विश्वभूतिके ।

काथो हिङ्गुमधुयुतः कफघाते महिक्करोगे सगलग्रहे च ॥

द्विपञ्चमूलकः काथः कणाचूर्णेन भावितः ।

द्वयो वातकफे शूले ज्वरे श्वासे च पीनसे ॥

इति वातकफज्वरार्चिकम् ।

तन्द्रालस्यं सुखमधुरता शीवनं कण्ठशोषो

निद्रानाशः श्वसनविकलो मूर्च्छना शोचना च ।

जिह्वाज्वालां परुषमग्रवा पृष्ठशोषं व्यथा स्यात्

अन्तर्दाहो भवति यदि वा त्रिदोषो दोषं त्रिदोषम् ॥

दृष्ट्वा त्रिदोषजं शोषं वदन् प्राणाप्रहारकम् ।

तस्मादाद्या जलपानाद्य शोदनं परिकीर्तितम् ॥

न कुर्वन्ति हि तन्मन गदोच्छेदात्मना यशः ।

कफघातेर्दलितः सद्यो हन्ति रुजातुरम् ॥

लङ्घनं वमनं वापि शीवनं स्यात् त्रिदोषजं ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ॥

लङ्घनञ्च समुद्दिष्टं ज्ञात्वा दोषवलावलम् ।

कफं विशोधितं ज्ञात्वा ततो वातनिवारणम् ॥

पित्तमशमनं कार्यं ज्ञात्वा पित्तस्य कोपनम् ।

शोधनीयौ वातकर्षौ न तु पित्तं विनाशयेत् ॥

इति त्रिदोषचिकित्सा ।

•  
श्लेष्माशूलश्च शोषं श्वसनमथ निशाजागरो वामरेस्तु

ान्द्रा मोहश्च शोषो भवति हि वदने घ्राणजिह्वाधराणाम् ।

आकं निष्ठौवर्त यः क्लृप्ततनुश्च भवेन्मण्डलानां च दंहे

भूतिः श्वावनेचाधरवदनमदस्येद आधान शोषः ॥

क्षुष्माशो वा भ्रमणमपि तथा शिरसो लोड़नं वा शिरोऽर्त्तिः  
 स्रोतोरुधो वमिर्वा गलकघुरघुरा शूलकैर्वा वृतस्तु ।  
 एतैर्लिङ्गैः प्रयुक्तः प्रभवति च नृणां सन्निपातेति संज्ञा  
 रोगाणामाशुकारौ ज्वर इति कठिनो वाजिनां वा द्विपानाम् ॥

इति सन्निपातज्वरलक्षणम् ।

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यात् वातकफापहम् ।  
 पश्चात् श्लेष्मणि सन्तीणे शमयेत् पित्तमारुता ॥  
 सन्निपातज्वरं यत्नं कृत्वा तन्द्रां जलेत् पराम् ।  
 उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणाञ्च विशंपतः ॥  
 पथ्यं कारयते यस्तु रोगिणां कफप्रवृत्तम् ।  
 स एव चास्य शत्रुः स्यात् न पथ्यं न च संपजम् ॥  
 शठो द्विपञ्चमूलकं दुरालभा नाम्नाटजम् ।  
 प्रटोलं पीप्पलं वाथ युक्ता भाग्ये प्रिथ्वी ॥  
 निहन्ति सान्निपातिकज्वराग्निमान्द्यं दशाङ्गः ।

इति दशाङ्गी नामकाथ

भूनिम्बदारुदशमूलसहोपधाञ्च  
 तिक्तेन्द्रवीजधनिकेलकणाकषायः ।  
 तन्द्राप्रलापकटपारुचिदाहमोह-  
 श्वासार्निमान्द्ययुतमाशु रुजं निहन्ति ॥  
 शृण्ठीघनागजकणासुरदारुधान्या-  
 तिक्ता कलिङ्गदशमूलसमोऽपि कल्कः ।  
 श्रेष्ठस्त्रिदोषजनितज्वरनाशनाय  
 श्वासभ्रमारुचि-विवन्ध हृदामयघ्नः ॥  
 सुस्तोशौरनिशाविशालमधुकं पाठावला रोहिणी  
 नीलोधन्वयवानकट् फलशुण्ठी समङ्गा त्रिवृतः ।



यष्टौ पैप्पलमूलपर्पटफलं पिप्पल्यकं दारु च  
श्यामा हेमगुडूचिका समपयः काथो ज्वरान्तः स्मृतः ॥  
द्वौ बृहत्थौ शठौ शृङ्गौ किरातं कटुरोहिणी ।  
पटोलं पौष्करं भार्गी वत्सकं च दरालभा ॥

एतत् बृहत्यादिकपाचनं स्यात् कामादिकोपद्रवनाशनञ्च ।  
शौघ्रं निहन्ति ज्वरसन्निपातं शूलार्त्तितन्द्राशमने प्रशस्तम् ॥

इति बृहत्यादि पाचनम् ।

शठौ किरातं कटुका विशाला शृङ्गौ गुडूचौ बृहतीद्वयञ्च ।  
महौषधं पौष्करधन्वयामरास्त्रा सुराह्वा गजपिप्पली च ॥  
पीतन्तु निःकाथ्य हितं नराणां शय्यादि चातुर्दशकं प्रशस्तम् ।  
जघान तन्द्राश्वसनं शिरोऽर्त्तिं जाड्य मशूलं ज्वरमाशु हन्ति ॥

इति शय्यादिपाचनम् ।

भूनिम्बं सुरदारुनागरघनातिक्ताकलिङ्गानि च  
तद्वड्ढस्तिकणा द्विपञ्चकगणैर्युक्तः कषायो हितः ।  
पीतः सर्वरुजां विनाशनकरः स्यात् सन्निपातज्वरं  
हन्ति श्वासविशोषवक्ष्मि रुजं तन्द्रां जघान द्रुतम् ॥

रास्त्रा गुडूचौ घनपर्पटकं पटोली  
भूनिम्बवत्सकशठौयुतनागराणाम् ।  
तिक्ता सुराह्वगजमागधिकायवामा  
वामावलागजकणाक्थितः समांशः ॥  
काथो निहन्ति मरुतः प्रभवामयानां  
मश्वामकासजठरार्त्तिविसूचिकानाम् ।  
अंशो नरस्य भुवि पाचनकस्त्रिदोषे  
रोगेऽथवा कफसमीरणके प्रदेयः ॥

इति बृहद्रास्त्रादिः ।

रास्नात्रिकण्टकशताह्वमहौषधिश्च  
 भार्गी सपुष्करवनासुरदारुधान्याः ।  
 काथो हितः सकलमारुतजित् ज्वरेषु  
 स्यात् सन्निपातजनितेष्वतिदारुणेषु ॥

इति लघुरास्नादि

त्रिवृद्धिशाला च तथा सुराह्वमारग्वधं तिक्तकरोहिणी च ।  
 काथो भवेद्भेदनको मलानां स्याद्वातशूलेन यतोभयघ्नः ॥

इति त्रिवृतादिसलभेदनः

इदानीं सन्निपातप्रस्र्वादीहूलनं कथ्यते ।

वचा यवानो च महौषधञ्च शुष्कञ्च चूर्णं तनुलेपनाय ।  
 शस्त वदन्ति ज्वरघर्मशान्त्यै करोति नूनं परिमर्दनञ्च  
 मागध्यनागरसुरद्रुम एलदावीं  
 तिक्ता च दीप्यकयुता तनुलेपनाय ।  
 चूर्णं प्रशस्तमपि वारयते शरीरे  
 खट्वञ्च शीतलतनुर्भवतीह नूनम् ॥

इति सान्निपातिकस्त्रिदाहूलनम्

मधुकमारं सराह्वौषधेन वचोपणा सैन्धवमयुता च ।  
 मूत्रेण वा चाणजलेन पिष्टं प्रनष्टज्ञानप्रतिबोधनाय ॥  
 शोभाञ्जनकमूलस्य रसं समरिचान्वितम् ।  
 विमंजितानां नस्यं स्याद्बोधनं चाशु रोगिणाम् ॥

इति नस्यविधानम्

एकं बृहत्याः फलपिप्पलीकं शुण्ठीफलं चूर्णमिदं प्रशस्तम् ।  
 प्रध्नामयेद्घ्राणपुटे तु संज्ञां चेष्टां करोति क्षवथुः प्रबोधः ॥

इति प्रधमनविधिः

शिरौषवीजं मरिचापकुल्या मूत्रेण छृष्टं सह सैन्धवेन ।  
 नेत्राञ्जनं स्यान्नयनं नराणां प्रनष्टसंज्ञस्य करोति बोधम् ॥

त्रिकटुकरञ्जवीजं त्रिफला सुरटारुसैन्धवम् ।

तुलसीवर्त्तिनयनाञ्जनकं तन्द्रानाशं करोति नयनानाम् ।

इति नेत्राञ्जनविधिः ।

केशरं मातुलुङ्गस्य शृङ्गवेरं ससैन्धवम् ।

संयोज्य त्रिकटुं तत्र आकण्ठाङ्गारयेन्मुखे ॥

दन्तजिह्वा मुखं तालुघर्षणं कारयेद्बुधः ।

कुर्यान्निष्ठोवनं सर्वं वारं वारं विधानतः ॥

तेन कण्ठविशुद्धिः स्यात् श्लेष्माणं चापकर्षति ।

जिह्वापटुत्व रुचिकृत् कामः श्वासश्च शाम्यति ॥

त्रिकटुश्च व्यका पथ्याचूर्णं सैन्धवसंयुतम् ।

तेन दन्तांस्तथा जिह्वां घर्षयेत्तालुकामलम् ॥

निष्ठोवनं तालुशुद्धि रुचिकृत् कफसूदनम् ।

हृन्नामनाशमाप्नोति पटुत्वं कुरुते भृशम् ॥

इति निष्ठोवनविधिः ।

यदि वा शीतगात्रे च तदा स्वेदो विधीयते ।

स्वेदास्तयोदशाः ज्ञेयाः स्वेदवारणकारणाः ॥

गङ्गरः प्रस्तुतो नाड्यौ परिषेकोऽवगाहनः ।

आतङ्कोऽस्मयनः कर्षः कुटी भूकुम्भिरिव च ॥

कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदशाः ।

कालस्वेदं घटीस्वेदं वालुकास्वेदमेव च ॥

कारयेत् हस्तपादाभ्यां तथा शिरसि चातुरे ।

एवं न शान्तिर्यदि वा दहेत्सोहशलाकया ॥

पादौ दग्धेन लोहेन दहेद्वाङ्गुष्ठमूलके ।

तथाच मणिवन्धे च हृदि मूर्द्ध्नि तथापि वा ॥

ने ललाटे हि तथा नरस्य शीतार्दितस्यापि सपिच्छलस्य ।

लस्यितो यस्य न याति वक्षे नूनं समभ्येति गृहं हि मृत्योः ।

पवनकफयुतं वा पित्तमेतत् ज्वरस्य  
 दशमदिवसतो वा सप्तमे द्वादशे वा ।  
 मृतिमपि कुरुते वा मोचनं वा यथा स्यात्  
 हिततरमपि युक्तं कारकं वै त्रिदोषे ॥  
 सप्ताहे वा दशाहे वा द्वादशाहेऽथवा पुनः ।  
 त्रयोदशे पञ्चदशे प्रशमं याति हन्ति वा ॥  
 अथ पञ्चदशाहे वा हन्ति रक्षति मानवम् ।  
 सन्निपातो महाघातो ज्वरः कालाग्निसन्निभः ॥  
 सप्तमी द्विगुणा या तु नवम्येकादशी तथा ।  
 ण्णा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च बधाय च ॥  
 सन्निपातस्य दोषस्य नरस्यास्य भिषग्वर ! ।  
 सन्निपातऽन्तर्दाहे मनुजं यः शीतवारिणा सिञ्चेत् ।  
 आतुरः कथमपि जीवेद्द्वैद्यश्चामौ कथं पृज्यः ॥  
 यः सन्निपातजलधौ पतितं मनुष्य  
 वैद्यः समुद्धरति किन्न कृतं नु तेन ।  
 धर्मेण वाथ यशसा विनयेन युक्तः  
 पूजाञ्च कां भुवि तले न लभेत् तु वैद्यः ॥

इति सन्निपातज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तकर्फैर्युक्तः प्रदाहः स्यात्त्रिदोषजः ।  
 स च रक्तेन संयुक्तो ज्वरः स्यात् सान्निपातिकः ॥  
 न रक्तेन विना विद्धि ज्वरं वै सान्निपातिकम् ।  
 क्वाथैः पाचनकैर्दोषाः प्रशमं यान्ति मानवे ॥  
 तस्मात् प्रशमिते दोषे रक्तं नैव विलीयते ।  
 तेनैव जायते शोथः कर्णमूले तु दारुणः ॥  
 तस्मात्तस्य प्रतीकारं कुर्याद्रक्तविरचनम् ।  
 जलौकालावुश्णुस्तु ततश्च लेपनं हितम् ॥

वीजपुरकमूलानि अग्निमन्यस्तथैव च ।  
 आलेपनमिदं चास्य कर्णमूलस्य नाशनम् ॥  
 अङ्गारधूपरजनी समहोषधेन  
 मिद्धार्यमैन्धववचा पयसा विमर्द्य ।  
 लेपो हितरक्तस्य च रक्तविनाशकारी  
 शोफव्रणस्य शमनो मनुजस्य कर्णे ॥  
 यटा पाको भवेत्तस्य कार्या तत्र प्रतिक्रिया ।  
 ध्वार्जुनकदम्बत्वक् लेपनं व्रणरोहणम् ॥  
 निम्बार्ग्वधमूलानां निशायुक्तं प्रलेपनम् ।  
 स्त्रावणं पृथगन्धानां रोहणं स्याद्व्रणेषु च ॥  
 वर्जयेच्च दिवास्वप्नं योऽपित्मङ्गं बृहदकम् ।  
 जलं शीतं निशाजाग्रं व्यायामं शोचनन्तथा ॥  
 मापांश्च यवगोधूमतिलपर्णीकमेव च ।  
 मसूरतिपुटांश्चैतान् तैलञ्च दूरतस्त्यजेत् ॥  
 मासमेकं व्यवायञ्च पक्षैकं चातिभोजनम् ।  
 वर्जयेत् कर्णमूली च सुखं तेनोपपद्यते ॥  
 प्रष्टिकान्नं पुराणं वा बल्यं सर्पपमादृकी ।  
 कुलत्थमुद्गयूजं वा भोजनं च प्रशस्यते ॥  
 आर्द्रकं तण्डुलीयञ्च शतपुष्पा पटोलकम् ।  
 कोषातकीद्वयं वापि कुष्माण्डानि प्रशस्यते ॥  
 वार्त्ताकुञ्ज पलाण्डुञ्च कन्दशाकान् परित्यजेत् ।  
 एतेन सुखमाप्नोति शीघ्रं रोगाद्विमुच्यते ॥

इति कर्णमूलविधिः ।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेत् वाह्ये श्लेष्मसमीरणी ।  
 तदान्तर्दाहशोषः स्यात् वाह्ये सस्वेदशीतता ॥  
 तस्या मृतापयः क्वाथं मधुपिप्पलिसंयुतम् ।

पाययेदाशु मुच्येत ज्वराद्दे सान्निपातकात् ॥  
 अथवातिविषा वालं नागरं घनपर्पटम् ।  
 काथो वा शर्करायुक्तस्त्वन्तर्दाहोपशान्तये ॥  
 बाह्ये पित्तं यथा तिष्ठेदन्ते वा कफमारुतौ ।  
 तेनोष्णत्वं शरीरस्य शैत्यमन्ते च जायते ॥  
 तस्य शल्यादिकं काथं प्रयुञ्जीयात् कफापहम् ।  
 यस्योर्द्ध्वं गौ वातकफावधोगं पित्तमेव च ॥  
 तेनार्द्धं शीतलं गात्रमर्द्धं चोष्णञ्च जायते ।  
 तस्य रास्त्रादिकं काथं प्रयुञ्जीयात्तथोष्णकम् ॥  
 यस्योर्द्ध्वं रक्तपित्तञ्च मध्ये वातकफावुभौ ।  
 तेनोर्द्ध्वं जायते चोष्णमधः शीतं प्रजायते ॥  
 तस्य शुण्ठ्यादिकं काथं युञ्जीयात् भिषगुत्तमः ।  
 यस्योष्मा दृश्यते चापि मन्दतृष्णा च जायते ॥  
 बाह्यवेगं विजानीयात् ज्वरः साध्यो विजानता ।  
 यस्यान्ते जायते चोष्मा तृष्णा दाहः शिरोव्यथा ।  
 तृष्णाविह्वलता यस्य साऽन्तर्वेगा भवेच्च्वरः ।  
 यस्योच्छ्वासो भवेदुष्णो रक्तनेत्रोऽतिविह्वलः ॥  
 अन्तर्दाहा भवेदुयस्य शरीरं पुलकाङ्कितम् ।  
 रक्तमूत्रमरोचान्तं प्रलापं श्रममेव च ॥  
 गम्भीरवेगं जानीयात् कृच्छ्रसाध्यं नृणामपि ।  
 तस्य कुर्यात् प्रतीकारं योगोऽष्टादशको नृणाम् ॥  
 अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्देहे वातकफावुभौ ।  
 तेन शैत्यं शरीरस्य चोष्णत्वं करपादयोः ॥  
 तस्य रास्त्रादिकः काथः प्रदेयः पिप्पलीयुतः ।  
 देहे पित्तं यदा तिष्ठेत् वाते वातकफावुभौ ॥  
 तस्योपजायते देहे शीतत्वं करपादयोः ।

तस्य द्राक्षादिकः काथः प्रदेयो गुडकान्वितः ॥  
 यत्र यत्र भवेत् शैत्यं तत्र स्वेदो विधीयते ।  
 नात्युष्णो स्वेदनं कुर्याद् ज्वरस्यास्य विज्ञानता ॥  
 कफपित्तेन निश्चेष्टो भवत्येवानिलः सदा ।  
 तस्मादेवानिलाद्दोगाः संभवन्ति ज्वरादयः ॥  
 भ्रमः शैत्यं विह्वलता कम्पो विड्भेदनं क्लमः ।  
 श्रमः स्वेदो जल्पनञ्च ज्वरमोक्षे भवन्ति च ॥  
 प्रस्वेदकण्डू च शिरा च पृष्ठा तथा मुखेषु क्षवथुर्लघुत्वम् ।  
 अन्नाभिलाषो विपुलेन्द्रियञ्च गतक्लमो वीतरुजो मनुष्यः ॥  
 विमुक्तस्यापि हि शिरोगुरुत्वं नैव मुञ्चति ।  
 अविमुक्तं विजानीयात् ज्वरः पुनरुपैति तम् ॥  
 यदि धातुगतश्चैव ज्वरो देहे प्रपद्यते ।  
 विषमं तं विजानीयात् स च ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥  
 एकाहिको द्वाहाहिकश्च त्रयाहिकश्च तथापरः ।  
 वेलाज्वरश्चतुर्थोऽपि विजानीयात् विचक्षणः ॥  
 शीतश्च पूर्वं भवति पश्चादुष्णं च जायते ।  
 स माध्यो मनुजे प्रोक्तः शीघ्रं सिध्यति भेषजैः ॥  
 यश्चादौ दाहमाप्नोति ज्वरो भवति दारुणः ।  
 सोऽपि नो मुच्यते शीघ्रं ज्वरो धातुक्षयङ्करः ॥  
 ग्वातपैत्ते च त्रिकोरुकट्यां स्यान्मस्तके रुग् भ्रम एव पैत्ते ।  
 ष्ठे तनुश्लेष्म रुजाकरं स्यात् त्रिधा तृतीयज्वरलक्षणन्तत् ॥  
 कफपित्ताक्षिकग्राही पृष्ठं वातकफात्मकः ।  
 वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥  
 वातात्मकः शिरोग्राही जृम्भाग्राही कफात्मकः ।  
 पित्तात्मकस्त्रिकग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥

इति तृतीयकज्वरलक्षणम् ।

चातुर्थो द्विविधो ज्ञेयो वातश्लेष्मात्मको ज्वरः ।

चातुर्थको नाम गदो दारुणो विषमज्वरः ॥

शोषणः सर्वधातूनां बलवर्णाग्निनाशनः ।

त्रिदोषजो विकारः स्यादस्थिमज्जगतोऽनिलः ॥

कुपितं पित्तमेवन्तु कफश्चैवं स्वकालतः ।

शीतदाहकरस्तीव्रस्त्रिकालं चानुवर्तते ॥

स सन्निपातसम्भूतो विषमो विषमज्वरः ।

ऊर्ध्वं कायस्य गृह्णाति यः पूर्वं सोऽनिलात्मकः ।

पूर्वं गृह्णात्यधः कायं श्लेष्मपूर्वज्वरश्च सः ॥

जङ्घाभ्यां श्लेष्मिको ज्ञेयः शिरसोऽनिलसम्भवः ।

एवं विज्ञाय सद्द्वेयः कुर्यात्तत्र प्रतिक्रियाम् ॥

वेलाज्वरो रमगतो रक्ते चैकाहिकस्तथा ।

मांसगोऽपि तृतीयः स्वाच्चतुर्थोऽस्थिममाश्रितः ॥

सर्वधातुगतो ज्ञेयो जीर्णो धातुक्षयङ्करः ।

भूतजे भूतविद्या स्याद्दधाति समताडनम् ॥

अभिशापात् ज्वरो यस्य तस्य शान्तिः प्रतिक्रियाः ।

तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हृयमानस्य तप्यते ॥

पूर्वचेतस्ततो मोहस्ततो विस्फोटदृग्भ्रमः ।

सदा मूर्च्छाप्रपन्नस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ॥

कामजे कामला पित्तैर्नयेच्च श्वसनं हितम् ।

क्रोधजे पित्तजे वापि सदाक्वैरुपशामयेत् ॥

ओषधीगन्धके मूर्च्छा कषायसंवने हितम् ।

पित्तश्लेष्मविशुद्ध्यर्थं कुर्याद् वमनमादितः ॥

निदिग्धिका नागरिकामृतानां काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम्

जीर्णज्वरारोचनकासशूलश्वासाग्निमान्द्यादितपौनर्मेषु ॥

इति निदिग्धिकादिः ।



कासाजीर्णं श्वासहृत् पाण्डुरोगे मन्देवाग्नी कामलारोचके च ।  
तेषां शस्ता पिप्पली स्यात् गुडेन हन्यात् नृणां जीर्णमाशु ज्वरञ्च ॥  
लघुपञ्चमूलीकथितः कषायः किन्नोद्भवायाः सह पिप्पलीभिः ।  
जीर्णज्वरश्वासकफामयघ्नो मन्दार्ग्नि-शूलारुचि-पीनसानाम् ॥  
पटोल-पाठाकटुरोहिणीनां फलत्रिकं वत्सकनिम्बमोक्षाः ।  
द्राक्षामृताचन्दननागराणां काथः पुराणज्वरनाशनाय ॥

सजीरकं गुडं भजेत् सगुडं वा हरीतकीम् ।  
सगुडान् वा तिलान् भजेत् ज्वरे च विषमानुगे ॥  
सगुडं त्रिफलाकाथं भजयेद्वा गुडादेकम् ।  
काथोऽपि विषमाणान्तु ज्वराणां नाशकारकः ॥  
गामाधातु-दारु पथ्या-नागरत्रिफलाभवः ।  
मधुना मयुतः काथश्चातुर्थकनिवारणः ॥  
गर्मास्तिपत्रस्वरसो निर्हन्ति नश्यं च आतुर्थकरोगमुग्रम् ।  
हासं भ्रमं चापि गिरोरुजाञ्च विनाशयत्याशु हितं नराणाम् ॥  
विदारौचुरसः सर्पिसंघुतेष्वनृतं पथः ।  
पिपेक्षातुर्थकञ्जाम-कासवातज्वराप्रहम् ॥  
रसानकण्टकं तिलतैलसिञ्चं योऽद्यानि नित्यं विषमज्वरा- ।  
विमुच्यतेऽसौ विषमज्वरभ्यां वाताग्नेयवायुतिघोररूपैः ॥  
पटोलनिम्बस्य टलानि कुड वचा गुडं मुखानुसर्पणमयः ।  
सर्पियुताऽय धूप-हात प्रादिष्टो विनाशनो वै विषमज्वराणाम् ॥

रति यथाह, प. १

सुरसामूलमाहृत्य हस्ते बद्ध्वा शुभे दिने ।  
वैलाज्वरादिकान् हन्ति भूतज्वरविनाशनम् ॥  
मुस्तामृतामलक्यश्च नागरं कण्टकारिका ।  
कणाचूर्णान्वितः काथस्तथा सधुसमन्वितः ॥  
एकाहिकं वा वैलादां ज्वरजातं व्योमोहति ।

रमेनवीजं संगृह्य खण्डं कृत्वा निशासु च ॥  
 तक्रमध्ये विनिक्षिप्य प्रभाते घृतसंयुतः ।  
 सेविताऽपि ज्वरान् हन्ति वेलाद्यान् देहधातुगान् ॥  
 पिप्पलीवर्द्धमानञ्च पिवेत् क्षीरं रसायनम् ।  
 महौषधं नागरञ्च धान्यं चन्दनवालुकम् ॥  
 पिवेद् गुडचिकाकाथं तृतीयज्वरशान्तये ।  
 अपामार्गस्य मूलञ्च नीलीमूलमथापि वा ।  
 लोहितेन तु सूत्रेण अपामार्गस्य मूलकम् ।  
 वामकर्णे कटौ बद्धा ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥  
 वानरेन्दुमुखं दिव्यं तरुणादित्यर्तजसम् ।  
 ज्वरमेकार्हाहिकं घोरं तत्क्षणादेव नश्यति ॥  
 वानराकृतिसालिस्थ खटिकाभिः पुनः शृणु  
 गन्धपुष्पाक्षतेर्घृपैरर्चयेद्भिषजांवरः ॥

सन्धः ।

ओं क्लीं क्लीं श्रीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सः  
 पुत्राय अभितर्तजसे एकार्हाहिक द्व्यर्हाहिक त्र्यर्हाहिक चातुर्वि  
 महाज्वर भृतज्वर भयज्वर शोकज्वर क्रोधज्वर वेलाज्व  
 प्रभृतिज्वराणां दह दह हन हन पच पच अवतर अवत  
 किल किल वानरराज ! ज्वराणां बन्ध बन्ध क्लीं क्लीं  
 फट् स्वाहा ।

\*

अथ चातुर्वर्णरूपज्वराणां चिह्नानि ।

पुनश्चात्र प्रवक्ष्यामि ज्वराणां रूपलक्षणम् ।  
 मन्तप्तकाञ्चनाभासो हुताशनसमप्रभः ।  
 दण्डी यज्ञोपवीतो च रौद्रो ब्राह्मणरूपकः ॥  
 जवाकुसुमसङ्काशो रौद्रदंष्ट्रान्वितस्तथा ।

खड्गहस्तो महारौद्रो माहेन्द्रो क्षत्रियो मतः ॥  
 चम्पकप्रसवाभासस्तप्तकाञ्चनभूषितः ।  
 दण्डहस्तो मध्यवेगो त्वसो वैश्यज्वरो मतः ॥  
 कृष्णमेघाञ्जनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो ज्वलाननः ।  
 विनैत्रो ज्वलनप्रक्षः कालः शूद्रो मतस्तथा ॥

अथ चिह्नानि ।

तौक्ष्णवेगः क्षुधायुक्तः शुचिर्दृष्टा व्रतप्रियः ।  
 मूत्रञ्च किंशुकाभासं पाठशीलोऽतिजल्पकः ॥  
 बहुश्वासो तृषाक्रान्तो रौद्रो ब्राह्मणपौडितः ।  
 तस्य स्नानं जपं होमं कृत्वा शान्तिः प्रपद्यते ॥  
 तौक्ष्णज्वरोऽतितृष्णाश्च रक्तमूत्रञ्च मूत्रघ्नः ।  
 कुरुते युद्धवार्ताञ्च उत्तिष्ठति वलातुरः ॥  
 तृप्तनैत्रो महाश्वासः क्षुधया पौडितस्तथा ।  
 मधुगन्धो मुखे खंदो माहेन्द्रक्षत्रियार्दितः ॥  
 तस्यादौ श्रवहोमन्तु देवतास्त्रपनं शुचिः ।  
 दानजाप्यादिभिः कार्यैः प्राप्यते सिद्धिमङ्गलम् ॥  
 मध्यवेगः पीतगात्रः स्वप्नशीलोऽरुचिस्तथा ।  
 शीतपवनहृदुष्णः कण्ठस्वेदोऽतिविह्वलः ॥  
 बहुमूत्रो भक्तियुक्तो मीनो पीतान्तलोचनः ।  
 नातितृष्णातुरः स्निग्धः स विज्ञेयो ज्वरेश्वरः ॥  
 तत्र स्वस्थयनातिथ्यं द्विजदेवतपूजनम् ।  
 जपहोमादिकं सर्वं कर्तव्यं शान्तिहेतुना ॥  
 हृच्छूलश्चातिसारी वा मत्स्यगन्धाङ्गलेपनः ।  
 उन्मादो चातिदीप्ताक्षो रतेषु विकलेन्द्रियः ॥  
 प्रणयो त्वध्वनो भौर्यग्रीमश्चैवाभिकाङ्क्षया ।

कालभङ्गारकेणापि शूद्रे सिद्धिर्न जायते ॥  
 स्नानं दानजपौ सुरार्चनविधिर्होमादयः प्रीतिता  
 भूतानाञ्च विशेषेण बहुधा तप्तिञ्च कुर्यात्ततः ।  
 गोभूमिं कनकान्नपानविधिना दानेन शान्तिर्भवेत्  
 सर्वेषाञ्च रुजां विनाशनमिदं संशान्तिं सत्यव्रताः ॥  
 वेगं कृत्वा विषं यद्वदाशये नीयते वलम् ।  
 कुप्यते प्रवलं भूयःकाले दोषो विपन्नतया ॥  
 शालिपष्टिकभक्तानां यूपं मुद्गादकीपु च ।  
 पृर्वाक्तानि च शाकानि वातघ्नानि भवन्ति हि ॥  
 शतपुष्पा च जीवन्ती तण्डुलोयकवास्तुकम् ।  
 घृतं भाजिका सिद्धा शाकपलानीमानि च ॥  
 लावतित्तिरमांसादि वार्त्ताकानां तथातुरं ।  
 मृगच्छिक्करिकाद्यानि जाङ्गलानि प्रयोजयेत् ॥  
 कोशातकी पटोलञ्च शुण्ठीकं रहितं भवेत् ।  
 वर्जयेद्द्विदलान्नानि विदाहीनि गुरुणि च ॥  
 न पिच्छलानि तैलानि तथास्नानि च वर्जयेत् ।  
 दधिमस्तुविशालानि क्षुदान्नानि भिषग्वरः ॥  
 बह्वदकञ्च ताम्बूलं घृतं वापि सुरामपि ।  
 क्रोधं शोकञ्च त्यक्त्वा वै सदा सोऽख्यं विभुञ्जते ॥  
 न कुर्याज्जागरं रात्रौ दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥  
 शकटवाजिकरिद्विपवाहनं प्रवलं परिवर्जयेत् तु सततम् ।  
 ज्वरिणमाशु सुखं बुभुजे सुधीः शुभविधान-निधान-समास्थितः  
 व्यायामञ्च व्यायञ्च अशनं रात्रिजागरम् ।  
 ज्वरमुक्तो न सेवेत तदा सम्पद्यते सुखम् ॥  
 व्यायामाज्वरसंहृद्धिं व्यायात् स्तम्भमूर्च्छनम् ।  
 मृतिञ्च स्नेहपानाद्यैर्मूर्च्छां हृदि सदाऽरुचिः ॥

गुर्वन्नभोजनात् स्वप्नाद् विष्टम्भो दोषकोपनम् ।

अग्नि सादं ज्वरत्वञ्च स्रोतसां चाप्रवर्त्तनम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतीतरे ज्वराधिकारचिकित्सा

नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातीमारविज्ञानं भेषजं शृणु पुत्रक ! ।

ज्वरे चैवातिसारे च भेषजञ्चोपदिश्यते ॥

भेषजं त्रिविधं प्रोक्तं सर्गरोगेषु युज्यते ।

किञ्चिद्दोषप्रशमनं किञ्चित्तु धातुद्रूपणम् ।

स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चित् द्रव्यं त्रिविधमुच्यते ॥

तच्च दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं सत्त्वावजयञ्च । मन्त्रो-  
पधमणिमङ्गलबल्युपहार होमनियमप्रायश्चित्तोपवामस्वस्त्य-  
पनप्रणिधानादीनि इति दैवव्यपाश्रयम् । आहारव्यवहारोषध-  
श्याणां योजनेति युक्तिव्यपाश्रयम् । अहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनो-  
निग्रह इति सत्त्वावजयञ्च ।

स्निग्धातिशीतगुरुशीतलपिच्छलान्नं

दुष्टाशनाति विषमाशनपानभक्ष्यम् ।

अद्यादजीर्णमथशाकविषैर्भयेर्वा

शोकार्त्तिदुष्टपयसा तु विपर्ययेषु ॥

दौर्बल्यकं विषमभोजनकेन चाप्सु

सुभिद्यते मलमजीर्णं निहन्ति चाग्निम् ।

सञ्जायते हि मनुजस्य तदातिसारी

नष्टोदराग्निमनुजस्य तदातिसारः ॥

सञ्जायते स तु पुनर्वहलो मलेन

स्यात् पञ्चधा निगदितो मुनिभिर्विधिज्ञैः ।

वक्ष्ये समासत उदीर्णरुजस्य नाशं

काथादिकैर्भवति पाचनकैश्च पूर्वम् ॥

युगपज्जायते यस्य ज्वरश्चैवातिसारकः ।

ज्वरातिसारो घोरोऽसौ कष्टमाध्यो मनीषिणाम् ॥

न पित्तेन विना सोऽपि जायते शृणु, पुत्रक ! ।

तस्य नो लङ्घनं प्रोक्तं ज्वरे चैवातिसारके ॥

सुवर्चलमतिविषाहिङ्गपथ्याकलिङ्गकैः ।

शुण्ठीवामातिसघ्नी शूलघ्नी ग्राहिपाचनी ॥

पथ्यादारुवचामुस्ता नागरातिविषायुतैः ।

आमातिसारनाशाय काथमेभिः पिबेन्नरः ॥

उत्पलं धान्यकं शुण्ठी पृश्निप्रणी बलायुतम् ।

बालविल्वं गवां तक्रेणात्युष्णेन च पेपयेत् ॥

तेन लाजाकृतं मण्डं पानौयच्च सुशीतलम् ।

ज्वरातिसारशमनं हुताशनबलप्रदम् ॥

इति उत्पलप्रट्का

शुण्ठीविषाजलधरामृतवत्सकानां

तिक्ताह्वयं कनकशीतलकः कषायः ।

पाने विधेयमधुना प्रतिमाधितस्तु

ज्वरातिसारशमनाय सदा प्रदेयः ॥

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्पटः काथ इहैव शस्तः ।

आमातिसारश्च जयेद् द्रुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजञ्च तीव्रम्

शुण्ठी बालकमुस्ता विल्वं पाठा विषा च धान्यानि ।

पाचनमरुचौ कूर्दिज्वरातिसारं विनाशयन्ति ॥

वत्सकश्च सुरदारु रोहिणी धान्यविल्वमगधा त्रिकण्टक

निम्बविल्वगजपिप्पलीवृकी काथ एवमतिसार श्रीषधम

पञ्चमूलौ बलाविल्वगुडूचौमुस्तनागरैः ।

पाठा भूनिम्बक्रीवेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥  
हन्ति सर्वानतीसारान् वमिश्वासज्वरादितान् ।  
सशूलोपद्रवांश्चासौ हन्याच्चैव सुदारुणम् ॥  
पञ्चमूल्यतिसामान्या योज्या पित्ते कनीयसी ।  
महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मज्वरे हिता ॥

इति पञ्चमूलीकाणः ।

उत्पलं दाडिमत्वक् च केशरं मधुपद्मबीजकम् ।  
धात्री पिष्टा तण्डुलतोयैः पानं ज्वरातिसारघ्नम् ॥  
उशीरं धान्यकं मुस्तं सविल्वं बालकं बला ।  
तथाच धातकीपुष्पं कषायस्य प्रशस्यते ॥  
ज्वरातिसारशमनं सशोणितं सपैत्तिकम् ।  
निहन्ति शोफं सकलं रुचिप्रदं विपाचनम् ॥  
कटुङ्गविल्वजम्बाम्बकपित्तं सरसाञ्जनम् ।  
लाक्षा हरिद्रे क्रीवेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥  
लोध्रं मोचरसं शङ्खं धातकी वटशुङ्गकम् ।  
पिष्टा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्भितान् ॥  
क्वायाशुष्कान् पिवेच्छीघ्रं ज्वरातीसारशान्तये ।  
रक्तप्रसादनाश्चैते शूलातीसारनाशनाः ॥

इति ज्वरातिसारचिकित्सा ।

विगतमतीसारं चिरोत्थितं रक्तसहितमतिवृद्धम् ।  
मधुना सहितः शमयत्यरलुः पुटपाकनिर्यासितः ॥  
[स्वूवटोडुम्बरप्लक्षको हि नागः प्रपुद्गारिकया शमी च ।  
[न्द्रः सचूतोऽम्बुदजीविकाया आसां हि पुष्पञ्च सदा विदध्यात् ।  
[स्थद्वयेन प्रपिवेद्धि तावत् यावद्विशेषांश्च मिदं प्रजायते ।  
[नः कटाहे विपचेच्च सम्यक् दर्वीप्रलेपः स्वरसश्च यावत् ।  
[त्तार्यं ननं भिषगुत्तमेन क्षौद्रेण मिश्रं हरतेऽतिसारम् ॥

हारीतेन यथा प्रोक्ता काकमाचौ सुपूजिता ।

आलोक्यानेकशास्त्राणि आत्रेयेणापि पूजिता ॥

जम्बूत्वचं वत्सकवल्कलञ्च निःकाथ्य नूनं सलिलेषु सम्यक् ।

चतुर्विभागेष्वपि शोषितेषु उत्तार्य वस्त्रेष्वथ गालयेच्च ॥

पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यक् दद्यात् प्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ।

उत्तार्य शीते मधुना विमिश्रं लीढं हरेदप्यतिसारमुग्रम् ॥

कुक्षौ तथा वक्षसि नाभिदेशे पायुप्रदेशे सततं निरुद्धे ।

वातस्य रोधो हि शक्तदिभङ्गो भवन्ति सर्वेष्वतिसारकेषु ॥

सफेनिलं पिच्छलमेव रुक्षमल्पं शक्तदाय सशब्दशूलम् ।

गात्रं भवेत् कृष्णविचेष्टनञ्च वातातिसारं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

तस्यादौ लङ्घनञ्चैकमल्पं वा नैव लङ्घनम् ।

तस्माद्देयं कषायन्तु पानभोजनमेव च ॥

उदीच्य धान्यस्य जलेन कल्कं पाने हितं पाचयतेऽतिसारम्

तृष्णापहं दाहविनाशनञ्च सशूलहिकासु विनाशनं स्यात् ॥

बालद्वयं मोचहरीतकौ च सपर्पटं नागरकं जलेन ।

काथपानमतिसारके नृणां नाशमाशु कुरुते मलशान्तिम् ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ।

बालाश्वदंष्ट्राविल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥

एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ।

तिन्दुकत्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् ॥

मृदा विलिप्य विधिवद्देह्यन्मृदग्निना भिषक् ।

रसं गृहीत्वा सक्षौद्रं सर्वातिसारनाशनम् ॥

इति वातातिसारः ।

घर्मेण चोष्णान्नविभोजनेन घर्मेण तप्तोदकसेवनेन ।

शोकेन तापेन रुषा कटुत्वे क्षारेण पित्तासृजि सारकः स्यात् ॥

तेनारुणं पीतमथातिनीलं दुर्गन्धशोषज्वरपाण्डुयुक्तम् ।



मार्ति मूर्च्छा च तृषाङ्गदाहः पित्तातिसारस्य च लक्षणानि ॥

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बलाविल्वैस्तु साधितः ।

दाडिमाम्लो हितः पेयः पित्तातिसारशान्तये ॥

कुशकाशेक्षुमूलानां शालीनलभवैर्जलैः ।

मूलानां काथमाहृत्य शस्तुं पित्तातिसारिणाम् ॥

धान्यपञ्चकमूलानां काथः पित्तातिसारिणाम् ।

त्वचं शाल्मलीमूलस्य सगुडां दुग्धपेषिताम् ॥

पिबेत् पित्तातिसारघ्नीं सरक्तदाहशोषणीम् ।

इति पित्तातिसारः ।

दृक् स्वप्नादिश्रमाद्यैः सहजदृढतया शीतसंसेवनेन

स्निग्धाहारातिभोज्यैः सतिलपल्लवगुडैश्चेक्षुस्त्रण्डैर्गुरुणाम् ।

शीतातिस्नानलील्यात् पयसि दधियुताहारसंसेवनाच्च

जातः श्लेष्मातिसारो जठरगदुतभुग् यस्य पुंसस्त्वपाकः ॥

न श्लेष्माशुष्कभेदारुचिः स्यात् सान्द्रं विथं जाड्यता रोमहर्षः ।

ान्दाग्नित्वं मन्दवेगो विचेष्टः सालस्यो वा विद्धि सारः कफोत्थः ॥

तस्यादौ लङ्घनं प्रोक्तं ज्ञात्वा देहवलाबलम् ।

पाचनञ्च विधातव्यं तृषणाद्यं भिषग्वर ! ॥

तृषणमभयाहिङ्गु चातिविषारुचकं वचा युक्तम् ।

मधुमहितं लेहनं नृणां गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥

लिङ्गपाठातिविषा बला च सोदौच्यमुस्तामरिचानि शुण्ठी ।

डेन क्षौद्रेण सहैव कल्को रक्तातिसारे कफजे शमाय ॥

त्सकातिन्निषविल्वमुस्तका वालकेन सहितो जलेन तु ।

पानमतिशूलरक्तमुक् नाशनो ज्वरयुतेऽतिसारके ॥

इति श्लेष्मातिसारः ।

यस्तु रक्तशुद्धिविरेचने शोषदाहमतिरिच्यते ।

रक्तातिसार इति विज्ञेयो वैद्यैर्महामतिभिः ॥

धन्वनागरमुस्ता च बालकं बालविल्वकम् ।  
 बला नागबलाचेति काथो रक्तातिसारिणाम् ॥  
 दाडिमञ्च कपित्थञ्च पथ्या जम्बाम्बपल्लवान् ।  
 पिष्ट्वा देया मस्तु युक्ता रक्तातिसारवारणाः ॥  
 गुडेन पक्वं दातव्यं विल्वं रक्तातिसारिणे ।  
 मनुजे मधुयुक्ता वा दध्ना रक्तातिसारहाः ॥  
 वत्सक्तातिविषनागराभया पिषितञ्च मधुमस्तु संयुतम् ।  
 लेह एष मधुना च मानुषे रक्तवाहमतिवारयत्यपि ॥  
 कुटजत्वक् च पाठा च विश्व विल्वञ्च धातकी ।  
 मधुना सहितं चूर्णं देयं रक्तातिसारघ्नम् ॥

इति रक्तातिसारः

वराहवसामष्टशं तिलाभं मांसधावनाभासम् ।  
 पक्कजम्बुफलमष्टशं शनिपातप्रवहहरम् ॥  
 तुलामथाद्रागिरिमल्लिकायाः गंकुञ्ज कर्षञ्च रसं ददौत ।  
 तस्मिन् सपूते पलसंमितञ्च देयञ्च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥  
 पाठा समङ्गातिविषा समुस्ता विल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम्  
 प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावत् दार्वीप्रलेपः सरसस्तु यावत् ॥  
 पीतस्ततः कालविदा जनेन मण्डेन च क्षौद्रयुतेन चापि ।  
 निहन्ति सर्वत्वतिमारमुग्रं कृष्ण सितं लोहितपीतकं वा ॥  
 दोषं ग्रहण्यां विविधञ्च रक्तं पित्तस्य चाशंसि सशोणितानि  
 असृग्दरञ्चैवमसाध्यरूपं निहत्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥

इति कुटजाष्टकः

पथ्यापञ्चमूलकाथश्चतुर्भागावशेषितः ।  
 तत्र काथे पुनश्चूर्णमिमानि चोषधानि तु ॥  
 शृङ्गवेरं तथा लाक्षा पिप्पली कटुरोहिणी ।  
 दाडिमत्वक् सुवूर्णञ्च दार्वी सवत्सकं विषम् ॥

अटरुषकचूर्णानि संचिष्यात्र निघट्टयेत् ।  
 आजं दुग्धं तदर्धेन घृतं चाष्टांशिकं क्षिपेत् ॥  
 दाव्यां विलेपितं ज्ञात्वा गुडस्य षोडशानि तु ।  
 पलानि मिश्रितं तत्र देयमप्रातराशने ॥  
 त्रिदोषः सन्निप्लतोत्यस्त्वतिमारश्च दारुणः ।  
 शूलमूर्च्छाभ्रमानाहकामलानां विपाचनः ॥  
 क्षतक्षीणक्षयाणान्तु हितोऽयममृतो वटः ।

इति अमृतवटकः ।

पलञ्चाङ्गोठमूलस्य पाठां दावीञ्च तत्समाम् ।  
 पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥  
 तेनैव मधुसंयुक्तानेकैकान् प्रातरुत्थितः ।  
 पिवेदत्ययमापन्नः सर्वातीमारनाशनः ॥  
 विल्वा गुरुलोध्रचूर्णमधुना विनियोजितम् ।  
 रक्तातिसारशमनं बालानां क्षीणधातुषु ॥

इति सन्निपातातिसारः ।

यदा गुह्यं निरस्येति तदा कुर्यात् क्रियामिमाम् ।  
 सह चर्याबलानाञ्च रसो ग्राह्यो घृतं पयः ॥  
 पक्त्वा घृतेन लेपः स्यात् तस्य चेदं प्रशस्यते ।  
 अरणीपल्लवकाथो वाप्यं लोष्ट्रं सचन्दनम् ॥

प्रतप्य वर्जिसदृशं सहसा नरस्य  
 निर्वाप्य कार्ज्जिकमथो विदधीत तद्वत् ।  
 •सौख्यञ्च सम्यगुदसेचनकं प्रशस्तम्  
 संवेश्य मध्यगुदतो दृढबन्धनं स्यात् ॥

इति गुदसंश्लः ।

लशुनकुणपगन्धं पूतिगन्धं घनं वा  
 यल्लजलसमानं पक्वजम्बूनिभं वा ।

घृतमधुपयसाभं तैलशैवालनीलं  
 सघनदधि सवर्णं वर्जयेच्चातिसारम् ॥  
 भ्रममदनमकाश्यं शूलमूर्च्छाविदाहं  
 श्वसनमतिविवर्णं कृदिमूर्च्छादृष्टार्तम् ।  
 विकलमतिशयीतं श्लेष्मशोथज्वहार्तिः  
 स परिहरतु दूरं सद्दिदाता न दृष्टः ॥

शोफं शूलं ज्वरं दृष्ट्वां श्वासं कासमरोचकम् ।  
 कृदिं मूर्च्छाञ्च हिक्काञ्च दृष्ट्वातिसारिणं त्यजेत् ॥  
 दृष्ट्वा शोफं तथाध्मानं हिक्कां कृदिमरोचकम् ।  
 तथाच पाण्डुरोगार्तमतिसारयुतं त्यजेत् ॥

यदल्पमल्पं क्रमशो निपेवितं मलं भगाधारगतञ्च नित्यम् ।  
 हत्वान्तराग्निं कुरुते नरस्य विकारमाहुर्ग्रहणीति सञ्ज्ञाम् ॥  
 निवृत्ते चातिसारे शमयति दहनं भूयसा दौषितोऽपि ।  
 भुक्त्वा न स्वास्थ्यमेति प्रतिदिनमनिशं मच्चयित्वा निमर्त्तिः ॥  
 वारं वारं सतोदं विसृजति च शकृत् पक्वमामं घनं वा ।  
 दुर्व्याधिर्वीररूपो मनुजरुजकरः सैव संग्रहणीति ॥

लक्षयेच्चातिसारे च विज्ञेयं ग्रहणोगदम् ।  
 वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लेष्मिकं सान्निपातिकम् ॥  
 नैव चैकेन दोषेण जायते ग्रहणोगदः ।  
 तेन सञ्जीयते दहमन्तर्दाहो विपाकता ॥

ग्रहणीनामसाध्यो यस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥

चित्त्रं सशब्दं सृजतंऽत्र वर्चः शोफोऽनिलो वर्चमतौव रुक्षः  
 श्वासात्तियुक्तं तनुशैथिलञ्च स्रावो ग्रहण्यानिलकोपतः स्यात्  
 विदाहि शीर्णं मरुजं दृष्टार्तं दुर्गन्धपीतारुणनीलकालम् ।  
 संसृज्यते यस्य मला विमिश्रा पित्तोद्भवा सा ग्रहणीति सञ्ज्ञा  
 हृत्सासम्कृदिः श्वसनञ्च शोफः कासो जडत्वञ्च मशीतता च

रस्यमास्ये गुरुगात्रता स्यादरोचकं श्लेष्मभवो गदस्तु ॥  
 अभिः समेतं गदितञ्च चिह्न मेतस्य कोपो मधुरास्यता वा ।  
 होऽथमूर्च्छा श्वसनं जडत्वं स सन्निपाती ग्रहणीगदः स्यात् ॥  
 रुनागरनिशा सवासका कुण्डली मगधजा शठी घनम् ।  
 स्त्रा सभागी सरलाह्वपुष्करं तत्पाचनं भवति वातिकग्रहे ॥  
 नलवेणुकुशानाञ्च काशेक्षूणाञ्च मूलकम् ।  
 निःकाथ्य पानं विहितं पाचनं ऐत्तिके ग्रहे ॥

व्याघ्री ग्रन्थि नागरञ्च सुरसा दाडिमं चवी  
 रजनी घनचित्रञ्च श्लेष्मजां ग्रहणीं जयेत् ।  
 शुण्ठी कणा द्विरजनी घनकञ्च रात्रि-  
 र्योज्यः पुनः प्रतिविषा त्रिफला विडङ्गः ॥  
 सिन्धूत्यर्वाङ्गलिकटु त्रिसुगन्धियुक्तं  
 चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितञ्च ।  
 कृत्वा विडालपदमात्रकमोदकांश्च  
 भजेद् यथा जलमपि ग्रहणीगटे च ।  
 अर्शो भगन्दरमरोचकगुल्ममेहान्  
 शूलाश्मरीक्रिमिजपाण्डुगदं निहन्ति ॥  
 श्रेष्ठं रसायनमिदं बलिनाशनं स्यात्  
 वृष्यं बलं विदधतेऽप्यतिवृंहणञ्च ।  
 वर्णेन्द्रियाग्निजननं सकलामयघ्नं  
 कुष्ठभ्रमापहरणं कुरुते सदैव ॥

इति शुण्ठादि अमृतप्राशनं नाम वटकः ।

तैतकौ पञ्चशतानि धीमान् द्रोणेन गोमूत्रशतेन पाच्यम् ।  
 अग्निना यावदशेषमेव मूत्रं विजीर्णं विधिवद् विधिघ्नः ॥  
 शीघ्रं चूर्णं प्रतिशोष्य शीतं क्वायाविशुष्कां प्रविटार्य चास्थीन् ।  
 श्व शुण्ठीं मगधां विषाञ्च सुगन्धिमूर्वाञ्चविकान्विताञ्च ॥

निःक्वाथकल्पः कुटजस्य तावत् दर्व्योपलेपो भवतीति यावत्  
तस्यार्धभागेन गुडं विमथ्यात् क्षीरं तदर्धेन गवाजकं वा ॥  
निर्वापितं तं घृतभाजने च संस्थापितं प्राङ्मुदितेन तेन ।

सिन्धूत्यवक्लिं विकटु त्रिसुगन्धियुक्तं  
चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितञ्च ।  
चूर्णेन तेन सकलग्रहणीञ्च पाण्डुं  
शोषाश्मरीं कृमिजगुल्ममथातिमारान् ॥

प्लीहा यकृतं श्वासिषु मानवेषु विसृचिका पौनसमस्तकार्त्तौ  
विनाशनं तत्क्षणतो ज्वराणां अध्वाश्मक्षीणबलोदराणाम्  
एकाहिकादिज्वरनाशनः स्यात् लेहोऽभयाद्योऽमृतवन्नराणां

इति अभयाद्योऽवल्लह

द्राक्षाक्षीरेण पक्त्वा यावत् घनं दर्व्योपलेपि च ।  
दृष्ट्वा पश्चात्तैः समालोढ्य चेमान्यौषधानि मतिमान् ॥  
पर्यटातिविषा मूर्वा पटोलं घनबालकम् ।  
तथाभयानां चूर्णन्तु समशर्करया युतम् ॥  
तेन क्षीरेण संयोज्यं विदार्याः कन्दमेव च ।  
घृतेन नवनीतेन पिण्डं कृत्वाथ भक्षयेत् ॥  
सपित्तग्रहणीपाण्डुं कामलार्त्तितृषापहम् ।  
भ्रममूर्च्छां तथा हिक्कां तमकोन्मादमश्मरीम् ॥  
मेहपित्तासृजं कुष्ठं नाशयत्याशु निश्चितम् ।

इति दाक्षादिक्षीरम्

धवार्जुनकदम्बानां शिरोषवदरीषु च ।  
निःक्वाथ पानमामघ्नं विसूचीशूलवारणम् ॥  
कदलीक्षारमादाय शङ्कुक्षारमथापि वा ।  
प्रस्राव्य जलपानन्तु हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥  
आमं हरति विष्टब्धं शूलक्ष्माशु नियच्छति ।

विसूचिकानां शमनमजीर्णं जरयत्यपि ॥  
 मातुलुङ्गरमं ग्राह्यं द्विगुणं तत्र काञ्जिकम् ।  
 हिङ्गुसौवर्चलयुतं पानं हन्ति विसूचिकाम् ॥  
 क्षारं तोयञ्च पानाय दाहस्योपरि पाययेत् ।  
 शूलाधानं निहन्त्याशु कुरुते चाग्निदीपनम् ॥  
 आमेषु वमनं कुर्याद् विपक्वे चैव लक्षणम् ।  
 विष्टम्भे स्वेदनं निद्रा रसशेषे विरेचनम् ॥  
 उन्मत्ते चातिसारे च वमिः क्रोधातुरेषु च ।  
 अजीर्णं च विसूच्याञ्च दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥  
 न हितं श्लेष्मरोगे च हृद्रोगे तु शिरोरुजि ।  
 हृत्क्षामे च प्रतिश्याये दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥  
 लवयं व्योषं करञ्जवीजं रमं तथा दाडिममातुलुङ्गाः ।  
 शायुतं पेष्य कृता च वत्तिस्तदञ्जनो हन्ति विसूचिकाञ्च ॥  
 स्ना विशाला च सुराह्वकुष्ठं शिग्रूषचा नागरकं शताह्वम् ।  
 म्लेन पिष्ट्वा वपुषं विदार्य खलीं विसूचीञ्च निवारयन्ति ॥  
 दो विधेयो घटकस्य वाष्पमेकैर्घटैर्वा वमनेन चोष्णैः ।  
 शोष्णपाणिं प्रतिषेकमेवं जयेद्विसूचीं जठरामयानाम् ॥  
 गन्धकं सैन्धवं व्योषं निम्बुरसविमर्दितम् ।  
 आतुरो भक्षयेच्छीघ्रं विसूचीनां निवारणम् ॥

इति अजीर्णचिकित्सा ।

इति श्रीमद्व्यासत्रिभार्षिते द्वारीतीतरे तृतीयस्थाने अतीसार-

चिकित्सा नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ गुल्मचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

श्वयथूथोपचारैश्च दोषैः संकुप्यतेऽनिलः ।  
 मन्दाग्निना हि जठरे जायते गुल्मरुक् नृणाम् ॥  
 उदरं गर्जते यस्य विषमाग्निश्च दृश्यते ।  
 तोदो वपुषि शूलञ्च वातगुल्मं विनिर्दिशेत् ॥  
 शोषोऽरतिः सपीतत्वं मन्दज्वरनिपीडितम् ।  
 तमो भ्रमपिपामात्तं गुल्मं तत् पित्तसम्भवम् ॥  
 शोफो जाड्यञ्च हृत्तामं तन्द्रालस्यं सशीतकम् ।  
 मन्दाग्निर्विड् विबन्धश्च गुल्मान्तत् श्लेष्मसम्भवम् ॥  
 मोहो विभ्रमता जाड्यमरतिः क्षुत्पिपासकम् ।  
 आलस्य निद्रता चैवं गुल्मान्तत् कफपैत्तिकम् ॥  
 निद्रालस्यञ्च दाहञ्च शोथात् शूलञ्च मज्जरम् ।  
 वैवर्ण्यमरतिर्जाड्यं विड्बन्धो विकलाङ्गता ॥  
 तथातिमारमूर्च्छा च तृषा हृत्तामवेपथुः ।  
 श्वासोऽरुचिरजीर्णत्वं गुल्मं तत् सान्निपातिकम् ॥  
 साध्यं केवलदोषोत्थं द्वन्द्वं कष्टेन सिध्यति ।  
 असाध्यं सन्निपातोत्थं वक्ष्यामस्तत् प्रतिक्रियाम् ॥  
 यकृतं चिकित्सितञ्चैव कथितञ्चोपचारणम् ।  
 तद्वत् प्लीहा समाख्यातो न चात्र कथितं पुनः ॥  
 चिकित्सोदरगुल्मस्य वक्ष्यते शृणु साम्प्रतम् ।  
 स्नेहनं रुक्षणञ्चैव पाचनं शोधनानि च ।  
 संशमनं विरेकञ्च वस्तिस्नेहनिरुक्षणम् ॥  
 क्षये पानञ्च चूर्णानि गुल्मोपचरणक्रिया ।  
 शुण्ठी मूवी पञ्चमूलं लघु रास्ना च दारु च ॥



काथोऽस्याष्टावशेषः स्यात् तत्समं क्षीरमेव च ।

दधि तत्सममेवन्तु पाचयेत्तत्समाग्निना ॥

घृतं यावत् प्रदृश्येच्च सिद्धमुत्तार्यते ततः ।

तत्कृतं पानकेऽभ्यङ्गे भोजने च प्रदापयेत् ॥

स्नेहं सप्तदिनं यावत्तस्माच्च रुक्षणं हितम् ।

दिनत्रयञ्च कर्त्तव्यं कथयाम्यत्र कीविदः ॥

शुण्ठी सौवर्चलं जीरे द्वे वा हिङ्गुसमन्वितम् ।

काञ्जिकं पानमेतेषां रुक्षणं गुल्मशान्तये ॥

गुल्मचिकित्सिते चारपाकोऽत्र प्रतियुज्यते ।

क्षारं पलाशार्जुनशूरणस्य क्षारं तथैव सहयावशूकम् ।

सौवर्चलं सिन्धुभवोद्भिदञ्च मामुद्रजं वापि विमिश्रयेच्च ।

तोयं परिस्राव्य विधानतोऽपि युक्तं तथैतानि सद्यौषधानि ॥

अथाग्निं शुण्ठीरजनीसुराह्वं कुष्ठं विशाला च यवानिका च ।

अथाजमोदा सहजीरके द्वे षड् ग्रन्थिका हिङ्गुयुतञ्च चूर्णम् ॥

क्षारोदकौ पानविमिश्रपानं निहन्ति सर्वाण्यपि कोष्ठजानि ।

गुल्मानि सर्वाणि विसृचिकानां मन्दाग्निशूलानि भगन्दराणाम्

ग्रीहोदरामाहमथो विबन्धं विनाशनो रोगचयं नराणाम् ॥

इति विरुक्षणम् ।

अथाममङ्गाकलसीवृषञ्च महौषधं वातिविषा सुराह्वम् ।

जले च निःक्वाथ्यमिदं हि पानं गुल्मामयानां प्रतिपाचनञ्च ॥

वचा यवानौत्रिकटुदशमूलौजलं शृतम् ।

क्वाथश्चेष्टो हितः पाने धान्यनागरयाथवा ॥

वातगुल्मेषु सर्वेषु ज्वरेषु विषमेषु च ।

रास्नाद्यपञ्चकं वापि वातगुल्मप्रपाचनम् ।

शुण्ठीसौवर्चलं शुण्ठी पाचनं वातगुल्मिने ॥

इति वातगुल्मपाचनम् ।

द्राक्षा विदारौ कटुका निम्बपत्राणि चैव तु ।  
 मगुडं पाचनं देयं पित्तिके गुल्मरोगिणे ॥  
 धात्रीकल्कं मितोपेतं पाचन पित्तगुल्मिने ।  
 यवानी चोग्रगन्धा च तथाच कटुकत्रयम् ।  
 पाचनं श्लेष्मिके गुल्मे पीतं चोष्णं निशासु च ॥

इति श्लेष्मगुल्मपाचनम्

अथ विरेचनानि वक्ष्यामः ।

नागरं क्लृप्तिजित् पथ्या त्रिवृता त्रिगुणायुताम् ।  
 चूर्णं गुडान्वितं देयं वातगुल्मविरेचनम् ॥  
 दन्तो च भागर्मकञ्च द्वौ भागौ च हरीतकी ।  
 त्रिवृतायास्त्रिभागं स्यात् शुण्ठ्याश्चत्वार एव च ॥  
 प्रक्षिप्य सर्वमेकत्र सर्वतुल्यगुडेन तु ।  
 वटकं भक्षयेत् प्रातस्तस्योपरि जलं पिवेत् ।  
 कथितञ्च विरेकञ्च वातगुल्मोपशान्तये ॥

इति वातगुल्मविरेचनम्

पिवेदेरण्डतैलञ्च शर्करा क्षीरसंयुतम् ।  
 पित्तगुल्मविरेकाय श्रेष्ठमेतत् सुखावहम् ॥  
 आरग्वधं प्रवालानि तथैवारग्वधानि च ।  
 विभाव्यैरण्डतैलेन तत्पत्रैश्चैव वेष्टयेत् ॥  
 कर्दमेन प्रलिप्याथ अङ्गारेषु निधापयेत् ॥  
 सुस्निग्धभर्जिकां ताञ्च भक्षयेत् शर्करान्विताम् ।  
 विरेकं पित्तिके गुल्मे हितं शुद्धविरेचनम् ॥

इति पित्तगुल्मविरेचनम्

त्रिफला सुरसा शुण्ठी चूर्णं कृत्वा विभावयेत् ।  
 स्रुहौक्षीरेण वारैकं गुडेन सह मिश्रितम् ॥  
 विरेकः श्लेष्मगुल्मे च सर्वोदरविनाशनम् ।  
 शुण्ठौसौवर्चलं पथ्या विडङ्गञ्च पुनर्नवा ॥

चूर्णोऽपामार्गवौजानां स्रुहोक्षीरेण भावितः ।  
गुडेन संयुतं खादेत् पश्चात् सोष्णं जलं पिबेत् ॥  
विरेकः सर्वगुल्मेषु प्रशस्तो हितकारकः ॥

इति विरेचनम् ।

शुक्तिक्षारनिशाविशालकदली स्यात् शूरणं कोकिला  
पालाशं दहनार्जुनं शठिजयाऽपामार्गकूष्माण्डकम् ।  
दग्धा क्षारविपाचितं परिशृतं हिङ्गुं त्रिकट्वान्वितं  
गुल्मानाहविवन्धशूलहरणं सर्वोदराणां हितम् ॥

इति क्षारपानम् ।

अजमोदा शठी दन्ती विडङ्गं कुष्ठतुम्बुरु ।  
त्रिफलाचित्रकञ्चैव शुण्ठीककटशृङ्गिका ॥  
त्रिवृता च सुराह्वा च पुष्करं वृद्धदारुकम् ।  
तथास्त्रवेतमञ्चैव तित्तिडौकञ्च चिञ्चिनिः ॥  
ममं तु मातुलुङ्गेन विभाव्यमेकतः कृतम् ।  
त्रिभागं हिङ्गुसंयुक्तं घृतं चूर्णितं हितम् ।  
निहन्ति वातगुल्मञ्च मशूलमुदरं तथा ॥

इति अजमोदादि ।

हिङ्गुं फलत्रिक जीरकयुग्मं चित्रकभार्गमिकुष्ठं विडङ्गम् ।  
तुम्बुरुपुष्करं विश्वसुराह्वं क्षारयुतं च लवणानि पञ्च ।  
पातिकगुल्मविनाशनर्हतोः शूलरुजश्च नराणां निहन्ति ॥  
हिङ्गुमौवर्चलाजाजी विश्वकुष्ठं विडङ्गकम् ।  
आरनालेन पीतञ्च हन्ति गुल्मं सवातिकम् ॥  
अजमोदा त्रिलवणं शठी जीरे त्रिकटुकम् ।  
तुम्बुरुं चित्रकाजाजी हिङ्गुमधुना संयुतम् ।  
वातगुल्मविनाशाय वातरोगे हितं मतम् ॥

इति वातगुल्मचिकित्सा ।

विदारीक्षीर शुक्ला च पथ्या विश्वौषधं मधु ।  
 लेहः पित्तात्मके गुल्मे हितः शोफनिवारणः ॥  
 यष्टिकं निम्बपत्राणि तथा धात्रीफलं सिता ।  
 चूर्णं मध्वावलीढञ्च पित्तगुल्मनिवारणम् ॥

इति पित्तगुल्मचिकित्सा

त्रिकटु त्रिफला चित्रवटकट्फलसंयुतम् ।  
 चूर्णं मद्येन वा पीतं फलकाथेन वा हितम् ॥  
 श्लेष्मगुल्मविनाशाय हितञ्चैतत् सुखावहम् ।  
 रोध्रञ्च कट्फलं विश्वाकुष्ठं चित्रकमेव च ॥  
 मागरं हिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं मूत्रेण संयुतम् ।  
 श्लेष्मगुल्मविनाशाय शूलोदरविनाशनम् ॥  
 उग्रगन्धा च मरिचं क्षारचूर्णं समन्वितम् ।  
 पित्रेन्मूत्रेण संयुक्तं श्लेष्मगुल्मविनाशनम् ॥

इति श्लेष्मगुल्मचिकित्सा

शण्ठौमौवर्चनं भार्गी वत्सकं यावशूककम् ।  
 जीरे द्वे चाटरूपञ्च यवानी हिङ्गुसैन्धवम् ॥  
 आरग्वधेन संयुक्तं चूर्णं मधृतमेव च ।  
 वातश्लेष्मोद्भवे गुल्मे सुखमाशु प्रपद्यते ॥  
 उग्रगन्धाफलत्रिकं देवदारु पुनर्नवा ।  
 त्रिवृत् सौवर्चलोपेतं क्षारोदकसमन्वितम् ।  
 पीतं वातकफे गुल्मे सुखकारि परं मतम् ॥

इति वातश्लेष्मगुल्मचिकित्सा

ग्रहणो गुल्मरोगेषु क्रियोक्ता प्रभवेद् यदि ।  
 शोफोदरेषु सर्वेषु कार्यं चात्र विरेचनम् ॥  
 शोफातिसारसंयुक्तं हन्ति गुल्मोदरं नरे ।  
 तस्य क्षारोदकं पानं बृहत् हिङ्गुादिचूर्णकम् ॥

अजमोदादिकं वापि शोफातिसारशान्तये ।  
 वमिश्चैवातिसारश्च गुल्मरोगेषु यद्यपि ॥  
 तेन साध्यं विजानीयात् प्रत्याख्येया क्रियारहिता ।  
 गुडदाडिमपथ्या च मधुना सहितं पिवेत् ॥  
 वम्यां चैवातिसारे च वारं न्वारं प्रयोजयेत् ।  
 सर्वलक्षणसंयुक्तं गुल्मं तस्मान्निपातिकम् ॥  
 तोदोऽरतिर्विवर्णत्वं सूच्छातिसारसंयुतम् ।  
 वमिः क्लेदश्च तन्द्रा च तदसाध्यं त्रिदोषजम् ॥  
 लङ्घनं दौषनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।  
 ब्रह्मणन्तु भवेदन्नं तद्विषं सर्वगुल्मिणाम् ॥  
 वज्रमूलकं मत्स्यान् शुष्कशक्तादि वैदलम् ।  
 च खट्वह्नालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥  
 मरक्तगुल्मे न तु पाचनन्तु न हिङ्गुपानं कटिचालनञ्च ।  
 लचैव मस्वेदनमर्दनञ्च न वा कर्मज्ञोत्प्लवनं हितञ्च ॥

राधार्जुनं खदिरमागधिका समङ्गा  
 काथोऽम्लवेतस समं घृतमंप्रयुक्तम् ।  
 गुल्मं मरक्तमपि चाथ निहन्ति चाशु  
 हृत्क्लेदनं च विनिहन्ति च क्रुद्धरक्तम् ॥  
 क्षौरपानं प्रदातव्यं घृतसौवर्चलान्वितम् ।  
 रक्तगुल्मविनाशाय यक्षत् विक्षतजेऽपि वा ॥  
 न हिङ्गुसंयुतं पथ्यं न चोष्णं न विदाहि च ।  
 रक्तजे क्षतजे गुल्मे मांसानि जाङ्गलानि च ॥

इति गुल्मचिकित्सा ।

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि गुल्मानाञ्चैव लक्षणम् ।  
 तस्मात्तेषां प्रतीकारमौषधानि विशेषतः ॥  
 तित्कैः कषायकटुकाम्लविदाहिरुजैः

शीताल्पभोजनपरैः अममैद्युनैश्च ।  
 भाराध्वहस्तिरथवाहनधावनेन  
 संक्रुद्धवायुहननेन च वेगरोधैः ॥  
 तस्मात्तदग्रमनिलेन च कुप्यमानं  
 रक्तेन युक्तमनिले परिणाममेति ।  
 सञ्जायतेऽपि मनुजस्य तथा तृतीयं  
 गुल्मेति नाम स च पञ्चविधो बभूव ॥  
 प्लौहायकृदजठरकण्डुमलस्य बन्धः  
 प्लौहक्रिमिजठररुक् च भवेच्च पष्ठः ।  
 एते भवन्ति ग्रहणौपरिवर्त्तमाना  
 घ्रातिदुःखदरदा मनुजस्य चित्तं ॥  
 कण्ठस्य शोषास्तिमिरन्त्वथ पाण्डूशूलं  
 नाभौ तथातिकृशतातिविसूचिका च ।  
 कर्णं स्वनोऽतिवमनं क्लमशूलमाहः  
 श्वासेन गुल्ममिति लक्षणमेव विद्धि ॥

यस्यैतानि च लिङ्गानि गुल्मिनं तं विदुर्वेधाः ।  
 पञ्चधा सम्भवन्त्येते गुल्मा जठरसंस्थिताः ॥  
 हृत्कुक्षौ नाभिवस्तौ च मध्ये तु पञ्चमः स्मृतः ।  
 हृदयस्थो यकृन्नाम कुक्षौ मालसकोच्यते ॥  
 मध्ये प्लौहा समाख्यातो वस्तौ चण्डविवृद्धकः ।  
 नाभौ संलक्ष्यते ग्रन्थी नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥  
 अतः कापं प्रवक्ष्यामि येन कुर्वन्ति बाधकम् ।  
 स्वभावात् पित्तरक्तोत्थे सेवितान्मविदाहितम् ॥  
 उष्णञ्च क्षारमद्यं वा चोष्णपानातिसेवनात् ।  
 शोकात् अमादध्वयानात् शोषात् संक्षोभणादपि ॥  
 उच्चभाषणगानाच्च धनुर्ज्याकर्षणाच्च वै ।

पृष्ठे मुष्णाभिघाताच्च हृदये ताडनाच्च वा ॥  
 भारणोद्धारणाद्वापि रक्तं शोषयते हृदि ।  
 तेन गुल्मेति नाम स्याज्जायते रक्तपित्तकृम् ॥  
 कटाचिच्छिषु दोषेषु सम्भवस्यास्य दृश्यते ।  
 वातेनोदौरितं रक्तं कफेन च घनीकृतम् ॥  
 पित्तेन पाकतां प्राप्तं त्रिदोषसंश्रितं यकृतम् ।  
 लक्षणं तस्य वक्ष्यामि तेन तच्चापि लक्षयेत् ॥  
 क्षीयते तेन मनुजो मृत्युराशु प्रवर्तते ।  
 वमिः क्षमस्तथोद्गारो हृत्क्षामः श्वसनं भ्रमः ॥  
 दाहोऽरुचिस्तृषा मूर्च्छा कण्ठे दाहः शिरो व्यथा ।  
 हृच्छूलञ्च प्रतिश्यायः शीवनं कटुका सह ॥  
 सशल्यं हृदिशूलञ्च निद्रानाशः प्रलापतः ।  
 हृदये मन्यते जाड्यमुदरं गर्जते भृशम् ॥  
 एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाद् यकृतं कोष्ठान्तवक्षसि ।  
 यदि साक्षात्ततः कुर्युः कुष्ठं पञ्चमकं तथा ॥  
 ण्ठौ च मिन्धूल्यविमिश्रितञ्च सूक्ष्मञ्च चूर्णं सह रामठेन ।  
 काथ्य तोयञ्च पिवेच्च वास्त्रं सौवीरकं वा विनिहन्ति शीघ्रम् ॥  
 कृतं विधानौदरशूलकामान् विसूचिकाजौर्णकफामयघ्नम् ।  
 गण्डामयार्तिग्रहणीं सगुल्माम् शृण्ण्यादिचूर्णं त्वरितं निहन्ति ॥  
 इति शृण्ण्यादिचूर्णम् ।

गारं मुष्कककिंशुकार्जुनधवापामार्गरम्भातिला  
 तौवन्ती कनकाह्वयं सरजनौ कूष्माण्डवल्ली तथा ।  
 साशूरणमेव तौव्रदहनं प्रज्वालय भस्मीकृतं  
 यिेन प्रतिसेव्य निम्बुतपयः पानं विधेयं यकृतम् ॥  
 लानाहविवन्धकान् कफभवान् रोगान् जयेत् कामलान्  
 द्रव्यादिकशूलपाण्डुग्रहणी शोफार्शसां पीनसाम् ।

मेदोऽग्नीनामजोर्णक्रिमिमलगुदभ्रंशकादीस्तु मेहान्  
शूलोद्गारप्रभवसकलभ्रान्तिरोगान्निहन्ति ॥

पूयाभः पतते श्लेष्मा पूतिगन्धोऽतिविस्त्रकः ।

रक्ताभस्तत्र सङ्काशः श्लोवते च मुहुर्मुहुः ॥

तथातिसार्थ्यते रक्तं श्रमः संक्षीयते वपुः ।

क्षतजाः समदाः गात्रे यक्ष्णक्षसि संश्रिताः ॥

श्वासस्तृषा वमिर्मोहः शोफः स्यात् करपादयोः ।

रुचिबन्धोऽतिमारश्च यक्ष्णदूरे परित्यजेत् ॥

अतो वक्ष्यामि भैषज्येन सम्यद्यतं सुखम् ।

तस्यादौ लङ्घनञ्चैकं पाचनं तदनन्तरम् ॥

शण्ठोपकुल्यामरिचं शठोनां यमानिकाभीरु हरीतकीनाम्  
क्वाथोऽथवा कल्कमपि प्रशस्तमानाहगुल्मार्त्तिविसूचिकानाम्  
भद्रोपकुल्याभयशृङ्गवेर पथ्या त्रिभागा च कणाचतुर्थः ॥

क्षतक्षयं यक्ष्णत् पूर्वं चोषवासञ्च पाचनम् ।

न देयं हिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं क्वापि तदातुरे ॥

निखनीपधरचेतसं निशाकाश्मरी च तुलसी च भिंहिका ।

क्वाथ एव हृदयामयापहः आशु शूलयक्ष्णतश्च नाशकः ।

सौराष्ट्रिकामोसमक्षौपधानि दुर्गन्धभाजातिप्रवालकञ्च ।

दार्वी यवानौककुभं समङ्गा क्वाथः सर्मार्षिकदाशु हन्ति ॥

इति यक्ष्णचिकित्साः ।

श्रमातुरेण पानीयं पीत्वा वेगातिधावनम् ।

धावते वा पिबेत्तोयं भुञ्जते वातिदाहिकम् ॥

तथा पापाश्वना वाथ दुर्गन्धपलनेन च ।

अश्लीलानाम विख्याता गुल्मोद्धृमाश्रितेऽपि वा ॥

तेन हृत्तासशूलं वा रोधो ध्वान्तञ्च वेपथुः ।

तृष्णातिसारवमनं गात्राणां दाहमेव च ॥



एतैर्लिङ्गैः समायुक्तं जानीयाद् गुल्मपौडितम् ।

तस्मादस्य प्रतीकारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ॥

पथ्या समङ्गा कलसीविषा च महौषधं चातिविषा सुराह्वः ।

जलेन निःक्वाथ्य च तस्य पानं गुल्मामयानां प्रतिपाचनञ्च ॥

क्षारं पलाशार्जुनशूरणस्य तथैव सर्वस्य रसेन मिश्रम् ।

सौवर्चलं मिन्धुभवद्रवञ्च सामुद्रिकेणापि विमिश्रयेत्तु ॥

तोयं परिस्त्राव्य विधानतोऽपि युक्तं तथेमानि महौषधानि ।

पथ्याग्निशुण्ठीरजनी सुराह्वा कुष्ठं विशाला च यवानिका च ॥

तथाजमोदामहजोरकं द्वे षड्ग्रन्थिहिङ्गुप्रयुतञ्च चूर्णम् ।

क्षारोदकेनाथ विमिश्रपानं निहन्ति सर्वाण्यपि कोष्ठजानि ॥

गुल्मानि सर्वाणि विमूर्चिकानां मन्दाग्निशूलामयकान्निहन्ति ।

इति श्रीमहर्ष्याय्यस्य भाषिते हार्योततर्कौय तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा

नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

क्रिमयो द्विविधाः प्राक्ता बाह्याभ्यन्तरसम्भवाः ।

बाह्या यूकाः प्रमिद्धाः स्युः किञ्चुल्लूकास्तथान्तराः ॥

सप्तधा हि भवेद्बाह्याः षड्धाचान्तः समुद्भवाः ।

तेषां वक्ष्यामि संभूतिं बाह्या नाभ्यन्तरे नृणाम् ॥

रूक्षादतिबलात् स्वेदाच्चिन्तया शोचनादपि ।

कफधातुसमुद्भूतास्तौक्ष्णा यूका भवन्ति हि ॥

यूकाः कृष्णाः पराः श्वेतास्तृतीया चर्मणि स्थिता ।

सूक्ष्मातिविकटा रूक्षाश्चर्मभाश्चर्मयूकिकाः ॥

चतुर्थी विन्दुकी नाम वर्तुला मूत्रसम्भवा ।

सत्कुणाद्याश्च पञ्चम्यो बाह्योपद्रवकारिणः ॥

यूका मस्तकसंस्थाने श्वेता वस्त्रनिवासिनो ।

चर्मयूका नेत्रचर्मं सूक्ष्मं रोमणि यष्टिका ।  
 उष्णद्रव्यनिषेवाच्च अजीर्णं मधुरद्रवात् ॥  
 रुक्षान्न गोधूमयवान्न पिष्टैर्गुडैश्च वा क्षीरविपर्ययेण ।  
 दिवाशयानेन सपिच्छलेन घर्मण पापोढकसंवनन ।  
 सञ्जायते तेन मलाशयेषु कृमिव्रजं कोष्ठविकारकारि ॥  
 षड्विधास्ते समुद्दिष्टास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।  
 कफकोष्ठं मलाधारं कोष्ठं सर्पन्ति सर्पवत् ॥  
 पृथुमुण्डा भवत्येकं केचित् किञ्च, कर्तान्निभाः ।  
 धान्याङ्कुरानिभाः केचित् केचित् सूक्ष्मास्त्राणवः ॥  
 सूक्ष्ममुखाः परिज्ञेयाश्चान्ध्याणि मीढयान्ति ते ।  
 वक्ष्यामि लक्षणं तेषां विचिकित्साञ्च शृणुष्व मे ॥  
 ज्वरो हृद्रोगशूलं वा वर्गमहत् होदन भ्रमः ।  
 रुचिग्रन्थो विवर्णत्वमांतसारः सकिंशिलाः ॥  
 गर्जन जठरं चैव मन्दारिज्यत्वं च जायते ।  
 पिपासा पीतता नेत्रे किञ्च, प्रोडितस्य च ॥

इति समुपदलक्षणम् ।

सूक्ष्मवत्तदन्तःस्थानि रक्तं चैवातिमार्यते ।  
 यत्कदा भक्षयन्त्यन्यं रक्तं वा यमते भ्रमम् ॥  
 क्लेदो मुखेऽरुचिर्जीर्णं मन्दारिज्यत्वं च वैपथ्यः ।  
 क्षुत्तृष्णा च ज्वरो ज्ञयाः सूक्ष्ममुखकर्मोत्तमम् ॥

इति सूक्ष्ममुखलक्षणम् ।

ये च धान्याङ्कुरास्तं पा वक्ष्याम्यथ च लक्षणम् ।  
 मलाशयस्थाः क्लमयो मलं जग्धन्ति ते भ्रमम् ॥  
 तैस्तु संपीड्यते देहो विड् विभेदं परुषता ।  
 कृशत्वञ्चापि हृत्क्लेदं क्लमयो जनयन्ति ते ॥  
 हारीतः संशयापन्नः पादौ संगृह्य पृच्छति ।

कथं देहे मनुष्यस्य मलमूत्ररसाशये ॥  
 सभवन्ति कथञ्चादौ वर्धयन्ति कथं पुनः ।  
 कथं च शौर्णेऽन्नरसे नानाहारविभक्षणं ॥  
 जायन्ते केन क्लमयः सूक्ष्माधोगामिनाऽप्यथ ।  
 नानामपक्वभक्ष्यान्नं दहते द्वा हुताशनः ॥  
 कथं ते क्रिमयश्चान्ते न दहन्तेऽन्तराग्निना ।  
 एवं पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥

आर्य उवाच ।

शृणु पुत्र ! महाबाहो ! क्रिमिसम्भवकारणम् ।  
 विरुडान्नरसेः पुत्र ! रक्तञ्चेवास्य कुप्यति ॥  
 कफेनैकदिनं याति शक्रेण कारणं व्रजेत् ।  
 पञ्चभूतात्मके वायौ ते तु जाताः सचेतनाः ॥  
 कोष्ठाल्पिना न दहन्ते न जीर्यन्ते रसानिति ।  
 विषे जाता यथा कोटो न विषेण सृति व्रजेत् ॥  
 तथा हुताशनोद्धत न हुताग्नेन जीर्यति ।  
 भक्षजं सम्प्रवक्ष्यामि येन तेऽपि तरान्तं वै ॥  
 पतन्ति वा शमं यान्ति भक्षजानि शृणु मे ।  
 वचाजसोदाकृमिजित् पलाशवोजं शटो रामठकं त्रिवृक्षं ।  
 उष्णोदकं तत्परिपिष्य पेयं पतन्ति शौघं शतधा तु कोटाः ॥  
 शठौयवानोपिचुमर्दपत्रान् विडङ्गकृष्णातिविषारक्षानम् ।  
 समिप्य मूत्रेण त्रिवृत्प्रयुक्तं विनाशनं सर्वकृमिरुजानाम् ॥  
 मरिचं पिप्पलीमूलं विडङ्गं शिग्रयवर्निका त्रिवृतः ।  
 गोमूत्रेण तु पेयं पानं शौघं क्लमोन् दन्ति ॥  
 मुस्ता विशाला त्रिफला सुपर्णा शिग्रुः सुराह्वं मलिलेन कल्कः ।  
 पानं सकृष्णाकृमिशतचूर्णं विनाशनं सर्वकृमोरुजाञ्च ॥  
 सुरमा च सुरदारु सागधोविडङ्गकृष्णविडङ्गदन्तो ।

त्रिवृद्रसोनं त्रिभिरेव ताडकं क्रिमिं निहन्यात् सलिलेन सेवित

मातुलुङ्गस्य मूलानि रसोनं क्रिमिजिच्छिवत् ।

अजसोदानिस्त्रपत्रं गोमूत्रेण तु पेषयेत् ॥

पानमेतत् प्रशंसन्ति कृमिदोषनिवारणम् ।

ज्वरप्रोक्तानि पथ्यानि कृमिदोषे प्रदप्ययेत् ॥

इति कृमिचिकित्सा

इति श्रीमहर्ष्यविरचितायां हारितोत्तरीयं कृमिचिकित्सा नाम

पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो मन्दार्गिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

आत्रेय उवाच ।

अग्निश्चतुर्विधः प्रोक्तः समो विषमतीक्ष्णकः ।

मन्दस्तटापरः प्रोक्तः शृणु चिह्नानि साम्प्रतम् ॥

वातपित्तकफे साम्यात् समः सञ्जायतेऽनलः ।

तैरेव विषमं प्राप्तं विषमो जायतेऽनलः ॥

तीक्ष्णः पित्ताधिकत्वेन जायते जठराग्निकः ।

वातश्लेष्माधिकत्वेन जायते मन्दमंजकः ॥

यद्भुक्तं प्रकृतिस्थन्तु पाचयत्यपि चानलः ।

स समो नाम निर्दोषः सर्वधातुविवर्द्धनः ॥

किञ्चित् पाचयते भक्ष्यं कदाचिदविपक्वकः ।

वातेन वा तु विषमं करोत्यपि विसूचिकाम् ॥

प्रकृत्याधिकमश्नाति तृप्तिं न लभतेऽपि च ।

सदाहपीतता नेत्रे तीक्ष्णो वै क्षयकृत् वले ॥

यद्भुक्तञ्चैव शक्नोति यत्तु श्लेष्मवलाधिकात् ।

सोऽपि मन्दानलो नाम गुल्मोदरपरो मतः ॥

समेन समता देहं देहधातुवलेन्द्रियैः ।  
हृष्टः सम्पूर्णगात्रस्तु सचेष्टो वर्तते नरः ॥  
विषमं वानिलाद्याश्च ग्रहणी चातिमारकाः ।  
प्लौहा गुल्मो विसूची च शूलोदावर्त्तमञ्जकः ॥  
आनाहो मन्दचेष्टत्वं जायते विषमाग्निना ।  
कफवातावुभौ क्षौणी तीव्रो भवति पित्तकः ॥  
भोजनं लभते प्रीतिं भुक्त्वा चैव च जोर्यते ।  
तेन भस्मकमञ्जस्तु जायते जठरानलः ॥  
पाण्डुः पित्तातिसारस्तु राजयक्ष्मा हलीमकः ।  
भ्रमः क्लमोऽतिवैकल्यं यक्ष्णद् वापि प्रमेहकाः ॥  
शूलमूर्च्छा रक्तपित्तं पित्ताम्लं सूत्रकृच्छ्रकम् ।  
तेन सङ्क्षीयते गात्रं जायतेऽन्नस्य लील्यता ॥  
भक्षिताः काष्ठपाषाणा जोर्यन्ते तस्य देहिनः ।  
इति प्रोक्तं निदानञ्च नरस्याग्निप्रकोपनम् ॥  
बहुधापि न वोक्तन्तु ग्रन्थविस्तारशङ्कया ।  
अतो वक्ष्ये समामेन भेषजानि पृथक् पृथक् ॥  
पाचनं शमनञ्चैव दीपनञ्च तथोपरि ।

रास्ना शठी प्रतिविषा सुरमा च शुण्ठी  
सिन्धूर्यहिङ्ग, मगधा च सुवर्चलञ्च ।  
चूर्णं कृतं मगुडमोदकभक्ष्यमाणं  
वातात्मकन्तु विषमाग्निसमौकरोति ॥  
शूलानजौर्णविषमाग्निविसूचिकासु  
वातादयः सकलगुल्मविनाशनं स्यात् ।  
भुक्तोपरि कथितमेव पिवेत् सुखोष्ण  
अंष्ट्रं तथोपरि समस्तरमानुभोज्यम् ॥

इति विषमाग्निचिकित्सा ।

द्राक्षाभयातिक्तकरोहिणी च विदारिकाचन्दनवामकञ्च ।  
 मुस्तापटोलञ्च किरातकानां कृष्णावलायाश्चविकाविपाणाम् ॥  
 पलालवङ्गानलपद्मकञ्च योज्या च शृङ्गी धनिका समांशा ।  
 चूर्णं सखर्जूरमिताममेतं घृतेन तं चार्द्धपलप्रमाणम् ॥  
 भजेत् प्रभाते मनुजेन दुग्धं निःकाश्य पानं मष्टतं विधेयम् ।  
 करोति तीव्राग्निसमं प्रकुष्टं कृशस्य पृष्टि तनुतेऽपि नृनम् ॥  
 क्लमभ्रमं शोषविनाशनं स्यात् तृष्णातिलोल्यस्य शमं करोति ।  
 मरक्तपित्तं क्षयप्राण्डरोगं हलीमक कामलकमाशु नश्येत् ॥

तण्डुलारक्तशालीनां द्विभागन च धौमताम ।

भृष्टा तिलांश्च संकुट्य तदर्धेन विमिश्रितान् ॥

भृष्टा तत्सममुद्गांश्च चैकोक्तत्वा तु साधयेत् ।

मिडाञ्च कृशरां सम्यग घृतेन सह भोजयेत् ॥

एकाहान्तरितो यस्तु तीव्राग्निस्तस्य नश्यति ॥

इति तीव्राग्निचिकित्सा ।

इति श्रीमहर्ष्यविरचिते हारीतौत्तरीये सन्दाग्नि-

चिकित्सितं नाम पष्ठोऽध्यायः ।

### सप्तमोऽध्यायः ।

हरीतकी हरिहरतुल्य षड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विंशालपिप्पली ।  
 हुताशनं हिङ्गु, सैन्धवसंयुतं रसायनं हेमनृपवह्निदीपनम् ॥

इति हरीतकीदि ।

हिङ्गु, च पिप्पली सनागरवचा सदीप्यकाग्निश्चेतकीविडङ्गी ।  
 भागवृद्धितदनियोज्य चूर्णितं चौद्रं तथा च लवणत्रयैर्युतम् ।  
 पीतं सुरयापि च काञ्जिकेन समस्तु नोष्णमलिलेन वा पुनः ।  
 मल्लोहशूलं गुदजं विबन्धकमरोचकं हन्यपि सुचिराद्भूतम् ॥  
 यमानौ तिन्तिडिकनागरञ्च सदाडिममम्लवेतसकीलम् ।

प्रमानि चेमानिच कर्षमात्रं कर्पाहिभागेष्वितरे वलानि ॥  
 धन्याजाजीमृङ्गसुवर्चलञ्च कणाशतैकं मरिचं शतद्वयम् ।  
 प्रलानि चत्वार्यपि शर्करायाः समं विचूर्ण्याथोदरान् प्रमार्ष्टि ॥  
 मत्तेद् यदेदं रुचिकृद् विबन्धं सप्लीहगुल्मं जयते सशूलम् ।  
 खासं विनश्येद् हृदयामयघ्नं सजिह्वकण्ठामयशोधनं स्यात् ॥  
 कामग्रहण्यर्शविकारमन्दानलस्य सन्दौपनमेव चूर्णम् ।  
 प्रवानिषाडविकाभिधानमरोचकानां शमनं प्रशस्तम् ॥

इति यवानीषाडवं चूर्णम् ।

यवागूः पञ्चकोलस्य कुलत्थपाडक्ययूषकम् ।  
 मुद्गयपेण वा शस्यक् भक्तानां भोजन हितम् ॥  
 मर्हिङ्गं तृपण्णाव्यञ्च व्यञ्जनं संप्रशस्यते ।  
 प्रशस्तिघृतवत् श्रेष्ठं भोजनारोचकैष्वपि ॥  
 कारवेत्त पटोलञ्च पलाण्डुः शूरणं शठौ ।  
 लवण धान्यकं श्रेष्ठं प्रलेहञ्च कटुत्रिकम् ॥  
 गठीमर्धपवास्तुक्रं शतपुष्पा यवानिका ।  
 तुण्डोरकस्य मूलानां शाकं श्रेष्ठं प्रशस्यते ॥  
 गोधूमपोलिका श्रेष्ठा भृङ्गाङ्गारैररोचके ।  
 जाङ्गलानि च मांसानि भोजयेद् भिषगुत्तमः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतीक्षरीये चरीचक-

चिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

### अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो शूलचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अनङ्गनाशाय हरस्त्रिशूलं सुमोच कोपान्मकरध्वजस्य ।  
 तमापतन्तं सहसा निरोक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुप्रविष्टः ।

प्रदीर्घं हुङ्कारविभीषितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः  
स पञ्चभूतानुगतं शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥

व्यायामपाननिशिजागरणव्यवाय-  
शोकातिभार गतिधारणकश्रमेण ।  
वैषम्यपानशयनेन च भोजनेन ,  
शीतेन वायुः कुपितः प्रकरोति शूलम् ॥  
विष्टम्भिरुक्ष यवमापकलायमुद्ग-  
निष्पावकत्रिपटकोद्रवका मसूरः ।  
गोधूमक्षुद्रकफरुक्षविभोजनेन  
चैतैश्च पानमलरोधनमूत्ररोधैः ॥  
वायुस्त्वधोगतप्रथं प्रविरुह्य मूलं  
वातात्मको भवति चान्तरवर्द्धमान्द्रम् ।  
तस्मादतिप्रवल्गता कुपितैः प्रकोष्ठे  
शूलं करोति गुदमार्गनिरोधितोऽपि ॥  
गात्रेऽपि तोदविरतिर्मलिनातिदीना  
वातार्त्तिपीडितनरस्य महामर्तः स्यात् ।

इति वातशूलोत्पत्तिः ।

क्रोधातपादनलसेवनहेतुना च  
शोकाङ्गयार्त्तिगतिधावन घर्मरोधात् ।  
क्षारास्त्रमद्यकटुकोष्णविदाहिरुक्ष-  
मौवीर शुष्कपललेन च राजिकाभिः ॥  
संकुप्यतेऽनिलसमे च तमेव पित्तं  
शूलं करोति जठरे मनुजस्य तीव्रम् ।  
तेनाङ्गदाहारतिघर्मलृषातिमूर्च्छा  
नाभ्यन्तरे दहति शोषसपीततास्ये ॥

इति पित्तशूललक्षणम् ।



अव्यायामेऽस्निग्धसंसेवनेन  
 गोल्याहारे चेक्षुतैलैः पयोभिः ।  
 अन्नाहारे निद्रया सेवनैस्तु  
 शतैरेतैः कोपयेच्छुं शकस्तु ॥  
 माषातिशयेतलपयोदधिभिः सुशीतै-  
 र्मत्स्यैस्त्वनूनपल्लै रतिसेवितैस्तु ।  
 श्लेष्मा भृशं शमयतेऽनलमाशु शूलम्  
 कोष्ठे करोति मनुजस्य विकारमुग्रम् ॥  
 हृत्लासकासवमिजाद्यशिरोगुरुत्वं  
 स्तमित्यशीतलतनुं रुचिवन्धनञ्च ।  
 भुक्तप्रसेकमधुरास्य मथाभिरामं  
 स्निग्धं सुखं भवति यस्य कफात्मकोऽसौ ॥

श्लेष्मा भवत्येव भवन्ति यस्य विज्ञानि वै तस्य भवेच्च शूलः ।  
 सपित्तिकानोव भवन्ति यस्य तमाहुरेकंऽपि नरस्य शूलम् ॥  
 हृत्कण्ठपार्श्वे कफपित्तिकस्तु हृन्नाभिमध्ये कफपित्तशूलः ।  
 अस्तौ च नाभौ दधतः प्रदंशे विलोलमानः स तु वातपित्तान् ॥

एकोऽपि सुखसाध्योऽसौ द्वन्द्वः कष्टेन सिध्यति ।

त्रिदोषजस्त्वसाध्यस्तु बह्वपद्रवसंयुतः ॥

निदानैः कुपितो वायुर्वर्तते जठरान्तरे ।

तेनेति संज्ञा दश स्युः शूलस्य परिगोयते ॥

त्रयो वातादिका ज्ञेया द्वन्द्वजास्तु पुनस्त्रयः ।

सामो निरामको द्वौ च शूलाद्याष्टौ द्वे स्मृताः ॥

अजीर्णान्नवमः प्रोक्तो दशमः परिणामजः ।

एवं दशप्रकारेण शूलं सम्भवते नृणाम् ॥

भुक्तोपरि भवेद्यस्तु सोऽपि ज्ञेयः कफात्मकः ।

जीर्णेऽन्ने च भवेद्यस्तु स ज्ञेयः परिणामजः ॥

आधानमूर्ध्वं च विवर्धनञ्च जृम्भा तथा वेपथु मार्जनञ्च ।  
 उद्दीरणं स्निग्धमुखातिजिह्वा वातेन शूलं भजते विधिज्ञः ॥  
 दाहो रतिर्मोहितमोऽपि तृणा कृच्छ्रेण मूत्रं कटुकास्यता च ।  
 खंदातिशोषो वदनञ्च पीतं पित्तात्मकोऽसौ प्रवदन्ति धीराः ॥  
 कृदिस्तथा कासबलासमोह आलस्यतन्द्राजडतातिशैत्यम् ।  
 कफात्मकं तं भिषजां वरिष्ठं शूलं भवेद्द्वन्द्वजरोगसंज्ञम् ।  
 त्रिभिस्तु दोषैस्तु त्रिदोषजः स्यात् रक्तेन चैकादशमः प्रदिष्टः ।  
 पित्तात्मकानि प्रभवन्ति यस्य चिह्नानि यस्यामृगकृदजञ्च ।  
 शोषस्तृपादाहतमोऽपि कासश्वासन रक्तप्रभवोऽतिशूलः ॥

विना वातेन नो शूलं विना पित्तेन नो भ्रमः ।

न कफेन विना कृदिन रक्तेन विना तमः ॥

इति शूलपरिज्ञानम् ॥

इति शूलपरिज्ञानमती वक्ष्यामि भेषजम् ।

येन शूलान्तिशमनं शूलो सम्पद्यते सुखम् ॥

दृष्ट्वा शूलं लङ्घनं पाचनञ्च विरचनं वान्तिरथापि स्वतः ।  
 क्षार चूर्णं वर्जयेच्छूलशान्त्यै पानाभ्यङ्गात् कामते वै मन्यथाः  
 हिङ्गुनागरशठीसुवर्चलं दारुपौष्करघनापुनर्नवा ।  
 काथपानमिति शूलिना हितं पाचनं जठरगुल्मिनामपि ।  
 हिङ्गुपौष्करशठीसुवर्चलं काथपानमपि शूलिनां हितम् ।  
 वातशूलशमनाय शस्यते पाचनं निगदितञ्च वर्तते ॥  
 सिन्धुत्यहिङ्गु रुचकं शठी यवानौ पथ्यायवक्षारसमं विचूर्णयेत् ।  
 देयं सुखोष्णं न निहन्ति शूलं वातात्मकं वाप्यचिरेण शूलम् ॥

हिङ्गु, मौवर्चलं पथ्या यवानौ सपुनर्नवा ।

वालैरण्डो बृहत्यौ वै तुवरं व्योषमन्वितम् ॥

क्षारसौवर्चलोपेतं काथो वा चूर्णितं तथा ।

सद्यो वातात्मकं शूलं हन्ति सद्यो विसृचिकाम् ॥

तुम्बुरुपौष्कराहिङ्ग, यवानीव्योषं च वा बृहतीत्रिगुणेन ।

युक्तमिदं लवणाष्टकचूर्णं भवति शूलनिवारणक्षमम् ॥

काथो निहन्ति मरुतोद्भवशूलमङ्गान्

परगुडनागरसुवर्चलरामठेन ।

पथ्या वचेन्द्रयवनागरतोययुक्तं

हिङ्गुः सुवर्चलयुतञ्च निहन्ति शूलम् ॥

हिङ्गुनागरषड्ग्रथा यवानी चाभया त्रिवृत् ।

विडङ्गं दारु चव्यञ्च तुम्बुरुं कुष्ठमुस्तकम् ॥

हवपाकलसी राम्ना वत्सका मदुरालभा ।

गतावरी बृहत्थी च त्वर्गला पञ्चजौरकम् ॥

पुष्करं तिन्तीडिकञ्च वृक्षाम्नं चाम्बवेतसम् ।

ह्रीं चारौ पञ्चलवणं समञ्चैकत्र मिश्रयेत् ॥

मन्त्रेण भावनाञ्चैकां दत्त्वा क्वायाविशोषितम् ।

वौजपुरकतोयेन भावयेच्च दिनत्रयम् ॥

विडालपट्टिकामात्रां युञ्जोत शूलशान्तये ।

त्राते चोष्णोदकेनापि पित्ते शर्करयान्वितः ॥

मद्येन फिफलाकाथः श्लेष्मरोगे प्रशस्यते ।

शूलानाहविवन्धानां मन्दाग्नां गुल्मविद्रधी ॥

प्रौहोदराणाञ्च पाण्डुज्वरिणां च विशेषतः ।

निहन्ति देहसङ्घातं मेघवृन्दं मरुदु यथा ॥

बृहत् हिङ्गुचूर्णम् ।

इति वातशूलचिकित्सा ।

धात्रीफलं लोहरजश्च पथ्या व्योषं समांशेन विभाव्य तत्तु ।

रसेन वा दाडिममातुलुङ्गाश्चूर्णं सिताव्यञ्च सपित्तशूले ॥

विडालकं दाडिमपूतना च धात्रीसमेतं विदधीत चूर्णम् ।

तस्मात्तुलुङ्गस्य रसेन भावितं सपित्तशूलस्य शमाय भजेत् ॥

जीवन्यायं घृतं पाने क्षीरं वापि मितान्वितम् ।  
 नित्यं विरेचनं कार्यं पित्तशूलनिवारणम् ॥  
 शिशिरमरमि तोये गाहनं चन्दनानि  
 विशदपुटितमध्ये शायनं वै निशासु ।  
 कनकरजतकांस्याभोज हैमं दुषारं  
 कृतमिति विधिना वै पैत्तिके शूलहेतोः ।  
 मितशाल्योद्भवा लाजाः मितामधुयुतं पयः ।  
 दाहं पित्तज्वरं कृदिं सद्यः शूलं निहन्ति च ॥  
 जाङ्गलानि च मांसानि भोजनार्थं प्रशस्यते ।  
 घृतं क्षीरं समधुरं प्रशस्तं पित्तशूलिनाम् ॥

इति पित्तशूलचिकित्सा ।

लङ्घनं वमनञ्चैव पाचनं श्लेष्मशूलिनाम् ।  
 लवणातिमधुराणि शयनञ्च विधेयकम् ॥  
 विल्वान्निमग्नवृषचित्रकनागराश्च  
 एरण्ड हिङ्गुमह सैन्धवकं समांशम् ।  
 काथो निहन्ति कफजोद्भवशूलमेव  
 सद्यो निहन्ति जठरानलवर्द्धनञ्च ॥  
 मातुलुङ्गरसं धात्रीरसं सैन्धवसंयुतम् ।  
 शोभाञ्जनकमूलस्य रसञ्च मरिचान्वितम् ॥  
 सक्षारमधुनोपेतं श्लेष्मशूलनिवारणम् ।  
 क्षतक्षयोद्भवं कासं नाशयत्याश्वसंशयम् ॥  
 तुम्बुकं ग्रन्थिकैरण्डव्योषं पथ्याजमोदकम् ।  
 सक्षारलवणोपेतं चूर्णं शूले कफात्मके ॥  
 एरण्डविल्ववृहतीद्वयमातुलुङ्गं  
 पाषाणभित् त्रिकटुमूलकतः कषायः ॥

सक्षारहिङ्गुलवणोरुवुतैलमिश्रं  
श्रोण्यंसमेद्रहृदयस्तनकुक्षिदेयम् ॥

शतं श्लेष्मशूलचिकित्सा ।

पटोलारिष्टपत्राणि त्रिफलामंयुतानि च ।  
काथं मधुयुतं पानं शूले पैत्ति समीरणे ।  
पित्तज्वरहृषादाहरक्तपित्तनिवारणम् ॥  
दुरालभा पर्पटकञ्च विश्वा पटोलनिस्वास्वदतिन्तिडीकम् ।  
पशर्करं कल्कमिदं प्रयोज्यं सपित्तवातोद्भवशूलशान्त्यै ॥

शतं वातपित्तशूलचिकित्सा ।

सौवर्चलं समशठी सदनाशरा च  
गुण्ठीयुतेन कथितेन जलेन चूर्णम् ।  
पीतं निहन्ति मरुता पुत-क्षौद्रिकाणां  
पाथ्येऽतिशूलजठरानलहृत् प्रशस्तम् ॥  
शरु नागरकं वासाहिङ्गु, सौवर्चलाजितम् ।  
काथो वातकफं शूले चामेऽजोर्णं विजस्यते ॥

शतं वातपित्तशूलचिकित्सा ।

पलाशकदलीवामापासागैकोकिलाह्वयम् ।  
गोमूत्रेण श्रितं तत्तु हिङ्गुनागरसंयुतम् ॥  
हितं त्रिदोषजे शूले कामला विङ्गुविवन्धके ।  
गुल्मीदराणां शमनं मन्दाग्नीनां निघञ्जाति ॥  
गङ्गाक्षारञ्च लवणं हिङ्गु व्योषसमन्वितम् ।  
उष्णोदकेन तत् पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥

शतं त्रिदोषजशूलचिकित्सा ।

लङ्घनं वमनञ्चैव विरेकशानुवामनम् ।  
तक्रुहो वस्त्रिकर्माणि परिणामं त्रिदोषजे ॥

चित्रकं त्रिवृता दन्ती विडङ्गं कटुकत्रयम् ।  
 समं चूर्णं गुडेनाथ कारयेन्मोदकान् सुधीः ॥  
 भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पश्चादुष्णोदकं पिवेत् ।  
 परिणामोद्भवं शूलं हन्ति शीघ्रं नरस्य च ॥  
 यवानो हिङ्गुमिन्धूत्यक्षारं, सौवर्चलाभया ।  
 सुरामण्डेन पातव्या परिणामे त्रिदोषजे ॥  
 हिङ्गुव्योषवचाजमोदहबुधा पथ्या यवानो शठी  
 जातीपिप्पलिमूलदाडिमवृको चव्याग्निकं तिल्लिङ्गो  
 तस्मादस्त्र सुवर्चला च यवकक्षारं तथा मर्जिका  
 मिन्धूत्यं विडचूर्णकं समकृतं स्याद्बीजपुरं रमे ॥  
 संभाव्यं सुकृतात्वेन गुडिका चाक्षप्रमाणा तथा  
 कल्को वातविकारिणां प्रददतः शूलार्शसः प्लीहकान् ।  
 कामानाहविबन्धमहहृदये शूलं निहन्त्याशु ये ।  
 एष हिङ्गादिको नाम सर्वशूलार्तिनाशनः ॥  
 सर्ववातविकारघ्नः सर्वक्षयनिवारणः ।  
 परिणामोद्भवं शूलं वारयत्याख्यमंशयम् ॥  
 उदावर्त्तं त्रिदोषोत्थं सर्वातिसारवारणम् ।  
 अतिसारस्तृषा सूच्छा त्वानाहो गौरवारुचि  
 श्लामकामौ वभिर्हिक्का शूलस्योपद्रवा दश ।  
 शूलस्योपद्रवं लक्ष्णां भिषक्दूरे परित्यजेत् ॥  
 क्रियानुपद्रवे प्रोक्ता भिषजा सिद्धिमिच्छता ।  
 वर्जयेदुद्विडलं शूली तथा सघनशीतलम् ॥  
 दधि पिच्छिलवस्तूनि दिवानिद्रां च वर्जयेत् ।  
 शालिषष्टिकमिन्धूत्यहिङ्गुसौवीरकं तथा ॥  
 मुरा वा गुडशुण्ठी वा पाने श्रेष्ठा भिषग्वर ॥  
 शतपुष्पा वास्तुकञ्च हितं प्रोक्तं प्रशस्यते ॥

एणतित्तिरिलावाश्च क्रीञ्चाः शशकसारसाः ।

एषां मांसानि शस्तानि कथितानि भिषग्वर ! ॥

इति श्रीमहर्ष्यविरचिते हारीतोत्तरीये शूलचिकित्सितं नाम

अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

श्राव्य उवाच ।

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि पाण्डुरोगं महागदम् ।

पञ्चैव पाण्डुरोगास्ते सम्भवन्तीह मानुषे ॥

वातिकः पित्तिकश्चैव श्लेष्मिकः सान्निपातिकः ।

पञ्चमां रुचणः प्रोक्तो वक्ष्ये चैषान्तु सम्भवम् ॥

दोर्धाध्वना पौडितो वा ज्वरेण रक्तस्रावैः पौडितो वा व्रणेन ।

चिन्तायासाद्रोधनाद्वै मनुष्ये चायं पाण्डुर्जायते संवते यः ॥

क्षारश्चाक्ष्ण कल्यमेरेयमेवा अव्यायामान्मथुनातिशयेन ।

निद्रानाशेनातिनिद्रा दिवापि योगेश्चेतैर्मृत्तिकाभक्षणेन ॥

अतिशियिलशरीरे रोगमन्यौडिते वा

लवणकटुकपायासेवनात् न मृद्धिः ।

अतिसुरतमजस्रं सेवनातिक्रमेण

नयति रुधिरशोषं तेन वै पाण्डुरोगम् ॥

तनाक्षकूटे श्वयथुः शरीरे पाण्डुत्वमायाति सपीतमूत्रः ।

निष्ठौवते त्वक् प्रविदीर्यते च सञ्जायते तस्य पुरःमराणि ॥

तोदः परुषत्वशिरोगुरुत्वं त्वङ्मृत्तनेत्रे नखकालिमा स्यात् ।

वातात्मकं तं मनुजस्य विद्धि लिङ्गैरुपेतोऽनिलपाण्डुरोगः ॥

ग्रामत्व-पीतत्व करोहि लोके विभर्त्ति शोषं कटुकास्यता च ।

मन्दज्वरो वै भृशशोषमोहः पीतच्छविः पीतभवो हि पाण्डुः ॥

तन्द्रालुता शोफकफेन युक्त आलस्यप्रस्नेदगुरुत्वमेव ।

सञ्जायते तस्य कफात्मकोऽसौ नरस्य पाण्डुत्वभवो विकारः ।

तन्द्रालस्यं श्वयथुवमथ कामहृत्ताशशोषा

विड्भेदः स्यात् परुषनयने सज्वरो वै क्षुधात्तः ।

मोहस्तृपाक्षममथ मनुजस्याशु पश्येत् सुदूरे

त्याज्यो वैद्यैर्निपुणमतिभिः सन्निपातोऽथ पाण्डुः ॥

मृत्तिकाभक्षणेनाथ शृणु पुत्र ! गदो महान् ।

पाण्डुरोगो गरिष्ठोऽपि भवेद्वातुक्षयङ्करः ॥

मृद्भक्षणाच्चैव मलं प्रकीर्य स्रोतांसि रुद्धन्ति च मृत्तिकायाः ।

तेनैव नासृक् परिवर्तयन्ति न तर्पयन्ते वपुषं रमेन ॥

क्षारात् कषायान्मधुरस्य पानात् स कोपयत्याशु नरस्य मृत्स्ना

श्लेष्मप्रकोपान्मधुरान्करोति मृत्स्ना न जग्धा हितकारिणी सा

विकृतिमुपगतास्ते आरुताद्यास्त्वयस्तु

बलवद्वनरुचीनां नाशयन्प्राशु दीपाः ।

भवति विकल्मशं पाण्डुरोगं शरीरे

भवति जठरपाण्डुरोग आशु प्रवीणः ॥

कामलात्वय गुदाक्षणा पुनः भेविता विकृता बले तयः ।

पिप्पली च पयसा युतं निशि लोहकिट्टसधुभयतं पिबेत् ॥

गोमूतमध्यं मतिमान् स्थापयेत् समराविकम् ।

तस्मात् चूर्णन्तु मधुना देयं पाण्डूामयापहम् ॥

तूपपणं त्रिफला मुस्ता विडङ्गं चित्तकं समम् ।

भागमेकं लोहचूर्णमिक्षुद्रावे विभावयेत् ॥

सप्ताहमथ लोहखलितं पुनरपि प्रवरं स्यात् ।

शौलितन्तु मधुनापि घृतेन पाण्डुरोगहृदयामयापहम् ।

कामलाशीहलीमकहारि कथितं सुमतिभिश्च पण्डितैः ॥

इति लोहचूर्णवटकम् ।

तूपपणं त्रिफलया सह चित्तकं मेघनव्यतुरादाक समाविकम् ।



ग्रन्थिकञ्च शिखिभृङ्गराजकं योजयेत् पलिकभागिकानिमान् ॥  
चूर्णिताद् द्विगुणमेव योजयेत् लौहचूर्णमपि कज्जलप्रभम् ।  
अष्टभागसममूत्रकल्पितं पाचितं पुनरथो वरप्रदम् ॥  
सेवयेत् वलमुमक्रमं तथा तक्रमयुतमिहास्ति शोभनम् ।  
नाशयेच्च कफकामलान् क्मौन् पाण्डु, कुष्ठगुदजान् हलीमकम्

इति मण्डुरवटकम् ।

पुनर्नवा व्योषत्रिवृत्सुराह्वयं निशाह्वयञ्चव्यफलत्रयं तथा ।  
घनायवातिक्तकरोहिणीसमा द्विभागिकं लोहरजो विमिश्रयेत् ॥  
गवां पयो वा द्विगुणं वियोज्यं दार्ढ्यां प्रलेपं विदधीत धीमान् ।  
क्वायाविशुष्का गुटिका विधेया क्षौद्रेण वा गोमथितेन भक्षयेत् ॥  
ज्ञात्वा वलं रोगवलं नरस्य पाण्डुसये कामलमवमेहे ।  
गुल्मोदराजौर्णविसूचिकानां शोथातिमारग्रहणीविवन्धान् ॥  
शूलक्रिमीनर्शविकारहेतोः सपञ्चकोलं त्रिफला घनञ्च ।  
देवदारुक्कमिश्रतुकोलकं ण्ष भागसहितो वियोजितः ॥  
मिश्रयेत् तदनु चायसं रजस्तत्र चाष्टगुणमूत्रमध्यतः ।  
पाचयेद्भवति यावदलेपिका कारयेद्दरमात्रया पुनः ॥  
क्वायया पिपितञ्च विशोषणं कारयेत् सुरभिमथितेन च ।  
पानकञ्च शमयेत् सकामलं पाण्डु, शोफमतिमारमद्भुतम् ॥  
शोषमेहमुरजान् क्रिमीनपि वातगुल्ममतिदारुणं तथा ।

इति वज्रमण्डुरवटकम् ।

धात्रीफलानां रसप्रस्तमेकं प्रस्थं तथा चेत्तुरसं विदध्यात् ।  
प्रस्थन्तु कूष्माण्डरसप्रदिष्टं चाकीं रसं प्रस्थविमिश्रमेकम् ॥  
एकीकृतं मन्दहुताशनेन पाच्यं भवेत् व्यापदशेषमेति ।  
विमिश्रयेदौषधसङ्घमेतत् पलैकमात्रं विपचेच्च पश्चात् ॥  
शृङ्गीसुराह्वं शतपुष्पधान्यं सुगन्धशुण्ठीमधुकं विशाला ।  
सपिप्पलीकं सकटुत्रयञ्च विडङ्गमुस्ताहवुषा पलानि ॥

दार्वाहरिद्राकटुरोहिणीनां दुरालभापौष्करवत्सकानाम् ।  
 कुष्ठाजमोदासुरमादलानि चूर्णं त्वमोषां विनियोजनीयम् ॥  
 गुडं पुराणं द्विगुणन्तु मध्ये घृतेन चैवं वटिकां विबन्धयेत् ।  
 भक्षणोज्जयति कामलार्शमं पाण्डुरोगमतिदारुणज्वरान् ।  
 शोथशोपग्रहणीं विजघ्नति वाक्तातिसारक्षयकामगुल्मान् ॥

इति अमृतवटक

गोधमशालियवषष्टिकमुद्गकानां  
 श्यामादृक्कौघृतयुतं सपयः सतक्रम् ।  
 गाण्डीववास्तूकमथो शतपुष्पवर्त्ता  
 पथ्यं हितं निगदितं मनुजस्य पाण्डौ ॥  
 शाल्यन्नमुद्गगोधूममसूराश्चादृक्कौ यवाः ।  
 जाङ्गलानि च मांसानि भोजने च प्रशस्यते ॥  
 तिक्तानि रुक्षाणि कषायकाणि  
 तीव्राणि दाहान्यपि काञ्चिकानि ।  
 सुरास्त्रमौवीरकबीजपूरान्  
 तैलानि वर्ज्यानि च पाण्डुरोगे ॥

इति श्रीमहर्षीवैद्यभाषिते हारौतसंहितया पाण्डुरोगचिकित्सा  
 नाम नवमोऽध्यायः ।

### दशमोऽध्यायः ।

अत्रेय उवाच ।

अथातः क्षयरीगघ्निकित्सं व्याख्यास्यामः ।

मृणुत गुणगरिष्ठ ! व्याधिघोरं नराणां  
 भवति रहितचेष्टो वातुलः प्राणिनां वै ।  
 चिरनिरयकरोऽयं प्राक्तनैः कर्मपाकै-  
 रिह परिभवकारी मानुषस्य क्षयोऽयम् ॥

देवानां प्रकरोति भङ्गमथवा भ्रूणस्य सम्पातनम् ।  
 गोपृथ्वीधरविप्रबालहननञ्चारामविध्वंसनम् ॥  
 योऽयं स्थानविनाशनञ्च कुरुते स्त्रीणां बध्नो नरः ।  
 तस्यैतैर्गुरुकर्मभिः क्षयगदो देहार्थहारी महान् ॥  
 देवानां दयतो धनञ्च दहतो भ्रूणप्रपातेऽपि च ।  
 देवत्वं हरतो विषञ्च ददत आरामकं निघ्नतः ॥  
 तेनासौ नियमेन सम्भवति वै नृणाञ्च तीव्रा रुजा ।  
 धातूनां क्षयकारिणी च मनुजस्यात्मापहा दारुणा ॥  
 क्षयां दशविधश्चैव विज्ञातव्यो भिषग्वरैः ।  
 आन्त्या भाराद् विषमशयनेर्दीर्घमार्गाक्रमैर्वा ॥  
 मुक्तेर्दीपादतिशयभुरतेः सेवनाहै नरश्च  
 अरुणातिक्रान्तो विषमशयनात् कूटनपरैः ।  
 जाता रागा मनुजवपुषः क्षीणतां संनयन्ति  
 रोगाक्रान्ता विषमशयनात्तस्य मन्दज्वराद्वा ॥  
 यस्मा पित्तं मरुदथ शनैर्याति देहक्षयं वा ।  
 रसरक्तमासमदश्वास्थि मज्जानि शुक्रतः ॥  
 एव दशविधा ज्ञेयाः क्षया नृणां वपुषु च ।  
 पुनश्च लक्षणान्त्वं प्रां वक्ष्यते शृणु साम्प्रतम् ॥  
 अतिस्वदादिघर्मण चिन्ताशोषभयादिना ।  
 पाताद्यैः सेवितैश्चापि जायते मारुतक्षयः ॥  
 तन तन्द्राङ्गदाहश्च पिपामारुचिविषयुः ।  
 तमः क्लृप्तो भ्रमश्चैव भवेच्च मारुतक्षये ॥  
 तस्मादिमानि सेव्यानि रसानि पललानि च ।  
 रसोनादिककल्कञ्च सेवयेद्वातवर्द्धनम् ॥  
 पित्तक्षयेऽग्निमान्यञ्च जायतेऽरुचिजाड्यता ।  
 कासहृत्तासशोफश्च जायते मन्दचेष्टता ॥

स्वेदाभ्यङ्गान्नपानानि दीपनानि प्रयोजयेत् ।

जाङ्गलानि रसान्नानि सेवयेत् पित्तकृत् क्षये ॥

व्यायामे च त्यवाये च रुक्षान्नाहारसेवनैः ।

सन्तापक्रोधनैश्चापि जायते कफसम्भवः ॥

तेन दाहोऽथवा पाण्डुः शोषो निःश्वसनभ्रमः ।

विनिद्रताक्षुत् तृषा च स्त्रीसङ्गेनाभिनन्दति ॥

तस्य शीतान्नपानानि कन्दशाकादिकैः रसैः ।

आन्पैर्दधिदुग्धैर्वा सेवनं न समीहितम् ॥

त्रिभिर्दोषैः क्षयं प्राप्तेस्तदा हि मरणं ध्रुवम् ।

तस्य क्रिया प्रयोक्तव्या साधारणा महामते ! ॥

अथ धातुक्षयं वक्ष्ये हारीत ! शृणु साम्प्रतम् ।

रसरक्तमांसमेदः प्रत्येकं क्षयलक्षणम् ॥

रसक्षयेऽतिशोषश्च मन्दाग्नित्वञ्च वेपथुः ।

शिरोरुक् मन्दचेष्टत्वं जायते च क्लमो भ्रमः ॥

रक्तक्षये क्षयः पाण्डुः मन्दचेष्टो भवेन्नरः ।

श्वामनिष्ठीवनं शोषो मन्दाग्नित्वं च जायते ॥

मांसक्षयेऽतिकृशता चेष्टनञ्चाङ्गभङ्गता ।

निद्रानाशोऽतिनिद्रास्य विसंज्ञा लघुविक्रमः ॥

मेदः क्षये मन्दवलो विसंज्ञता चाङ्गस्य भङ्गो वमनं परुषता ।

श्वामातिकासांऽरुचिताग्निमन्दता विशोषकम्प्योवपुषश्च शुष्कता

अस्थिक्षये स्यादतिमन्दचेष्टता मन्दञ्च वीर्यं खलु मेदमः क्षये

विसंज्ञता स्यात् कृशता च कम्पनं अङ्गस्य भङ्गो वमनं परुषता

शोषश्च देहे सदनञ्च शोफिता विकम्पनं शोषरुजा च जायते ।

भिषग्वरस्तत् परिवेद लक्षणं मज्जाक्षये कम्पनमेव जायते ॥

भ्रमः क्लमः स्यादतिमन्दचेष्टः शोफो निशाजागरणञ्च तन्द्रा ।

मन्दज्वरः शोषसमो मनुष्ये शुक्रक्षये चाल्पविचेष्टितानि ॥

रूक्षं भ्रमः कम्पनशोषरोषः स्त्रीर्दोषतादीनि विरूपता च ।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि भेषजानि यथाक्रमम् ।

स्नेहनं रूक्षणञ्चैव तथा विस्त्रापनं हितम् ॥

जाङ्गलानि च मांसानि भोजनानि च सेवयेत् ।

गुडुचौ शृङ्गवेरञ्च यवानौक्कथितं जलम् ॥

मरिचैः कथितं दग्धं पाने रात्रौ प्रशस्यते ।

रसानां तेन वृद्धिः स्यात् शोत्रं तस्माद् विमुच्यते ॥

रसानां वृद्धिकरणं गोधूमयवशालिभिः ।

कथितानि भिषक्श्रेष्ठैर्जाङ्गलानि विशेषतः ॥

वृत्तदग्धसिताक्षौद्रमरिचानि च पिप्पली ।

पानं शस्तं मनुष्याणां रक्तवृद्धिकरं परम् ॥

इति रक्तवृद्धिकरणम् ।

आनूपानि च धान्यानि लघुनामानि कल्पयेत् ।

जल्यांश्च वृत्तदग्धादीन् सेवयेन्मधुराणि च ॥

हिता रसा जाङ्गलाश्च सेवनार्थं भिषग्वर ! ।

सितापलादिकं चूर्णमजाक्षौद्रं सकौलकम् ।

हितं पानं क्षये चैव प्रकल्प्य प्रातराशने ॥

इति सेंदीर्घादिकरणम् ।

वृत्तानि च सुपक्वानि क्षीराणि विविधानि च ।

चन्दनानि च द्राक्षादिचूर्णानि च भिषग्वर ! ॥

जाङ्गलानि च सर्वाणि सेवनीयानि पुत्रक ! ।

अन्नानि मधुराण्येह सर्वाणि च प्रयोजयेत् ॥

इति अस्थिवृद्धिकरणम् ।

शुक्रक्षये प्रपाकानि रसानि च विशेषतः ।

नवनीतं तथा क्षीरं मधुराणि च सेवयेत् ॥

कर्कटीमूलपयसा विदारौ कन्दशाल्मली ।

सिताढ्यं च हितं पानं शस्यन्ते मधुराणि च ॥

इति शुक्रचयवृद्धिकरणम्

इदानीं चूर्णानि वक्ष्यन्ते ।

बलाविदारौ लघुपञ्चमूली क्षौरद्रुमत्वक् च ततः प्रयोज्या ।  
 पुनर्नवा मेघतुगारजन्यः सञ्जीवनोयैर्मधुकैः समांशैः ॥  
 अक्षप्रमाणानि समानि तानि सर्वाणि चैतान्यपि चूर्णयित्वा  
 विमिश्रयेत् तत्र कणाशतानि यवान्नगोधूमतिलांश्च पिष्ट्वा ॥  
 तुगासमांशं सिततण्डुलानां पेयं सुशृङ्गाटकमिश्रितन्तु ।  
 प्रकीर्णकार्द्वेन विद्योजनीयं समाशर्कनापि पिता प्रयोज्या ॥  
 विभावयेच्चामलकोरमेन दारद्वयं गोपसा विभाव्य ।  
 नर्ताऽस्य सर्वैः सह शर्कराया घृतेन चैवं पुनरेव भाव्यम् ॥  
 तं भक्षयेत् क्षौद्रयुतं पलाङ्गं जीर्णं च भाज्यं कटुकाम्लवर्ज्यम्  
 क्षौरं घृतं वा सितशर्करां वा यवान्नगोधूमकणानि भक्ष्यान् ।  
 ज्ञात्वाग्निपाकं जठरे नरस्य देयो विधिः । क्षयरोगशान्त्यै ॥  
 बलक्षये शान्तक्षिणभितापमपीडितानाञ्च तथा शिरोऽर्त्ताः ॥  
 पित्तातुराणां रुधिरक्षयाणां श्ममाध्वसंपीडितकामलानाम् ।  
 श्वासमातुराणां मधुसंहिताञ्च क्षीणान्द्रियाणां बलकारि शस्तम्  
 गर्भा गृहीता न यथा स्त्रिया च तस्याः प्रशस्तन्तु बलादिचूर्णम्

इति बलादिचूर्णम्

विष्वाग्निमन्यश्लोणाकाः काश्मरी पाटली तथा ।

शालिपर्णी पृथ्विपर्णी श्वदष्टा वृहतीदयम् ॥

शृङ्गौ शिवा ताम्रकी जयन्तौ पुष्का इदम् ।

द्राक्षाभयामृतामैटा चन्दनागुरुपद्मकम् ॥

बलाहयाम्नु कर्णं हं जीवकर्षभकावभौ ।

काकोली क्षौरकाकोली विदार्याः कन्दमांसकम् ॥

सर्वेषां पलिका मात्रा योजयेद्भिषजांवरः ।  
 धात्रौफलं पञ्चशतं सुपक्वसमंयुतम् ॥  
 जलद्वीणे विपक्वव्यं चतुर्भागावशेषितम् ।  
 तथा निर्वीष्य मतिभान् कल्कानि च समुद्धरेत् ॥  
 तत् काथं कल्कयत् तावत् यावद्वर्षप्रलेपकः ।  
 पुनस्तैलेन वाज्येन पक्त्वा चामलकोफलान् ॥  
 पाचितान् चूर्णितान् सर्वान् समशर्करया युतान् ।  
 चतुःपलतुगात्तोरैर्योजयेद्भिषजांवरः ॥  
 पप्यलीना सहस्रैकं त्वर्गलाघतकं तथा ।  
 ण्णां द्विपलिकां मात्रां विदध्यात् तु भिषग्वरः ॥  
 मर्षप्राक् कथिते लेहे योजयेच्च विचूर्णितम् ।  
 मादरेण सम लिह्यात् नराणाञ्च रमायनम् ॥  
 क्षयपाण्डु, श्वास काम-कामलानां विशोषणम् ।  
 क्षीणक्षतानां बालानां वृद्धानां देहवर्द्धनम् ॥  
 स्वरभङ्गपिपासानां हृद्रोगं पित्तशोणितम् ।  
 शुक्रदोषं गिरोगं पीनमञ्चापकर्षति ॥  
 जीर्णज्वरञ्च सन्दाग्निं कुष्ठं दृष्टं भगन्दरम् ।  
 मेहं कृच्छ्राश्लरीं हन्ति तथाऽरोचनवारणम् ॥  
 हृद्रोगं शूलमानाहं नाशयत्यप्यमंशयम् ।  
 बन्ध्यानां पुच्छजननं वृद्धानामल्परतसाम् ॥  
 षण्डोऽपि जायते चैव मदा धातुकरः परः ।  
 मेधास्मृती तथा तेजो वर्द्धयत्याशु निश्चितम् ॥  
 सोखामोभाग्यदर्शी च वृद्धोऽपि तरुणायते ।  
 क्षयरोगविनाशाय कथितञ्चात्रिणा महत् ॥  
 अवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयेण भाषितम् ।

इति अवनप्राशनी नामावलेहः ।

भार्गी पुष्करमूलचित्रककणामूलं गजाह्वा शठी  
 शङ्खाह्वा दशमूलचित्रकबला वामात्मगुप्तास्तथा ।  
 एतेषां द्विपलांशकौ सुभिषजा पक्ता तु पञ्चाढके  
 पथ्यानां शतकं विपाच्य बहुधा मन्दाग्निना तत् पुनः ॥  
 निर्वोष्यं पुनरव पूर्वमरमञ्चोद्भृत्य पथ्याशतं  
 संन्यस्य त्वतिशीले सुभवेन कायः प्रशस्तः पुनः ।  
 दत्त्वा जीर्णगुडस्य चैककुडवं क्षौद्रं घृतं तृलया  
 स्नेहस्यार्द्धमथाक्षकं मगधा योज्यं शतं पञ्चकम् ॥  
 चूर्णं तत्र निधापयेत् पुनरथो मङ्गष्ट्यदुच्चकं  
 पथ्ये च मधुना सहैव हितकृत् सर्वामयोच्छेदनः ।  
 पाण्डुः कामहलोमकं गुदरुजो हृद्रोगहिकाम्भमान्  
 हन्यात् पीनसमहपित्तरुधिरं कुष्ठं ग्रहस्याशयम् ॥  
 पुष्पञ्चैव तनोति शोफमरुचिं गुल्मातिराजक्षय  
 मेहानाहविवन्धरोगशमनं क्षीणेन्द्रियाणां हितम् ।  
 मन्दाग्नेः प्रशमं करोति वडवातुल्योऽरुचेर्बन्धको  
 नाशं वा विदधाति देहमुग्वदागस्यप्रणीताभया ॥

इत्यग्न्यहरीतकीपाकः ।

बलाह्वयं गोलुरकां बृहत्क्षौ निःकाष्य दग्धेन कणाममेतम् ।  
 पानं हितं स्यान्मधुना सिताब्जं विनाशनं कामलकं क्षयं वा ।  
 मेहस्य तृष्णामयनाशकारि क्षीणेन्द्रियाणां बलमातनोति ॥  
 पिप्पली वर्द्धमानं वा कारयेद् दग्धमर्पिषा ।  
 आद्यः पञ्च पुनः सप्त पुनरव नव क्रमात् ॥  
 एकादशस्तयोदशः पञ्चदशस्तथा सप्तदशः स्मृतः ।  
 एकोनविंशो द्वाविंशः पृथक् पृथक् यथाक्रमम् ॥  
 एवं क्रमेण त्रिद्विः स्यात् कारयेत् शतमात्रया ।  
 तत्क्रमेण पुनः पञ्चात् यावत् शेषञ्च पञ्चकम् ॥



भो जयेत् षष्टिकान्तु मुहसर्पिः समायुतम् ।

एवं बालश्च वृद्धश्च नरो नागबलो भवेत् ॥

पिप्पलीवर्द्धमानन्तु ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ।

मन्दाग्नौ पीतमेवाथ गुदजे वा तथा पुनः ॥

इति पिप्पलीवर्द्धमानसु ।

द्वे पले मार्कवं धातु साक्षकञ्च पुनर्नवा ।

तुगा पृक्का शालिपर्णी वासकञ्च दुरालभा ॥

चूर्णाद्धैन समं योज्यं त्रिगन्धं मरिचानि च ।

तालीशं मगधा चैव तद्वर्द्धन शिलोद्भवम् ॥

शिलाभेदं तद्वर्द्धन सर्वञ्चैकत्र मिश्रयेत् ।

भस्मन तिलचूर्णन्तु शर्कराभिः समायुतम् ॥

भक्षयेत् क्षीरपानं वा शस्यते घृतसंयुतम् ।

तेन क्षयो राजयक्ष्मा कामला च विनश्यति ॥

अपस्मारं जयत्याशु बलवीर्याधिको भवेत् ।

शास्यन्ति च महारोगाः शुक्राढ्यो जायते नरः ॥

इति शिलाजतचूर्णम् ।

जीवन्तिकावत्सकयष्टिकानां सपौष्करं गोक्षुरकं वले द्वे ।

नीलोत्पलं तामलकीयवासं सत्रायमाणा मगधा च कुष्ठम् ॥

द्राक्षासलक्या रसप्रस्थमेकं प्रस्थद्वयं क्वागलकं पयश्च ।

प्रस्थेन दध्ना विपचेद् घृतञ्च पाने प्रशस्तन्त्विदमेव भोज्ये ॥

नस्ये च वस्तावपि योजयेत् तत् विनाशमायात् सकलामयश्च ।

विनाशमेत्याशु च राजयक्ष्मा हलीमकः कामलपाण्डुरोगः ॥

मूर्च्छाभ्रमः कम्पशिरोऽर्त्तिशूलं महाश्मरी वा गुदकौलकुष्ठम् ।

शिरोगतो नाशमुपैति रोगः तस्य प्रदानेन वियोजितेन ॥

पानेन पाण्डुामयराजयक्ष्मा नाशं समायाति हलीमको वा ।

वास्तुप्रदानेन गुदोद्भवश्च रोगो विनाशं समुपैति पुंसाम् ॥

विसर्पविस्फोटकस्त्रक्षणेन नाशं नृणां यान्ति गदाः समस्ताः ।

इति जीवन्त्याद्यं घृतम्

कणा पलाशञ्च पचेत् समांशमाजं घृतं पञ्चगुणं पयश्च ।

पानेऽथवा भोजनके प्रशस्तं देयञ्च राजक्षयनाशहेतोः ॥

इति पिप्पल्याद्यं घृतम्

पञ्चकोलं यवाग्रञ्च क्षीरं दध्ना घृतं पुनः ।

समांशेन तु योज्यानि भार्गीकुष्ठन्तु पौष्करम् ॥

शतं तत्र हरीतक्या जले चैव चतुर्गुणे ।

क्वाथञ्चैकत्र सयाज्य क्वाथयन्मृदुर्वाङ्गना ॥

मृदुपाकं घृतं मिदं पाने नस्ये च वस्तिषु ।

गुणाधिक्यं भवेन्नृणां पाण्डुरोगं हलीमकं ।

राजयक्ष्माणि सन्तीणं शस्तं चोक्तं भिषग्वरैः ॥

इति पञ्चकोलाद्यं घृतम्

यष्टोत्रला गुडूची च पञ्चसूलं समांशकम् ।

क्वाथेन सदृशं धात्रीरसं चक्षुरसं तथा ॥

विदार्याश्च रसं चैव घृतञ्च समभागिकम् ।

क्षीरं दधिसमञ्चात्र नवनीतन्तु तत्समम् ॥

द्राक्षा तालीशमयुक्तं यथालाभेन योजयेत् ।

मिदं घृतं च पानाय नस्ये वस्ती प्रदापयेत् ॥

जयन्ति राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं सुदारुणम् ।

हलीमकञ्चाशसाञ्च रक्तपित्तनिवारणम् ।

लेपेन दुष्टवोसर्पं पित्तदुष्टव्रणापहम् ॥

इति पारासरं घृतम्

बलाश्वदंष्ट्रा वृहतीद्वयञ्च पर्णीद्वयं गाक्षुरकं स्थिरा च ।

पटोलनिम्बस्य दलानि मुस्तं सत्रायमाणा सदुरालभा च ॥

कृत्वा कषायञ्च पदावशेषं पूते ततश्चूर्णमिदं प्रयुञ्ज्यात् ।

द्राक्षा शठी पुष्करमूलधात्री दुग्धं समं तामलकी कषायम् ॥  
 सर्पिः प्रयुक्तं नवनौतकञ्च सर्पिस्तदङ्गेन वियोजनीयम् ।  
 सिद्धं घृतं पानमथैव वस्ती नस्य तथाभ्यञ्जनभोजने च ॥  
 सपाण्ड कामक्षयकामलानां राजक्षये क्षीणबलेन्द्रियाणाम् ।  
 क्षतेषु शोफेषु व्रणेषु शस्तं शिरोऽर्त्ति पार्श्वार्त्तिगुदामयघ्नम् ॥

इति बलाद्य तैलम् ।

चन्दनं सरलं दारु पथ्यैला बालकं शठी ।  
 नलशैलेयकं पृष्ठा पद्मकं नागकेशरम् ॥  
 कक्कोलकं सुरामांसौ शैलेयं द्वे हरीतकी ।  
 रणकात्वक् कुङ्कुमञ्च शारिवे द्वे निशा गुरु ॥  
 बला द्राक्षा च नलिका कषायं सुपरिस्मृतम् ।  
 तैलमस्तु तथा लाजा रसेन समभागिकम् ॥  
 मन्दाग्नीनां पचेत्तैलं सिद्धं पाने च वस्तिषु ।  
 नस्य चाभ्यञ्जने चैव योजयेत्तं भिषग्वरः ॥  
 हन्ति पाण्डुक्षयं कामं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ।  
 मन्दज्वरमपस्मारकुष्ठपामाहरं पुनः ॥  
 करोति बलपुष्ट्योजः प्रज्ञायुवलवद्धनम् ।  
 रूपसौभाग्यदं प्रोक्तं सर्वभूतयशस्करम् ॥

इति चन्दनाद्य तैलम् ।

इति क्षयरोगचिकित्सा ।

स्वामिभार्याभिगमनाद् गुरुपत्न्यभिलापणात् ।  
 राजस्वहमचौर्याद्वा राजयक्ष्मा भवेत् गदः ॥  
 अथवा दुष्टरोगेण जायते शृणु साम्प्रतम् ।  
 चतुर्भिर्हेतुभिर्यक्ष्मा जायते शृणु पुत्तक ! ॥

व्यायामयान-सुरता-गतिपीडिताङ्ग-  
 रोगेण वा व्रणनिपीडित-क्षीणदेहात् ।

क्रोधातिशोकविषमाशनकोपवासैः

सञ्जायते च मनुजस्य महागदोऽयम् ॥

षाड्विक्रान्तो भवति च नितरां व्याधनुःकर्षणेन  
भारात्यर्थं भवति हननोत्पातबन्धेन युद्धात् ।

दूराह्वानाद् कदशनवशाच्चिन्तयातिव्यवायात्  
संभूतिः स्यान्मनुजबलहृत् राजयक्ष्मेति संज्ञः ॥

क्षतक्षयात् श्रमाद्वापि सहसोत्प्लवनादपि ।

व्यवायातिप्रसङ्गेन तथा रुक्षातिसेवनात् ॥

तेन मञ्जीयते गात्रं ज्वरो मन्दश्च जायते ।

ज्वरान्ते जायते शोफो मलविट् चातिमूत्रता ।

श्रतिमारश्च भवति भक्षणनाधिकेन च ।

कामते श्लोवतेऽत्यर्थं शोषश्च कुरुते भृशम् ॥

स्त्रियोऽभिलाषतात्यर्थं वार्त्तायाः द्विपता पुनः ।

राजयक्ष्मेति विज्ञेयो नरः साध्यो न विद्यते ॥

यस्य पादौ भवेतां तु ग्रामश्च बहु मन्यते ।

शब्दे च पटता यस्य राजयक्ष्मा न जीर्यति ।

यदन्नं यत् समाहारं यादृशं प्रतियाचते ।

तत्तस्य च प्रदातव्यं मधुरं घनमेव च ॥

यद्यदाहारमिच्छंदा नरो हि राजयक्ष्मकः ।

तस्य तस्याप्यलाभेन क्षीयन्ते तस्य धातवः ।

यदा सरक्ताः शोफास्तु पाकतां यान्ति मानवे ॥

तदा पुनर्नवाकाथः सलेशः प्रविधीयते ।

स जीवेच्चतुरो मासान् षण्मासं वा बलाधिकः ॥

उत्कृष्टैश्च प्रतीकारैः सहस्राहन्तु जीवति ।

सहस्रात् परतो नास्ति जीवितं राजयक्ष्मणः ॥

गतप्राणबलोजश्च क्षीणश्च विकलैन्द्रियः ।

न भवेत् पुनरुच्छ्रायो याप्यरोगश्च मुञ्चति ॥  
 यस्तदायामसम्पन्नो भूयोऽपि कामना भवेत् ।  
 तटा प्राणापहारौ स्यात् राजयक्ष्मातिदारुणः ॥  
 त्रिभिर्मसिष्व षण्मासैर्वर्षश्चापि त्रिभिः पुनः ।  
 शतमूलैरसे प्रस्थं गुडचौकल्कप्रस्थकम् ॥  
 हरीतकीशतानाञ्च कुटजस्य त्वचा तुलाम् ।  
 निःकाष्य च पृथक्त्वेन पृते चैकत्र मिश्रयेत् ॥  
 दार्वीप्रलेपनं दृष्ट्वा गुडानां शतपञ्चकम् ।  
 सितं चामलकौचूणं त्वगेलाचित्रकं शठी ॥  
 द्राक्षा कुष्ठं शिलाजिञ्च शिलाभेदस्तु तालकम् ।  
 योज्यं तत्राक्षमानेन भक्षयेत् मितसर्पिषा ॥  
 तस्योपरि पिबेत् क्षीरं भोजनञ्च ततः परम् ।  
 राजयक्ष्मौ लभेत् सौम्यं पाण्डु कामलकान् जयेत् ।  
 अतिमारं निहन्त्याशु बले नागबली भवेत् ॥

इति अमृतप्राशनम् ।

तालकं च शिलाभेदस्तथा चैव शिलाजतुः ।  
 जोरकं द्वे समङ्गा च कुष्ठं नागबला बला ॥  
 एलापत्रकतानीशं तमालं हरिचन्दनम् ।  
 मुस्ता द्राक्षा तथा रास्ना मृण्डी शैलेयकं मुरा ॥  
 सुरमा चैव संयोज्या तिलाः कृष्णा द्विकोन्मिताः ।  
 चूर्णं सूक्ष्मं प्रयुञ्जीत गुडेन सधुना यतम् ॥  
 पश्चात् गोक्षीरपानं स्यात् क्षीरेण सहभोजनम् ।  
 राजयक्ष्मादिभिः क्षीणा ग्रहणीपौडिताश्च ये ॥  
 धातुक्षीणबला ये च तेषां संयोजयेत् भृशम् ।  
 वृद्धोऽपि तरुणो भूत्वा नरो नार्थ्याऽभिनन्दति ॥  
 बभ्यापि लभते पुत्रं षण्डोऽपि पुरुषायते ।

तालकामृतकद्राम कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥

इति तालकामृतकम्

गुडचौ च वले द्वे च धात्री च मरिचानि च ।  
 चूर्णं गुडेन संयुक्तं राजयक्ष्मापहं नृणाम् ॥  
 शालिपष्टिकगोधूम वास्तृकं जाङ्गलानि च ।  
 सुहांश्च गोपयश्चैव शशकैर्गुरङ्गिणाम् ॥  
 तित्तिरक्राञ्चनावानां वार्त्ताकुः कपिकच्छुकः ।  
 कथितानि च सांभानि प्रलेपानि हितानि च ॥  
 भोजयेत् क्षीरमपि च क्षये वा राजयक्ष्मिणः ।  
 क्षाराम्लकटुकं तीक्ष्णं तैल मौवीरकं सुरा ॥  
 राजिकावर्जिता चैत क्षये वा राजयक्ष्मिणः ।

इति क्षयरोगचिकित्सा

इति श्रीमहर्षिप्रभाषितं हारीतमंहितायाः तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सा नाम  
 दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

अथ रक्तापित्त व्याख्यायते ।

अतिशर्मातपादाततीक्ष्णाणकटुसेवनात् ।  
 क्षाराम्लसेवनादापि मद्यपानातिसेवनात् ।  
 अतिव्यवायाच्छीतेन शुष्कशाकादिसेवनात् ॥  
 एतैस्तु कुपितं पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ।  
 पुनस्तु संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥

हारीत उवाच ।

कथं पित्तं प्रकुपञ्च केन चापि प्रचाल्यते ।  
 तद्वद्रक्तस्य कोपोऽपि जायते केन हेतुना ॥  
 युगपत् दृश्यते केन केन वापि प्रवर्तते ।

एवं पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥

आत्रेय उवाच ।

शृणु पुत्र ! महाप्राज्ञ ! चिकित्सागमप्रारम्भ ! ।

येनैव कुप्यते पित्तं तेनैव कुप्यते तथा ॥

तावत् प्रकुपिते कोष्ठे वायुर्द्धारयते भृशम् ।

ऊर्ध्वं च नयते प्राणः समानापानमौरयेत् ॥

मध्ये समानः कुरुते रक्तपित्तस्य कोपनम् ।

एवं युगपत् पित्तञ्च रक्तेन सह कुप्यति ॥

चतुर्धा दृश्यते कोषो रतिश्चास्य द्विधा मताः ।

ऊर्ध्वं श्लेष्मणि समष्टं नामास्यं कर्णरन्ध्रयोः ॥

रक्तं प्रवर्तते यस्य साध्यस्तु विजिगीषुणा ।

अधोपातनं समष्टं गुदनापि प्रवर्तते ॥

विज्ञेयं रक्तपित्तन्तु कृच्छ्रेण सिद्धिर्निश्च्यति ।

अभाष्यासत्र ऊर्ध्वोभ्यां वातश्लेष्मणि वर्तते ॥

तससाध्यं विज्ञानीयात् कृच्छ्रेण यदि सिध्यति ।

एकमागगतो वापि नातिवेगेन चोत्थितम् ॥

रक्तपित्तं सुखेनापि साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ।

एकदोषान्गं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ।

असाध्यन्तु त्रिदोषेषु रक्तपित्तं प्रवर्तते ।

ऊर्ध्वं रक्तपित्तं च विरेकं कारयेत् सुधीः ॥

अधोभागगते रक्ते तदास्य वमनं हितम् ।

रागनीणि स्थविरविकले हौनदौर्वल्यकाये

मन्दाग्निर्वा वसथुरथवा पाण्डुता दाहशीघ्रः ।

तृष्णा कर्दिः श्वसनमधृतिर्भक्तविद्वेषमोहो

हृत्पौडा स्यात् भ्रममथ भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥

अष्टादश इमे प्रोक्ता रक्तपित्त उपद्रवाः ।

उपद्रवैर्विना साध्योऽसाध्यः सोपद्रवस्तथा ॥

रक्तनिष्ठीवनोपेतो रक्तनेत्रो भ्रमातुरः ।

रक्तमूत्रश्च यमते रक्तमूत्रो न जीवति ॥

एवं प्रोक्तो निदानार्थस्ततो वक्ष्यामि भेषजम् ।

सुलक्षणसमायुक्तं रक्तपित्तं सुखावहम् ॥

यस्यारुणं भवति फेनयुतञ्च तावत्

पित्तातिकृच्छ्रमथ पीतकुसुम्भकाभम् ।

पित्तं पित्तमिति तं एवदन्ति धीराः

मान्द्रं सपाण्डु रतिजं सघ्नं कफेन ॥

इति रक्तापतलक्षणम्

क्षौणमांसं कृशं वृद्धं बालं वा ज्वरपौडितम् ।

शोषमूर्च्छाभ्रमापन्नमतिरचनमाचरेत् ॥

निष्पीड्य वा सरसमाददौत क्षौद्रेण वा खण्डयुतञ्च पानम् ।

नामास्यकर्णं नयनप्रवृत्तं रक्तन्तु शीघ्रं शमतां प्रयाति ॥

वामाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गु, रोध्राञ्जनाम्भोरुहकंशराणि ।

पौत्रा समध्वा समिता प्रयोज्या पित्ताश्रयञ्चैव मुदोर्णमाशुः

प्रविद्यमानं पित्तु वामकेन कथं नरः सोदति रक्तपित्ते ।

क्षये च कामे श्वसनेऽपि यक्ष्मे वैद्याः कथं नातुरमादरन्ति ॥

भेषज्येन भिषग्भिस्तु कृता पूर्वं क्रिया यद्वि ।

क्रियायत्ते रक्तपित्ते क्षये कामे च सिद्धिदा ॥

वामायां विद्यमानाया माशयां जीवितस्य च ।

रक्तपित्तो क्षयो कामी किमर्थमवसौदति ॥

तालीशपत्र वृषनागरकं विचूर्ण्य

पेयं पुनः समधु सम्यगथो विविच्य ।

हन्ति भ्रमं श्वसनकामवतां रुजञ्च

भङ्गस्वरे त्वरितमाशु सुखं दधाति ॥



अटरूषकमृद्वीका पथ्याक्वाथः सशर्करः ।

क्षौद्राढ्यः श्वसनक्ते शरक्तपित्तनिवारणः ॥

क्वागं पयो वा सुरभीपयो वा चतुर्गुणश्चापि जलेन कल्कः ।

सशर्करं पानमिदं प्रशस्तं सरक्तपित्तं विनिहन्ति चाशु ॥

बलाश्वदंष्ट्रामलकीफलानि द्राक्षाधनामधूकं मधुयष्टिकानाम् ।

सिद्धं पयः पानमिदं हितं स्यात् पित्ते सरक्ते मनुजस्य शान्त्यै ॥

खदिरस्य प्रियङ्गूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ।

पुष्पचूर्णन्तु मधुना लिङ्घ्यादारोग्यमश्नुते ।

आटक रूषकरसेन मसधा भाविता च पुनरेव शोषिता ।

पिप्पली मधुसमन्विताभया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत् ॥

एलापलानि सपद्मकनागकेशरं

द्राक्षाधनामधूकपिप्पलिका समांशा ।

एषां समांशसितशर्करयुक्तलेहः

खर्जूरिका समभिहन्ति च रक्तपित्तम् ॥

दाहज्वरार्तिश्वसनञ्च विमोहदृष्ट्यां

मूर्च्छां निहन्ति रुधिरञ्च वमिं तथैव ।

घ्राणे प्रवृत्तं रुधिरं यदि स्यात्

तदा घृतेनामलकात् फलानि ॥

नीयेन पिष्ट्वा शिरसि प्रलेपः सरक्तपित्तं सहसा रुणद्धि ।

शक्तारसं वा घृतशर्कराढ्यं जलं सिताढ्यञ्च सरक्तपित्ते ॥

शवनचैवेक्षुरसं सिताढ्यं क्षयञ्च कासं क्षतजं निहन्ति ।

नस्यं विदध्यात् हरितालिकाया रसेन बालक्तरसेन वापि ॥

थाहाडिमस्य प्रसवोद्भवेन रसेन नस्यं रुधिरस्रुतेऽपि ।

शाम्बास्थिजम्बूद्वयशर्कराढ्यं नस्यं सिताढ्यं हितकृत् ज्वराणाम्

नासाप्रवृत्तं रुधिरं निहन्ति हिक्कासकृदिश्वसनं रुणद्धि ॥

पलाण्डुपत्रनिर्यासनस्यं नासास्रजापहम् ।

यष्टीमधुमधुयुतं नस्यं पश्चात् नस्येऽम्रजं जयेत् ॥  
 वासापत्ररसं विधाय मतिमान् योज्यानि चेमानि तु  
 रोध्रञ्चोत्पलमृदिका ममधुकं कुष्ठं प्रियङ्गुान्वितम् ।  
 चूर्णं पुष्परसेन पाचकमिदं पित्ताश्रयाणां हितम्  
 कासश्वासमपाण्डु, कामलगदक्लेशाफमदीं भवेत् ॥  
 रसो हितो दाडिमपुष्पकस्य तथैव किञ्चल्लरसोत्पलस्य ।  
 लालारसो वा पयसा च नस्यं घ्राणप्रवृत्तं रुधिरं रुणद्धि ॥

इति नासाप्रवृत्तर्काधिरर्थाकम्

यदि वदनपथेऽसृक् वर्तते तस्य कुर्यात्  
 प्रतिविधिविहितः स्याद् वक्ष्यते मानुषस्य ।  
 भवति न सुखसाध्य लोहितं मानुषेषु  
 नटन् युवतियोन्यां रक्तवाहस्त्वमाध्यः ॥  
 मधु मधुकमुण्णं कञ्जकिञ्चल्लदूर्वा-  
 रममिह परिपीतं दाडिमस्य प्रसूतम् ।  
 मलयजसितकुष्ठं पद्मकं चैव बालं  
 मधुमधुकममन्तात् कोद्रवी वालकौ द्वौ ॥  
 समसुरभिपया वा धावनं तण्डुलानां  
 परिकलितसमग्र तृथ्यभार्गेन योज्यम् ।  
 लघुतरस्यापि वज्रा धारितं मिद्धमेव  
 भवात् वदनवृत्ते लोहिते पानमस्य ॥  
 श्रुतिपथमपि रक्ते वा प्रवृत्ते तु नासं  
 विहितमपि तदा स्यात् पूरणं कर्णनासे ।  
 रुधिरमपि रुणद्धि श्वासमाशु क्षतं वा  
 श्वसितरुधिरकृदिर्महमुन्मादरोगम् ॥  
 नासाप्रवृत्ते नस्यं स्यात् मुखे पानं विधेयकम् ।  
 कर्णे नेत्रे पूरणञ्च गुदमार्गे निरुहणम् ॥

दाडिमस्य फलत्वग्वा चूर्णं लिह्यात् सितायुतम् ।  
 पद्मकिञ्जल्कचूर्णं वा लिह्याद्वा सितया पुनः ॥  
 मुखप्रवृत्तरुधिरं रुणद्ध्याशु वमिं क्लमम् ।  
 श्वामशोषौ भ्रमं तृष्णां नाशयत्याशु निश्चयम् ॥  
 जम्बाम्प्रपल्लवानि, स्युर्हरीतक्या यतानि च ।  
 मधुशर्करया युक्तमास्यलोहितवारणम् ॥  
 वटप्रवालार्जुनवृक्षकाणां जम्बाम्प्रकाणां खट्विरस्य वापि ।  
 यथा प्रपन्नो मधुनावलेह आस्यास्रज वारयते क्षणेन ॥

इति मुखप्रवृत्तरुधिरचिकित्सा ।

काकोली मधुकं वला शतमूलौ दाडीमकाः सम्मिताः  
 भद्रः क्षौरविदारिका च फलिनी स्यात्तिन्त्रिङ्गीकं वला ।  
 सिद्धं गोपयमाज्यकं हितमिदं पाने तथा वस्तिषु  
 योनौ मेदू गुदप्रवृत्तरुधिरं हन्यात् सकामक्षयम् ॥

इति शतावरीघृतम् ।

मृद्वीका मधुकं विदारि वसुधा नीजी समझाकणाः  
 काकोली वृहतीयुगं वृषमहामिदा मितं चन्दनम् ।  
 जातीपत्रपटालजौरकमर्था श्यामामृताः साभया  
 मेदू हे भृगुचन्दनं मधुरसाः श्यामाः समांशास्त्वमो ॥  
 पक्वा गोपयसा ददाति रुजिनां चास्ये चतुर्थाशकम्  
 मत्स्यण्डौ मधुकञ्च सिद्धमिति चेत् पानं प्रशस्तं नृणाम् ।  
 स्त्रीणां चापि हितं निहन्ति रुधिरं पित्तात् गुदे वा भगे  
 मेदू चापि च रोमकूपकपथे वृत्तं निहन्यात् स्रजम् ॥  
 एतद्वाक्षाभिधानं घृतमपि विहितं रक्तपित्ते ज्वरे वा  
 वातासृग् योनिशूले भ्रममदशिरसोन्मादरक्तप्रमेहे ।  
 पित्ताम्बु चापि कुष्ठे क्षतभवरुधिरं राजयक्ष्मेऽथ पाण्डौ

पाने वस्तौ च नस्ये हितमपि मनुजां भाषितं चात्रिणा मे

इति द्राक्षादिष्टम्

कुक्षीं निष्कृथ कूष्माण्डखण्डानि प्रतिकल्पयेत् ।

काञ्चिकेन सुधौतानि पुनरेव जलेन तु ॥

पश्चात् क्षीररसप्रस्थे कल्कयेत् पुनरेव च ।

घृतेन पुनरेवेतत् पाचयेत् सुविधानतः ॥

यदा मधुनिभानि स्युस्तदा शर्करया युतम् ।

निधाय तत्र चेमानि भेषजानि प्रकल्पयेत् ॥

पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले मरिचानि च ।

जौरके द्वे तथा धात्री त्वर्गलापत्रकं तथा ॥

पलाङ्गेन वियुञ्जीयात् चूर्णं तत्र विनित्तिपेत् ।

दाव्या विघट्टयेत्तावद् लेहीभूतं यदा भवेत् ॥

तदा मधुघृतेनापि लिह्याद् ज्ञात्वा बलाबलम् ।

रक्तपित्तं क्षयं कामं कामलं नैशिकं भ्रमम् ॥

कुर्दित्वाज्वरश्वासपाण्डुरोगान् क्षतक्षयम् ।

अपस्मारं शिरोऽर्त्तिञ्च योनिशूलञ्च दारुणम् ॥

चिरं योनौ रक्तवाहं मन्दज्वरनिपौडनम् ।

दृष्टोऽपि च युवा कामौ बन्ध्या भवति पुत्रिणौ ॥

निवीर्या वीर्यमाप्नोति भवेत् स्त्रीणां प्रियो नरः ।

एष कुष्माण्डको लेहः सर्वरोगनिवारणः ॥

इति कुष्माण्डकावलेहः ।

सुस्निग्धकूष्माण्डकखण्डकानि पलानि पञ्चाशदथो सितायाः

युञ्ज्यात् सतोयं प्रणिधाय धौमान् घृतेन प्रस्थं परिपौतमेव ॥

विज्ञाय पक्वं पुनरेव तत्र वासाकषायादृक्कमेव मिश्रयेत् ।

दार्धीप्रलेपं विपचेच्च यावत् ज्ञात्वा तु चेमानि पुनर्वियुञ्ज्यात्

धात्रीघनाभार्गी सुगन्धजातं युञ्ज्यात् समस्तानि च कर्षमात्रा

धुनर्नैवा नागरधान्यकानि पलस्य चैषां कथितानुमात्रा ॥

श्यामापलाष्टकमिदं विदधीत चूर्णं  
सङ्घट्टयेत् सकलमेव पुनस्तु दार्व्या ।  
युञ्ज्यात् समं मधुयुतं सकलामयघ्नं  
कासं ज्वरं क्षतजमाशु निहन्ति हिक्काम् ॥  
हृद्रोगपित्तरुधिरं क्षयपीनसञ्च  
पित्ताम्लकं विजयते श्वसनञ्च सूक्ष्मम् ।  
स्त्रीणां हितं भवति बालकवृद्धकेषु  
अष्टं समस्तं रुजनाश बलप्रदञ्च ॥

इति कृष्णाष्टावलेहः ।

गतावरो मुण्डितिकामृता च फलत्वचं पुष्करमूलभार्गी ।  
उषो बृहत्या खदिरञ्च मौशली पृथक् पृथक् पञ्चपलैकमात्रा ॥  
पक्वं समुत्तार्य जलं समांशं यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ।  
विमूर्च्छितं तत्र निधाय धीमान् पलं तथा द्वादश माक्षिकस्य ॥  
तथाशु चूर्णस्य च लोहकस्य विघट्टितं खण्डघृतेन तुल्यम् ।  
देय पलं षोडशकं विधिज्ञो विपाचयेत्लोहमये च पात्रे ॥  
गुडेन तुल्योऽपि विभाति यावत् तुगाविडङ्गं मगधा च शुण्ठी ।  
इं जोरके चैव फलत्रयाणां भृङ्गं सधान्यं मरिचं सर्कशरम् ॥  
पलेन मात्रां विदधीत सर्वं सुघट्टितं चूर्णमिदं घृतस्य ।  
स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय युञ्ज्यात् कर्षप्रमाणं विदधीत चूर्णम् ॥  
प्रभातकालेषु च तस्य पानं गुरूणि चान्नानि च वातलानि ।  
भगन्दरार्शः श्वयथून् निहन्ति रक्ताम्लकं वा श्वसनञ्च यक्ष्मा ॥  
विशोषणं कुष्ठरुजाञ्च गुल्मान् बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ।  
मरक्तपित्तं सहमा निहन्ति योनिप्रवाहञ्च सरक्तशूलम् ॥  
रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं समेद्रवस्तौ निहितं नराणाम् ॥

सौभाग्यदं कान्तिकरं प्रदिष्टं तेजोजसं पुष्टिवलं तनोति ॥

इति खण्डकायं रसायनम्

रक्तातिसारिषु च योजनीयं रक्तप्रवाहे स्रुजे सदाहं ।

फलत्रिकं तत् सविषा समङ्गा सपपेटं दाडिमधातकोनाम् ॥

चूर्णं सिताक्षौद्रयुता प्रयुञ्ज्यात् तथैव दध्ना मधृतञ्च लेहम् ।

रक्तातिसारं रुधिरप्रवाहं योनिप्रवाहं सततं स्त्रियाश्च ॥

निवारयत्याशु हितं नराणां वालेऽतिसारे प्रशमाय योग्यम् ।

इति रक्तातिसारचिकित्सा

योनिप्रवाहे मधुकं समङ्गा एलाटलं निम्बटनानि पथ्या ।

सुस्ता विशाला कटुरोहिणी च कास्तोहितः शर्करया व्यतीऽतः ।

योनिप्रवाहं विनिवारयञ्च मयोनिशूलं स्रुजं तृपात्तम् ।

एला समङ्गा सहशाल्मलीना चरातको मागधिका मलाशा ।

कायो हितः शर्करया सलब्धः यो निप्रवाहं विनिवारयति ॥

इति योनिप्रवाहचिकित्सा

धर्मातपान्ते च पिटाहि चारुं मौदीरकं वा कटुकं कषायम् ।

क्षारं सुरा वा परिवर्जनीयः सरक्तापित्तं स्रुजे हिलाय ॥

वास्तकचिम्बो सुजिवणफञ्च जीर्वाणका वा भतपुष्पिका वा

शाको हिता रक्तभवे च पित्तं मुहास्तया लोहिततण्डुलाश्च ॥

यवगोधूमचणकाः कोशातक्याः पटालकम् ।

मुक्ता भाषा हिताश्चैव रक्तापित्तनिवारणे ॥

हारीणशशकनायास्तिरिगस्ते कलिङ्गाः

क्रकरमपि मयूराः कौञ्चपारावतानाम् ।

पल्लमनिलपित्तं वर्हिण वै हितञ्चेत्

भवति बलसमीधं सत्वतजश्च कान्तिः ।

इति श्रीमहर्ष्यात्रिभार्षते हारौतमंहिते तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सा

नाम एकादशीऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो वक्ष्यते पुनः ! अशरीरोगचिकित्सितम् ।  
 पट्प्रकारेण ये प्रोक्तास्तेषाञ्च शृणु लक्षणम् ॥  
 वातदोषैस्त्रिभिरपि वातपित्तकफादिकैः ।  
 सान्निपातश्चतुर्थः स्यात् पञ्चमो रक्तसम्भवः ॥  
 षष्ठकः सप्तजो ज्ञेयश्चाष्टमो षड्विधोऽपि ।  
 एवञ्च पट्प्रकारेण जायन्ते गुदजा रुजः ॥

अनशनलघुरुक्ताहारमसंवनन  
 कटुलवणविदाहौसंवया वेगराधात् ।  
 भवति सतत मौष्ठा विष्टरणेव होना  
 कुपितमरुतवेगादर्शसां भूतिरामौत् ॥  
 अनशनोपाविष्टस्य मलसूत्रविधारणे  
 श्वातसंसेवनेनापि गुदजः सम्प्रकुप्यति ।  
 लघुप्रातृकषायातिक्तमसंवनन  
 अल्पिभ्योऽप्युपमाज्यात् शीतलेनातिरोधात् ।  
 कुपितमालिननासापागमामेवपाने  
 वितरति कथिष वा पागमार्गे मरुतसु ।

कटुकलवणोष्णानि विदाहौन गुरुणि च ।  
 सेवनानिलतोयेन अमाद् व्यायामपोडया ।  
 यानव्यायामदोषाद्वा दुर्नासा पित्तसम्भवः ॥

अव्यायामात् तस्य शीलादजस्र शीताहान्यादातमसंसेवनाच्च ।  
 शीत्यात्यक्त्वात् तल्लसाम्प्राच्छलेन दुर्नासा सञ्जायते श्लेष्मरोगात् ॥  
 शीतत्वतोदं परुषं विनिद्रा गुल्मोदराष्टौलविसूचिका वा ।  
 शोथस्तथा कृष्णनखास्यनेत्रं लिङ्गानि वातप्रभवार्शसानाम् ॥

दाहभ्रमौ ज्वरपिपासिशरीरतो वा  
 सूक्ष्मरुतिर्नयनदन्तमुखानि यस्य ।

पीतच्छविर्भवति वा विड्भेदनञ्च  
 पित्तेन जातगुदजस्य च लक्षणानि ॥  
 निद्रा च जाड्यघनमन्दरुजा च शोफाः  
 शूलातिगुल्मगुदभङ्गुरकास्तथा स्युः ।  
 विड्बन्धतोदमरुचिर्गतिमन्दता च  
 श्लेष्मोद्भवा गुदरुजः खलु भेषजज्ञ ! ॥

शूलानाहारुचिः कासो हृत्तासो रतितोदना ।  
 स्कन्धयोज्जाड्यता सर्वाश्चार्षमः सम्भवन्ति हि ॥

इति अर्शोलक्षणम्

गुदजं लक्षणं वक्ष्ये गुदे कण्डुरसृक्स्त्रवः ।  
 परुषा विपमा दीर्घा वार्तेन गुदजा मताः ॥  
 सदाहाश्च विचित्राश्च पीता नीलावभासिकाः ।  
 लांहितं स्रवते मोष्णं पित्तेन गुदजा मताः ॥  
 सदाहाः कठिना ये तु विपाको विड्बिबन्धता ।  
 शीतकण्डुसमस्थूला कफेन गुदजा मताः ॥  
 सदाहाः सरुजाः श्यावाः कण्डुः शोषश्च जायते ।  
 स्रवते सततं रक्तं ते कण्ड्वासृग्भवार्षमः ॥  
 धान्याङ्गुरसमाकाराः क्रिमयः सम्भवन्ति हि ।  
 वातवर्चःसमी लिङ्गी गुदजा सम्भवन्ति हि ॥  
 वक्रास्तौक्ष्णाः स्फुटितवदना दीर्घविम्बोफलाभाः  
 केचित् सिद्धार्थकफलनिभाः कालखर्जूरकाभाः ।  
 कर्कन्धाभाः कुसुमसदृशाः केचिदभोजवौजा  
 वायोः पाने विहितमनसां सम्भवश्चार्षसाञ्च ॥

गुदे नासाकर्णरन्ध्रे मुखे वा तथा वर्तते नेत्रयोर्योनिमध्ये ।  
 नराणां शरीरे भवन्त्येव रोगा न माध्याः सुखेन क्रियायत्नतः स्य  
 त्रिवलौगुदमध्ये तु बाह्यतोऽभ्यन्तरेषु च ।



अर्शमान्तु विजानीयात् त्रीणि स्थानानि चैव हि ॥

वाह्यतः सुखसाध्यः स्यात् मध्ये कष्टेन सिध्यति ।

असाध्योऽन्तर्वलीजातो गुदजो भिषजां वर ! ॥

प्रलेपवर्त्तिभिः स्वेदैर्वाह्याः सिध्यन्ति चोत्तमाः ।

यन्त्रशस्त्रेण साध्यास्तु अन्तर्जाश्चान्तरौषधैः ॥

तस्मात् पुत्र ! प्रयत्नेन क्रिया कार्या विजानता ।

येनातुरस्य रक्षा स्याद् येन रोगो निवर्त्तते ॥

करचरणमुखे वा नाभिमेद्रे गुदे वा

भवति हि यदि पुंसां शोफशोषो ज्वरश्च ।

श्वसनतमकच्छर्दिर्मोहहृत्पार्श्वशूलं

कृशमरुचिविवन्धस्यातिसारोपमर्गाः ॥

इत्येवं द्वादशार्शःसु सम्भवन्ति ह्युपद्रवाः ।

उपद्रवैर्विना साध्या न साध्या बहूपद्रवाः ॥

इति अर्शोपद्रवाः ।

शूलारोचकटुणार्त्तश्चातिरक्तप्रवाहवान् ।

शूलशोफातिसारार्त्तो ध्रुवं न जीवतेऽर्शमः ॥

इति अर्शोलक्षणानि ।

अतोऽर्शसां प्रवक्ष्यामि क्रियाञ्चैव भिषग्वर ! ।

वटकाक्षारशस्त्राणि येन सम्पद्यते सुखम् ॥

अर्शसाञ्च क्रियाः प्रोक्ताश्चार्शोघ्ना बलवर्द्धनाः ।

पित्तशोणितशमना न च वातप्रकोपनाः ॥

तस्यादौ पाचनं श्रेष्ठं ततो भेषजमाहरेत् ।

पथ्यामृता च धनिका पाने क्वाथो गुडान्वितः ॥

इति पाचनक्वाथः ।

रन्ती विडङ्गं मगधा च धान्यं भक्षातगौडं तिलकुष्ठयुक्तम् ।

संमिच्य सम्यक् पयसातिकल्को निहन्ति पाने गुदजांश्चरोगान्

इति कल्कयोगः ।

नागरपिप्पलीचव्यविडङ्ग दन्तो च शल्यभया त्रिवृता च ।  
कल्कमिदं मगूढं प्रतिपाने चार्शसि नाशनकारि नराणाम् ॥  
पत्रकर्कशरशुण्ठीसमैलातुम्बुरुधान्यविडङ्गतिलानाम् ।  
काथा हरीतकौमपिर्गुडेन पीतो निहन्ति गुदे गुदजानि ॥  
पिप्पलिकामभयागुडयुक्तां प्रातर्भवे नरो भक्षति चैताम् ।  
तस्य गुदकोलकमाशु हन्ति सकामलपाण्डुरोगवर्गान् ।  
सुखिन्नवात्तिकुफलस्य तोयं दध्ना सिताह्वामलिलस्रुतेन ॥

पाने विधेयं गुदकोलकानां

क्रिमोन् निहन्यात् क्रिमिजाश्च रोगान् ।

भक्ष्यातकाः कृष्णातिलाश्च पथ्या चूर्णं गुडनापि नरस्य मेव्यम् ।  
हन्याच्च पाने गुदकोलमेहशूलाशकासान् विनिहन्ति तस्य ॥

इति भक्ष्यातकचतुष्टयम् ।

शूरणकन्दकमर्कदलेस्तु वेष्टितमेव हि कर्दमलितम् ।  
प्रष्टमनलवर्णकममानं तत् पयः सैन्धवतैलविमिश्रम् ॥  
भक्षति चार्शविनाशनहेतोर्वातविकारहितोऽपि नरस्य ।  
चित्रकपुष्करमूलशठोनां तेषु समांशास्तिला विनियोज्याः ॥  
शूरणकन्दकखण्डनमेतं तेषु समोऽग्निकफलानि दद्यात् ।  
सैन्धवं तस्य चतुर्गुणकञ्च भावितमर्कदलेन समस्तम् ॥  
तच्च धृतस्य घटे विनिधाय अरण्यगोमयवह्निविपक्वम् ।  
क्षीरमिदं लवणघृतपक्वं तक्रयुतं प्रतिपानमतोऽपि ॥  
नाशयति गुदकोलककोलान् निहन्ति विसूचिभगन्दरानपि  
कामलपाण्डूनाहविवन्धान् गुल्ममरोचकनाशनकारौ ।  
मूत्रगदगलकण्डुक्रिमोणां नाशनभद्रकसैन्धवो नाम ॥

इति कल्याणनाम लवणम् ।

त्रिकटुकमगधानां मूलचित्रं त्रिगन्धं  
समतुलितममौषां तुल्यभस्मातकानि ।  
सकलमिह समन्तादेकतः सम्प्रचूर्ण्य  
द्विगुणतुलितमात्रं योजनीयो गुडस्तु ॥  
सकलमपि विकृत्य स्निग्धभाण्डे निधाय  
प्रतिदिनमपि मेव्यं चाक्षमात्रं सुधीरैः ।  
गुदजजठररोगं शूलगुल्मान् क्रिमींस्तु  
जनयति जठराग्निं हन्ति पाण्डुक्षयं वा ।

इति भस्मातकवटकः ।

नागरं त्रिफला चैव पलां स्त्रींश्च प्रयोजयेत् ।  
चतुःपलं मरीचानां पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥  
पलमेकं तु चव्यस्य योज्यं तत्र भिषग्वरैः ।  
तालौशादे पलं देयं पलाद्वि पञ्चकस्य च ।  
जोरकाभ्य भक्ष्यं मात्रा समेन तुलितो गुडः ॥  
सुपक्वा सुघना श्यासा पिप्पलीनां शतत्रयम् ।  
उदृक्खले खोटयित्वा स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥  
अक्षप्रमाणा गुडिका नराणां प्रातः प्रदेया सकलामयघ्नी ।  
निहन्ति चार्शांसि च पाण्डुरोगं हलौमकं कामलकं भ्रमं वा ॥  
गुल्मातिसारञ्च मरक्तपित्तं क्षयं क्षतं चाक्षयमस्य यक्ष्मा ।  
जौर्णज्वरारोचकपीनमानां हितो भवेत् प्राणदमोदकोऽयम् ॥

इति प्राणदमोदकः ।

जाजौपिप्पलीमूलकोलमगधापथ्याग्निकं नागरं  
सूक्ष्मैला च पलद्वयेऽपि क्रमशः कृत्वा पलैः सैन्धवम् ।  
भस्मातक्यफलानि पञ्चशतकं दत्त्वा समस्तेन तु  
द्वैगुण्योऽपि पुराणसूरणहतः सर्वस्य तुल्यो गुडः ॥  
क्षौदित्वा वटकाक्षमात्रमुपभुग् जातो विशेषो गुणः

कुर्यादर्शनिवारणं क्षयमपि श्रेष्ठं तथा सुप्रभम् ।  
 मन्दाग्निर्वड्वासमो भ्रमहरो हृद्रोगपाण्डुमय-  
 श्वासानाहभगन्दरामयहरोदावर्त्तनिर्वासनः ॥  
 कृतोऽप्यर्थे विकारोऽपि ऋषिणा योगयुक्तिना ।  
 काङ्गायनेन मतिमन् ! तेन, सौख्यमभीप्सति ॥

इति काङ्गायनगुडिका ।

लवणोत्तम वक्त्रिकलिङ्गयवं चिरविल्वमहत् पितुमर्दयुतम् ।  
 पिब सप्तदिनं दधिमस्तुयुतं यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुजम् ॥

इति लवणोत्तमाद्यं चूर्णम् ।

विश्वोपकुल्यामरिचानि केशरं पत्रं लवङ्गैलकजातिकोषकाः ।  
 चूर्णं हितं शर्करयुक्तमेतत् गुदामयानामुदरार्तिशान्तये ॥

इति एलादिगुडिका ।

मनागरं पुष्करवृद्धदारकं गुडेन कुर्यादिह मोददारकम् ।  
 अर्शःसु दुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥

इति चतुर्भिर्मोदकः ।

त्रिकटुकमभयानां पुष्करं चित्रकाणां  
 क्रिमिरिपुतिलचूर्णं कारयेत् वा गुडेन ।  
 उषसि वटकमेकं भक्षयेद् यो मनुष्यो  
 विनिहितगुदरोगश्चाग्निवृद्धिं करोति ॥

इति त्रिकटुकाद्यो मोदकः ।

मरिचं नागरं चित्रं सूरभागोत्तरेण संकुट्य ।  
 सर्वसमो गुडयुक्तो मोदको विल्वप्रमाणं सेवेत् ॥  
 विनिहितसकलगुदामयो जठरगुल्मान् निहन्ति ।  
 शूलानि क्षपयति मनुजानां करोति तनुपुष्टिम् ॥

इति मरिचाद्यो मोदकः ।

त्रिसमगतशूरणकन्दो लोहितवर्णेन यो भवेन्नतिमान् ।

षट्खण्डौकृतमपि संशुष्कान् षोडशान् भागान् ॥  
 तस्यार्द्धेन तुलितश्चित्तकशण्ठी च तत्र संयोज्या ।  
 मरिचस्य चैकभागो गुडं न बद्धस्तु मोदकोऽमनुजैः ॥  
 भक्षित एव हि गुणवान् निहन्ति सकलान् गुदामयान् ।  
 त्वरितमग्निर्दीपनमुक्तं गुल्मानां जठररुजाम् ।  
 हन्ति शूरणभार्गी चित्तकशण्ठी मगधमरिचभार्गी ॥

इति शूरणपिण्डः ।

त्रिफलमगधजानां मूलतालीशपत्रं  
 क्रिंशिरिपुमगधानां पुष्करं चेत् समांशः ।  
 मरिचटहनभागश्चैकभागश्च शण्ठी  
 सकलतुलिततुल्यः शूरणस्यैकभागः ॥  
 भटनचपलयुक्तं वृद्धदारैर्लभ्यं  
 कृतमिह परिचूर्णं द्विगुणं जौर्णखण्डः ।  
 कृतवटकमुखस्तु प्राशते यो मनुष्यो  
 हरति जठररोगं तस्य चाशु प्रकर्षम् ॥  
 गुदजरुधिरपित्तं कामसन्दाग्निशूलान्  
 क्षयतमकहलीमान् कामलांश्च क्रिमींश्च ।  
 विदधति बलपुष्टिं दापयेच्चाशु मार्गं  
 प्रवलयति हुताशं योगराजप्रसिद्धः ॥  
 योगराजेन युञ्जीत स्वयमेवाप्यगस्तिना ।  
 अस्य योगस्य योगेन भीमोऽपि बहुभक्षकः ॥

इति भीमवटकी नाम ।

चव्यं पाठा त्रिकटु मगधा मूलकस्तुम्बुरूणां  
 विल्वाजाजीरजनिसुरमापथ्यया सैन्धवश्च ।  
 पिष्ट्वा चैतत् समगविधृतं पाचयेत् सुप्रयुक्तं

पानाभ्यङ्गे हरति गुदजान् वातरोगाश्मरीच्च ।

इति चव्याद्यं हृतम्

श्यामा कुष्ठं मधुकमदनं पुष्पकं चित्रकञ्च  
विल्वं दारुं प्रतिविषशताह्वाकलिङ्गाशठीनाम् ।  
पिष्टा तैलं द्विगुणपयसा पाचितं चातुवासे  
चाभ्यङ्गे वा विहितमपि गुदव्याधिनिर्नाशहेतोः ॥  
वातव्याधिश्च वणरुधिरे कर्णशूलेऽश्मरीणां  
जङ्घातुष्ठे कटिशिरसि शिरावङ्गणे वाततोदे ।  
विष्ठावन्धस्वसनक अतोसारकं मूढगर्भं  
श्रेष्ठं तैलं सकलनिचयव्याधिसन्धारणेन ॥

इति पिप्पल्याद्यं तैलम्

मुस्ता विश्वविडङ्गचव्यऋशठी पथ्या च तेजोवती  
दन्तौन्द्रात्रिवृता समांशकपलौ मात्रा च प्रत्येकशः ।  
तस्माच्चाष्टपलान् पुरुष्करमथो षट्पृष्ठदारापलान्  
युञ्ज्यात् षोडशशूराण्यस्रलिलद्रोणेऽखिलं कल्कितम् ।  
तेनैतद्विपचेत् गुडावगुणितं युञ्ज्याद् भवेद्वा दिनम्  
उद्धृत्यैव पुनश्च चित्रकत्रिवृत्तेजोवती शूरणम् ।  
एलापत्रकनागकेशरलवङ्गानां समं चूर्णितम्  
एषां षोडशभागयोग्यविहितं सर्वञ्च तं चैकतः ॥  
स्थाप्यं स्निग्धघटे प्रभातसमये भक्षेदक्षमात्रं वटं  
जीर्णं क्षौरमपि प्रभूतमतिमान् पाने तथा भोजने ।  
अर्शोगुल्मभगन्दरांश्च ग्रहणो पाण्डुः गदं कामलां  
शूलञ्चाथ विबन्धकान् क्षतजरुग् यक्ष्माणकं हन्ति च ।

इति भीमसेनी नाम वटकः

भस्मातकानां द्विसहस्रकाणां द्रोणे जले स्राव्य पदावशेषम् ।  
क्वाथं तु तस्मिन् विपचेद् गुडस्य तुलाप्रमाणं पुनरेव तत्र ॥

तत्रैव संयोज्य पलत्रिकं वा व्योषं यवानौघनसैन्धवानाम् ।  
 पलानवङ्गं दलनागकेशरं प्रत्येककर्षं तुलितं नियोज्यम् ॥  
 मंक्रुद्य तैले घृतभाजने वा स्थाप्यं प्रभाते वटकप्रमाणम् ।  
 भक्षेद्गुडं वै विनिहन्ति रोगान् भगन्दरार्शः क्रिमियक्ष्मपाण्डून् ॥  
 गुल्माश्मरीमेहहलीमकं वा साक्तपित्तं ग्रहणीं निहन्ति ।  
 करोति पुष्टिं बलमातनोति वर्णप्रकर्षं सुखमादधाति ॥

इति भस्मातकानां शतपञ्चकानि ।

दशमूलगुडं चिशठीक्षुरकं सहचित्रकभार्गीफलासहितम् ।  
 प्रदिशेत् शतपञ्चकं वाग्निमुखे विपचेज्जलद्रोणमितेन तच्च ॥  
 गुडजौर्णशतं प्रददेत् कथितमवतार्य सुशीतलमेव समम् ।  
 दलकेशरभृङ्गलवङ्गयुतं कृतचूर्णमिदं सकलैकमिति ॥  
 घृतभावितमेकदिनं विदधीत घृतभाजनके दिनसप्तमिदम् ।  
 श्लिग्धघटे च विदधीत मनुष्यः दत्तमिदञ्च गुदजामयसङ्घे ॥  
 मोढकमेकमुषःसु ग्रमेत् तथा विनिहन्ति गुदामयमेहरुजः ।  
 हन्ति कासहलीमककामलकं हितमेव हुताशनदीप्तिकरम् ॥

इति भस्मातकगुडः ।

तरुणे च जले क्षिप्तो जलेनैव विलीयते ।  
 लोहितो लोहितायाति पलमेकं गुडस्य च ॥  
 ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं चविकं त्रिफलामृता ।  
 सहदेवौ गजकणापामार्गश्च कुठेरकम् ॥  
 चतुःपलञ्च प्रत्येकं कल्के द्रोणाम्भसा सुधीः ।  
 द्वे सहस्रे समे पिष्टे भस्मातक्याः फलानि तु ॥  
 पाटावशेषे कल्के च लोहचूर्णं तुलार्द्धकम् ।  
 सर्पिर्द्विकुडवं क्षिप्त्वा सर्वं चैकत्र घटयेत् ॥  
 फलत्रिकं तथा व्योषं चित्रकं लवणाष्टकम् ।  
 विडङ्गानि समांशानि सर्वाणि पलमात्रया ॥

चतुःपलं वृद्धदारोर्मुखास्था तु चतुःपला ।  
 संशुष्कशूरणं कन्दं चूर्णं चाष्टपलोन्मितम् ॥  
 संक्षिप्य खादयेच्चूर्णमवतार्य सुशीतले ।  
 स्थापितं मधुसंयोज्य कुडुवद्वयमात्रया ॥  
 देयं गुदामये चादौ कल्कसंप्रातराशने ।  
 अर्शांसि ग्रहणीरोगं कामलाञ्च हनौमकम् ॥  
 गुल्मक्रिमौनश्मरीञ्च मन्दाग्निमहशोणितम् ।  
 नाशयत्याशु यक्ष्माणं करोति वलमाकृतः ॥  
 आशु वृद्धिं प्रकुरुते वलीपलितनाशनम् ।  
 रमायनस्य योगिन नरो नागवली भवेत् ॥

इति भक्षतकावर्ति

रक्ताशंसामुपचारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥  
 प्रातस्त्रिलान् भक्षयेच्च नवनीतार्वाभ्याश्रितान् ।  
 सितानागरसंयुक्तं नवनीतं मशर्वरम् ।  
 केशरं मातुलुङ्गस्य विडङ्गशर्करायुतम् ॥  
 भजेत् कूष्माण्डकालेहं नवनीतेन शर्कराम् ।  
 एतेन रक्तगुदजान् शमयन्ति विचक्षणाः ॥  
 समङ्गा शाल्मलीपुष्पं चन्दनं ककुभत्वचम् ।  
 नीलोत्पलमजाक्षीरं पिष्ट्वा पानमसृक्गदान् ॥  
 कुटजमूलमकेशरमुत्पलं खट्विरधातकमूलशृतं पयः ।  
 पिबति स्रक्त्रणयोगमसृग्भवं गुदजविकारनाशनकारि ॥

इति रक्ताशंसिकस्य

कुक्कुटस्य पुरीषञ्च तथा पारावतस्य च ।  
 गृहधूमं च मिद्वार्य धुस्तूरकटलानि च ।  
 काञ्जिकेन च संपिथ्य वर्त्ति सञ्चालयेद् गुदे ॥  
 शूरणकन्दकवर्त्तिर्विधेया भस्मातरसेन घृतेन च लिप्ता ।



गुदरोगं गुदकीलकमाशु नाशयते गुदजांश्च क्रिमींश्च ॥

हरिद्रा मार्कवं कुष्ठं गृहधूमं सुवर्चलम् ।

सिद्धार्थकरसञ्चैव कार्ज्जिकेन च पिष्यते ॥

मधुना सह वर्त्तिः स्याद् गुदे सञ्चालिता यदि ।

अर्शमां नाशनं चैव करोति सहसा नृणाम् ॥

दांत वर्त्तियोगः ।

दत्त्वा वै पलसंस्थितञ्च हुतभुक्व्योषं रसानां गणान्

षड् ग्रन्थापिचुर्मर्दवारिभकणाभाण्डौशिलातालकम् ।

पिष्ट्वा अक्षयसस्तकार्ज्जिकयुतं दत्त्वा शिलालेपनं

दर्शसावि चक्षितं तथैव गुदजान् सर्वातिमारामयान् ॥

यत्र शस्तञ्जकर्मञ्च तद्वितं तं तु शल्यकम् ।

यथा यन्त्रेण छित्वा दाहस्तत्र विद्रव्यकः ॥

वर्मकीलं तथा छित्त्वा दग्धं क्षारेण धोमता ।

प्रक्षजस्वसमां वर्णा क्षारदग्धं प्रशस्यते ॥

दग्धं वा शूरणक्षारं कदलीजीवमुद्दकम् ।

पलाशकोकिलाक्षारमपामार्गघृतान्वितम् ॥

क्षारदाहं प्रशस्यते नवनीतघृतेन वा ॥

कुष्ठं पथ्या तथा निस्वपत्राणि च मनःशिला ।

तस्मान्मधुघृतैर्मिश्रं निर्धमाङ्गारकं क्षिपेत् ॥

धूपयेद् गुदजान् तेन यथा सम्पद्यते सुखम् ।

मनःशिलानागरकं मगुग्गुलं समापेपम् ॥

देवदारु सपीष्करं विशालासर्जिकारसम् ।

घृतेन धूपयेदेव गुदामयभगन्दरम् ॥

निहन्ति पीनसं दुष्टं व्रणं सपूयगन्धिकम् ।

निर्गुण्डौ पत्रतालञ्च तथा सार्पपत्तर्णक

देवाह्वं घृतशर्करामधुयुतं धूपं गुदाज्जादिकम् ।

दुर्नामि सरुजे व्रणे च विषमे दुष्टे विसर्पेषु च  
 पामापोनसकासनाशनकरो धूपो ग्रहोच्छेदनः ॥  
 एवं क्रियाविधिः प्रोक्तश्चातः पथ्यानि मे शृणु ।  
 शालिर्षाष्टकमुद्गाश्च कुलत्यादक्यवास्तुकम् ॥  
 चिल्ली च शतपुष्पा च कुष्माण्डकपटोलकम् ।  
 कारवेल्लं च तुण्डौरं शूरणी राजिकार्जकम् ॥  
 गुडस्तक्रं घृतं चैव शस्यते चार्शसां मदा ।  
 शूकरः शङ्खको माधा मूपको वा सरौसृपाः ॥  
 लावतिचिदिवात्तीका मांसानि कश्चितानि च ।

वल्लूरमत्स्यर्दाधपिच्छिलतैलविल्व-  
 वात्तीकुर्भोजनमतिप्रतिवर्जनौयम ।  
 निद्राति वा निराश दिवा शयनञ्च शीत-  
 शीतान्तमेव परिवर्जितमादरेण ॥

इति चामद्व्याधिहर्मायते हारीतसंहितायाः तृतीयस्थाने अर्शसां कल्पा नाम  
 द्वादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

अथ कामचिकित्सा ।

आवेद्य उवाच ।

अथ वक्ष्यामि कामानां निदानं सर्चिकित्सितम् ।  
 पञ्चधान्नविहारानि शृणु पुत्र ! महामते ! ॥ १ ॥  
 हास्यान् प्रहास्य रजतानि तथैव रोधात्  
 व्यायामधूमक्षवथु प्रतिरोधनाच्च ।  
 पानान्नशौथेऽप्यतिशीतकसेवनाच्च  
 सञ्जायतेऽपि सनुजां प्रतिधाम कासः ॥

संसेवनान्मधुरपिच्छिलजागरेण  
स्वप्ने दिवातिदधिगौल्यगुडाशनेन ।  
संजायते मदनतैलनिपेवणेन •

मद्येन वा भाविनि संजननं कफस्य ॥

उदान ऊर्ध्वगतिवैपरीत्यात् कफेन प्राणानगतेन दीर्घः ।

ऋदं निरेत्य कफकामकण्ठे करोति तेनापि च कामसंज्ञाम् ॥

कामाश्चाष्टौ समुद्दिष्टाः क्षतजोऽन्यः प्रकीर्तितः ।

वातिकः पित्तकश्चैव श्लेष्मिकः सान्निपातिकः ॥

वातपित्तसमुद्भूतः श्लेष्मपित्तसमुद्भवः ।

सप्तमा लोहितेनात्र चाष्टमा जायते क्षयात् ॥

न वातेन विना श्वासः कामो न श्लेष्मणा विना ।

न रक्तेन विना पित्तं न पित्तरहितः क्षयः ॥

कथितः सम्भवः श्वासश्चातो वक्ष्यामि लक्षणम् ।

येन संलक्ष्यते नृणां कामाश्चाष्टविधः परः ॥

क्षीर्णान्द्रियः पाश्वेरूर्जोऽतिवैमः शूलावृत्तो वा गलके च खड्गः ।

निद्राक्षतिभिन्नरवो मनुष्यो वातेन कामस्य भवेत् प्रकाशः ॥

इति वातकामलक्षणम्

कण्ठे विदाहो ज्वरशोषमूर्च्छा तृणाभ्रमः पित्तभवे च कासः ।

आस्ये कटुत्वञ्च शिरोऽर्त्तिपित्तं निष्ठीवते पीतनखानि नेत्रे ॥

इति पित्तकामलक्षणम् ।

जाड्यं वर्मिः पाण्डुभवञ्च कासं निष्ठीवते यः सघनं कफं वा ।

भक्तारुचिर्वा कफपूर्णदेहं घनः स्वरः श्लेष्मभवे च कासः ॥

इति श्लेष्मभवकासलक्षणम् ।

कण्डूदाहश्वासच्छर्दिशोषारोचकपीडिताः ।

शिरोऽर्त्तिशोथहृत्तासः कासे त्रिदोषसम्भवे ॥

कासः कण्डूः पिपासा च कुक्षिशूलो विनिद्रता ।

शुष्ककासः पिपासा च वातपित्तोद्भवः कफः ॥

धूमगन्धः पीतवर्णोऽक्षिप्रपाको सरक्तकः ।

रक्तनेत्रः पिपासार्तः पित्तश्लेष्मान्वितः कफः ॥

व्यवायातिप्रसङ्गेन वेगरुद्धाभिघाततः ।

भारोद्धरणयानेन जायते क्षतजः कफः ॥

तेन हृदि व्यथा रूचं कासते च मशंगितम् ।

श्वामः सङ्क्षीयते गात्रं दीनो मन्दज्वरातुरः ॥

वेपते पदभेदश्च लोहभ्रमनिर्पोडितः ।

एवं क्षतजनिर्दिष्टो नृणां प्राणाप्रहारकः ॥

इति क्षतजकासलक्षणम्

अल्पायासात् क्षतात् क्षीणात् सभ्यातात् क्षणभोजनात्

पातवायतदीर्घेन जायते रक्तजः कफः ॥

विस्त्रगन्धास्य रुक्मदीर्घो वै विकलैन्द्रियः ।

रक्तनिष्ठाप्रजापितः श्वातेनार्पि मदातुरः ॥

क्षीयते सततं गात्रं मोहश्लृष्णा च जायते ।

इत्येतैर्लक्षणैर्लुका रक्तकासं विनिर्दिशेत् ॥

इति रक्तकासलक्षणम्

अथ क्षयानुमानेन लक्ष्यते कासलक्षणम् ।

पाण्डुरागं तथा यक्ष्मे गुल्मे वापि क्षतक्षये ॥

शोफाशंसां प्रतिश्याये चावश्यं काससम्भवः ।

एतेषां चानुमानेन कासं संलक्षयेद् भृशम् ॥

स्थविराणां रक्तकासः सोऽपि याप्यः प्रकीर्तितः ।

बालानां जायते कासो धातुवैकल्ययोगतः ॥

एते कासाः समुद्दिष्टा दशभिभिषगुत्तमैः ।

तेषां क्रिया प्रतीकारः पथ्यभेषजमेव च ॥

इति कासलक्षणम्

शतमूलिकाक्थितः कषायः पीतः कणाचूर्णयुतः सुखोष्णः ।

नृणां निहन्त्यान्मरुतोद्भवन्तु कामं मशूलञ्च विपाचनं स्यात् ॥

भार्गीशठीगोस्तनीशृङ्गवेरभृङ्गीकणाचूर्णयुतोऽवलेहः ।

गुडेन तैलेन हितो नराणां मरुद्भवश्वासविकारनाशनः ॥

विश्वो दः पृश्नभृङ्गी शठी पृष्करं

दारुभार्गीकणामुस्तं रास्त्रायुतम् ।

शर्करायुक्तमनुदिनञ्च चूर्णं

कामं निःश्वासवातोद्भवं हन्ति वै ॥

इति वातकामचिकित्सा ।

कटफलं कटुत्वं भार्गी मुस्ता वचा धान्यकम् ।

पर्पटं देवदारुस्तथा टावी विश्वायुतकर्कटम् ॥

कल्कयित्वा पानमेतन्मधुसंयुतं च सर्वदा ।

कामिनां श्लेष्मसम्भवं कामं नु प्रतिकरोति ॥

क्षयं पीनसं कण्ठग्रहं शोषवातात्मकम् ।

कफं नाशयत्याशु हिक्काज्वरं श्लेष्मकम् ॥

इति कट्फलादि ।

द्राक्षाफलक्याः फलपिप्पलीनां कोलं सखर्जूरयुतोऽवलेहः ।

रक्तपित्तकामक्षयनाशकारौ सकामलं पाण्डुहलीमकञ्च ॥

बालावृहत्थौ मधुकं वृषञ्च तथैव कुष्ठं पिचुभन्दकञ्च ।

गवास्तनीसंयुतकल्कमेतत् पानं हितं पित्तकफात्मके च ॥

मुस्ताटरूषकफलत्रिकटारुभार्गी

व्याघ्रौ सपुष्पफलमूलदलैरुपेता ।

रास्त्रा विषा च मधुरसुरमादलानि

चूर्णं निहन्ति क्थितेन जलेन कामम् ॥

वङ्गाथवा च गुटिका मधुना गुडेन

सिन्धूद्भवेन मगधा समहौषधेन ।

आस्ये धृता निशि विशालगुणा भवन्ति  
श्वामं क्षयं क्षतजकासमिदं निहन्ति ॥

इति मुस्तादिचूणम्

शर्करा चैव खर्जूरं द्राक्षा लाजा कणा मधु ।  
सपिर्युतो हितो लेहः पित्तकामनिवारणः ॥

इति पित्तकामचिकित्सा

आटरूपकपत्राणि पिचुमन्दटलानि च ।  
तुलसीस्वरमञ्चैव शठी भृङ्गी मरीचकम् ॥  
चूर्णं शुण्ठी गृध्रैर्युक्तं लिह्यात् कामे कफात्मके ।  
भाग्याश्च नागपिप्पल्याः पिबेत् काशं सुखोष्णकम् ॥  
आर्द्रकस्य रसं नीत्वा मधुना च पिबेत् सुधीः ।  
कामे श्वामे प्रतिश्याये ज्वरे श्लेष्मसमुद्भवे ॥  
कट्फलं भृष्टं भार्गी शुण्ठी पर्पटकं वचा ।  
सुराह्वञ्च जलशृतमुक्तञ्च पण्डितैस्तथा ॥  
मधुना संयुतं पानं कामे वातकफात्मके ।  
श्वामे हिक्काज्वरे शोषे महाकामे च टारुणे ॥

इति कफकामचिकित्सा

तालीसपत्रं मरिचञ्च विश्वा श्यामायुतं चोत्तरभागवृद्धया ।  
त्वक् पत्रकेणापि लवङ्गमैलां पिप्पल्यकाष्ठौ गृणितां सिताश्च  
लिह्यात् प्रभाते श्वसने च कामे प्लीहारुचौ पीनसच्छर्दिहिक्का  
शोफातिमारं ग्रहणीञ्च पाण्डुं क्षयनिहन्यात् क्षतजञ्च यक्ष्मम्

इति लघुनालीशदि

तालीशं त्रिफलाप्रियङ्गुमगधामूलञ्च मुस्ता शठी  
दार्यलादलनागकेशरलवङ्गानां तथा नागराः ।  
कृष्णाकोलकबालकं सचविका मूर्वा विषा कर्कटं  
द्राक्षा कुष्ठनिशाग्निवत्सकवृषं गोकण्टतित्ता तथा ॥

हृत्तान्त्रश्च सदाङ्गिमास्त्रकरसं पक्त्वा समांशं भिषक्  
एतेषां समभागचूर्णविहित योज्या समा शर्करा ।  
योज्यं चार्द्धपलं निहन्ति क्षतज कामं तथा श्वासकं  
पाण्डौ कामलमेदशोषगुदजे शस्तं सदा यक्ष्मणाम् ॥

इति वृहत्सालीशायम् ।

आमजे शूलरोगार्त्तिः पर्वभेदो भ्रमः क्लमः ।  
शोषः शिरोव्यथा क्लेदो नेत्रे गन्धौरसिच्छति ॥  
खल्लौ वा चेतन वापि अजीर्णाज्जायते वमिः ।  
सापि स्निग्धा च रुक्षा च द्विविधा जायते वमिः ॥  
गन्धौरनेत्रा वमते विड्बन्धो वातिभार्यते ।  
गात्रे खल्लौकरं शूल तथा शोथार्त्तिसूच्छना ॥  
विकलाङ्गा भ्रमार्त्तश्च भ्रमन्तं पश्यन्तं जगत् ।  
शिराऽर्त्तिर्वपतंऽत्यर्थं करपादो हिमापमौ ॥  
एतैर्लिङ्गैस्तु संयुक्तां हृदि दूरे परित्यजेत् ।  
असाध्या सर्वयोगैस्तु माप्यजीर्णा सुधौमता ॥

इति हृदिर्लक्षणम् ।

सपञ्चमूलौकथितः कषायः समैश्वर्यं चामलकञ्च कल्कः ।  
काथं पिबन्मिश्रितपिप्पलीकं सवातच्छृदिर्विनिवारणञ्च ॥  
दद्यात् क्षीरं शर्करया नरस्य पित्तोद्भूतां वातिशोघ्रं निहन्ति ।  
द्राक्षा वापि क्षीरकाकोलिचूर्णं लेहो हन्यात् सारघेयं पिबन्ती  
फलत्रिकं पुष्करकं वचाञ्च तथा भयासैश्वर्यकं गुडेन ।  
चूर्णं विलिङ्ग्यात् कफवान्तिहन्त नरस्य मूत्रेण युतस्य पानम् ॥

शठो दार्व्यभया शुण्ठौ मागधौ घृतसयुता ।  
चूर्णं तक्रेण संयुक्तं हन्ति हृदि त्रिदोषजाम् ॥  
रक्तशाल्योद्भवा लाजा मधुशर्करयान्विता ।  
ज्वरार्त्तिं प्रवलां शीघ्रं नाशयत्येव मे मतम् ॥

आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु ।  
 गुटिकामलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम् ॥  
 आर्द्रदाडिमतिर्यासश्चाजाजी शर्करान्विता ।  
 सतैलमाक्षिकं वापि चत्वारः कवलग्रहाः ॥  
 चतुरोऽराचकान् हन्ति वाताद्यान् इन्द्रजान् स्त्रियः ।  
 चित्रकटुकरजनौदयञ्च फलत्रिकं मध्वा च यावशृकञ्च ॥  
 समकृतामति चूर्णमेतन्मधुना युतं वमिं निवारयति ।  
 मगुडं दाडिम द्राक्षा पथ्या वा नागरगुडयुक्ता ॥  
 विवृता नागरमथवा गुडेन युक्तं वमिं दधति ।

इति वातक्षार्दचिकित्सा

पपेटं मगुडं काथं शीतलं पथ्येनृणाम् ।  
 हन्ति वान्तिं महाघारां सपित्तां भ्रमसंयुताम् ॥  
 काकोली काकमाचो च काथं शर्करया युतम् ।  
 लाजाशर्करसंयुक्तं हन्ति पित्तवमिं नृणाम् ॥  
 मातुलङ्गरमश्चैव पथ्याशर्करया युतः ।  
 हन्ति कामं पित्तभवं वमिं शीघ्रं नियच्छति ॥  
 दृष्ट्वा पित्तवमिं घारां सदाहभ्रमटापिनौम् ।  
 तस्यारग्वधपत्राणि मधुशर्करयान्वितम् ॥  
 क्षौरपानं प्रशस्तं वा मुस्ताशर्करयान्वितम् ।

इति पित्तक्षार्दचिकित्सा ।

जम्बाम्रकप्रवालानि दाडिमामलकं तथा ।  
 मस्तुनोपोषितं पानं हन्यात् श्लेष्मवमिं नृणाम् ॥  
 सर्जार्जुनधवकदम्बककोलचूर्णं  
 शुण्ठीधन्याकसहितं मगुडं प्रदद्यात् ।  
 श्लेष्मोद्भोवं वमनमाशु निहन्ति पुंसां



शुण्ठीकणामधुविडङ्गयुतोऽपि लेहः ॥

इति ग्रंथमच्छदिविक्रित्वा ।

एलालवङ्गगजकेशरकीलमज्जा  
लाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ।  
चूर्णानि मार्कवसितामहितानि लोढ्वा  
कर्द्विं निहन्ति कफमारुतपित्तजाञ्च ॥  
एलाटलानि गजकेशरकत्वर्गला-  
लामज्जकं दारुमजं घनकं प्रियङ्गुम् ।  
संचूर्णितं मगधजाममचन्दनञ्च  
लोढ्वा सितामममथो वसनं निहन्ति ॥

अत एलाद्यं मेघजम् ।

ऊर्ध्वभागगते दोषे विरेकी हि प्रशस्यते ।  
तस्मिन् जातेऽप्यधोभागे वसनं शास्यति ध्रुवम् ॥  
अथ द्विभागमासञ्चेत्तदा देयाऽभया मधु ।  
क्रिमिजं वसनं ज्ञात्वा क्रिमौणां वसनक्रिया ॥  
न चोष्णं नातिचाम्नञ्च न तौक्ष्णं न तथा लघु ।  
तण्डुलीयकशाकं वा न मद्यं कार्श्लिकं न तु ॥  
वमिदोषे च कथितं पथ्यं चात्र शृणुष्व मे ।  
आनूपं शालिभक्तं च शतपुष्पा च वास्तुकम् ॥  
आढकी मुद्गयूपञ्च दधि सर्पिर्गुडान्वितम् ।  
अङ्गारमृण्डका चाथ वमो पथ्यं प्रशस्यते ॥  
यथाबलं यथा कालं यथारोगं यथानलम् ।  
तथा दृष्ट्वा प्रकुर्वन्ति पथ्यानां समुपक्रमम् ॥  
दिवानिद्रां प्रयुञ्जीयाद् वमो श्वासेऽतिसारके ।  
हिक्काशोषे तथाजीर्णे वमिक्लेदेऽथवा पुनः ॥

न चीणातीयपानञ्च नातिभोजनमेव च ।

न धावनं च कर्त्तव्यं वर्जयेद्दमनार्दिते ॥

इति शीमद्वर्णवैद्यभाषिते हारीतौत्तरे तृतीयस्थाने हृदिचिकित्सा नाम  
त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ तृणातालशोषचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

भयात् श्रमाद्दीर्घहीनाद्रूक्षात् हिदलसेवनात् ।

आतपे वा ज्वरे जीर्णे क्षयाच्च क्षतजात् तथा ॥

यत्ते सङ्क्षुपिता दोषा वातपित्तकफास्त्रयः ।

अतुर्थी क्षतजा प्रोक्ता पञ्चमी क्षयजा स्मृता ॥

अजीर्णाच्च भवेत् षष्ठी सप्तमी रुक्षसेवनात् ।

अष्टमी स्याज्ज्वरोत्पन्ना लक्षणानि शृणुष्व मे ॥

क्षामः श्यावास्यता चाथ वैरस्यं वेपथुस्तथा ।

यत्तेन सा भवेत् तृणा विज्ञेया भिषजां वरैः ॥

शीततोयाभिलापश्च भ्रमदाहप्रलापकः ।

सूर्क्षा च लोहितं नेत्रे तृणा पित्तोद्भवा मता ॥

निदाश्यावास्यताऽलस्यं बलासोष्णाभिलापता ।

घनश्यावाङ्गशैत्यञ्च श्लेष्मणी जायते तृणा ॥

दृक्शूलं वमते दाहो भ्रमो वा शिरसो व्यथा ।

वेपथुश्चाङ्गशैत्यञ्च त्रिदोषप्रभवा तृणा ॥

इति त्रिदोषतृणालक्षणम्

वक्त्रशोषो भवेज्जृम्भा शिरोऽर्त्तिर्गुरुतोदरे ।

अजीर्णेनाथ मनुजे तृणा संलक्ष्यते गदः ॥

रसक्षये यदा तृणा तदा क्षामः क्षुधातुरः ।

क्लानिः शोषो भ्रमः श्वासो दैन्यमाशु प्रवर्तते ॥  
 क्षतक्षयेषु या तृष्णा तस्या नामाभिनन्दनम् ।  
 अन्या ज्वरातुरे प्रोक्ता तृष्णा सा ज्वरवेगजा ॥  
 अन्याऽतिमारे शूले वा तृष्णा ज्ञेया भिषग्वरेः ।  
 तृष्णातिसारवमनदाहमूर्च्छास्तृषोद्भवाः ॥  
 न याति तृप्तिं तोयेनाऽसाध्यां ताञ्च विदुर्बुधाः ॥

इति तृष्णालक्षणम् ।

तृष्णां वातोद्भवां दृष्ट्वा शस्यते सगुडं दधि ।  
 सगुडं वाऽमृताकाथं पीतं वाततृषापहम् ॥  
 शुण्ठीं त्वजाज्या सह शृङ्गवेरं जलेन सौवर्चलयुक्तकल्कम् ।  
 पिबेत् कषायं च सुशीतलं वा वातोद्भवां चाशु निहन्ति तृष्णाम्

इति वाततृष्णा ।

काश्मर्यं पद्मकोशीरं द्राक्षा मधुकचन्दनम् ।  
 बालकं शर्करायुक्तं काथं पित्ततृषापहम् ॥  
 वटद्रुमो रोध्रसिता च चन्दनं सदाङ्गिमं तण्डुलधावनेन ।  
 पिष्टं सुशीतेन जलेन वापि पीतं च पित्तीत्यतृषापहञ्च ॥  
 कुष्ठमुत्पलं लाजाञ्च न्यग्रोधस्य प्ररोहकान् ।  
 संचूर्ण्य शर्करायुक्ता गुटिका तृड् विनाशिनी ॥  
 द्राक्षोत्पलं यष्टिमधु शस्तमिक्षुनिषेवणम् ।  
 पीतं पित्तोद्भवां तृष्णां हन्ति दाहञ्च पित्तजम् ॥  
 आकण्ठं शर्करायुक्तं क्षीरं वापि पिबेन्नरः ।  
 वमनञ्च तदा कृत्वा हन्ति तृष्णां सपैत्तिकीम् ॥  
 लोद्ध्रप्रतप्ततोयञ्च निर्य्याप्य शीतलीकृतम् ।  
 पिबेत् तृष्णाविनाशाय जलं वा चन्दनान्वितम् ॥

इति पित्ततृष्णा ।

जम्बाम्रकप्रवालानि तथा लाजा च चन्दनम् ।  
 धातकीकुसुमानि स्युः पिष्टवासारसैर्युतः ॥  
 श्लेष्मटणापहो लेहो दाहमूर्च्छाभ्रमापहः ।  
 पिवेच्चाटुकयूपञ्च लाजाशर्करयान्वितम् ॥  
 क्षीरपानं समरिचं जलं वा मरिचान्वितम् ।  
 श्लेष्मटणाविनाशाय पिवेद्वा कोलकं पयः ॥

इति श्लेष्मटणः

दुरालभा पर्पटकं प्रियङ्गु लोध्रद्रुमं चूषणकं सकुष्ठम् ।  
 काथः सुशीतो मधुशर्करायास्तृणां त्रिदोषप्रभवां निहन्ति  
 कोलदाडिमवृक्षास्त्राः सारिवा समशर्करा ।  
 पथ्या दाडिमचूर्णं वा मातुलुङ्गरसान्वितम् ॥

इति त्रिदोषहः

काष्ठपात्रे शृतं सम्यक् शीतलं मलिलं तथा ।  
 मर्दितं बहुवारं वा तत्र पानीयञ्च पाययेत् ॥  
 तालुशोषे घृतं तत्र दापयेच्च भिषग्वरः ।  
 तृणादाहभ्रमच्छर्दिशोषमूर्च्छां व्यपोहति ॥  
 क्षतजां क्षयजां तृणां वारयत्याशु निश्चितम् ।  
 दाडिमं कोलचुक्रिका वृक्षास्तं चाम्लवेतसम् ॥  
 रसं चैव तथा पथ्यायुक्तं तालुप्रलेपनम् ।  
 वारयत्याशु शोषं च तृणां हन्ति च सज्वराम् ॥

इति दाडिमकोलः

केशरं मातुलुङ्गस्य पिष्टं तण्डुलवारिणा ।  
 प्रतप्तमधुना तालुलेपः शोषापहः परः ॥  
 मधुशर्करया तालुलेपः शोषनिवारणः ।  
 पद्मकन्दशृतालेपः शीतः शीतलवारिणा ॥  
 तालुशोषं निहन्त्याशु जम्बाम्रपल्लवानि च ॥

निम्बान् वा मातुलुङ्गान् वा सौवीरं नागराणि च ॥  
 शोफार्तः पुरतो भक्षेत् न देयं तस्य धीमता ।  
 दर्शनात्तस्य चास्ये च लाला प्रस्रवते भृशम् ॥  
 तेनास्य शोषं हरति तृणामपि नियच्छति ।  
 रक्तशाल्योदनं शस्तं दधि शर्करयान्वितम् ॥  
 भोजनञ्च प्रशस्तञ्च न क्षारं कटुकं पुनः ।  
 शोषे च कृदिहृणायां शमे पाजात्ययेऽपि च ।  
 अतौसारं च शोषे च दिवानिद्रा सुखावहा ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रिभार्षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने तृणातान्शोफचिकित्सा  
 नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ मूर्च्छाचिकित्सा ।

आविद्य उवाच ।

प्रकाभिघातातिनिरोधकेन क्षीणक्षताद्वै तृपितेन वापि ।  
 विरुद्धयुक्तान्नविभक्षणेन दोषः प्रदुष्टः प्रकरोति मूर्च्छाम् ॥  
 पञ्चेन्द्रियाणां संलग्नाः प्रत्येके द्वादशादयः ।  
 पञ्चेन्द्रियाणां सहिता नाडिकाः पाष्टिसंश्रया ॥  
 रुन्धन्ति नाडिकाद्वारं तेन चेतो विमूर्च्छति ।  
 संज्ञानाशाद् भवेच्छीघ्रं निश्चेताश्च सदा नरः ॥  
 पततेऽकाष्ठवत् तूर्णं मोहमूर्च्छा निगद्यते ।  
 सा षड्विधा समुद्दिष्टा वातपित्तकफात् तथा ॥  
 शोणितादभिघातेन मद्येनाथ विषेण वा ।  
 एतेषां कोपयेत् पित्तं मरुद्रक्ते समीरितम् ॥  
 संज्ञादौर्वल्यकं तेन मूर्च्छामोहः प्रकथ्यते ।

कथयामि समासेन लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥  
 नीलं कृष्णारुणं पश्येत् तमः प्रविशति क्षणात् ।  
 कम्पो माद्वंमेतासां क्षणेन प्रतिबुध्यते ॥  
 वातेन मूर्च्छा भवति कृशता विकृतास्थता ।  
 नेत्रप्लावश्च मृष्टिश्च आध्मानश्च भवेत् क्षणम् ॥  
 पीतञ्च नीलहरितं तमः प्रविशते भृशम् ।  
 सन्तापश्च पिपासा च रक्ते पीते च लोचने ॥  
 सस्वेदं शरीरं चापि अमः सभिन्नवर्चसाम् ।  
 पित्ताद्भवति मूर्च्छात्वं जायते च शिरोव्यथा ॥  
 धूमाकुलां दिश पश्येत् तमः पश्यति यः पुरः ।  
 नेत्राकुलत्वं मन्दान्निस्तमोऽङ्गेषु च शीतता ॥  
 चिरात् प्रबुध्यतेऽत्यर्थं कण्ठश्च घूर्धुरायते ।  
 हृत्ताममूर्च्छा भवति कफघ्ना च विलक्षणा ॥  
 सन्निपाताटपस्यारो दृश्यते भिषजां वरः ।  
 स प्राणिनं घातयति रक्तेन सहितो यदि ॥  
 स प्राणिघातं कुरुते नरं चाशु तमोवृतम् ।  
 रक्तगन्धेन मूर्च्छन्ति तेन मूर्च्छा शिरोव्यथा ॥  
 कम्पते नष्टचेष्टत्वं जल्पते वसते पुनः ।  
 विभ्रान्तचेता रक्ताक्षः स्वप्नशीलः सुरावशः ॥  
 क्षतक्षयाद्भवेच्चान्या कोद्रवान्ननिषेवणात् ।  
 जायते मोहमूर्च्छा च तेन निद्रातिदुर्मनाः ॥  
 पित्ताधिक्याद्भवति वै मनुजस्य मूर्च्छा  
 पित्तप्रभञ्जनभवं भ्रममेव पुंसाम् ।  
 तातात् कफाद् भ्रमयुता मनुजस्य तन्द्रा  
 निद्रा कफानिलभवा भजते नरस्य ॥

स्वेदाभिषङ्गविधिमर्दनवातशान्त्यै  
श्रीतान्नपानव्यजनानिलपित्तशान्त्यै ।  
कषायपानमपि तथैव सदा प्रशस्तं  
श्लेष्मोद्भवा विनिहिता भ्रममूर्च्छना वा ॥

पाययेत् त्रिफलीकाथं शीतं शर्करया युतम् ।  
दुरालभायाः काथञ्च पाययेत् शर्करान्वितम् ॥  
कणां कोलस्य मज्जाञ्च केशरीशीरचन्दनम् ।  
पिष्ट्वा श्रीताम्बूना खण्डपानं हन्ति विमूर्च्छितम् ॥  
रक्तजां मूर्च्छनां दृष्ट्वा विधेयः शीतलो विधिः ।  
क्षयजे दुर्बले क्षौणे मूर्च्छापोषणकारणम् ॥  
नष्टचेष्टत्वमापन्ने नरे सञ्चेतनक्रिया ।  
संपीड्य च नराङ्गुष्ठं नामिकां च प्रपीडयेत् ॥  
दन्तैर्वा मन्दंशैर्वापि शनेर्गात्रं प्रपीडयेत् ।  
दाहयेद्वा ललाटे तु पृष्ठदेशे च भालके ॥  
एव न सिध्यते यत्र तदा चान्दोलनं हितम् ।  
मूर्च्छातुरं विमलशीतजलेन सिञ्चेत्  
संवीजयेच्च शिखिपिच्छकवीजनैस्तु ।  
टोलायनं हि विहितं मनुजस्य मूर्च्छा-  
मोहं भ्रमञ्च हरते च मदात्ययं वा ॥

इति मूर्च्छाचिकित्सा ।

करञ्जवीजं सह सैन्धवेन रसोनपत्रस्य रसञ्च तत्र ।  
मार्कं च पैथ्यञ्च वचा जलेन पिष्ट्वाऽञ्जनं हन्ति दिनस्य तन्द्राम् ॥  
घोटकलालामरिचं लवणयुतं नेत्रयोरञ्जनं शस्तम् ।  
विनिहन्ति दिनगतां तन्द्रां निद्रां वा मानुषस्य ॥  
सुगन्धं सुकषायोपयुक्ता रसस्त्रिफला गुडार्द्रकं प्रातः ।  
सप्ताहान्मधुरजलं हन्ति मदमूर्च्छाकरानुन्मादान् ॥

रक्तकर्षणमिच्छन्ति मोहमूर्च्छाप्रशान्तये ।

तस्मादवहितः कुर्यात् तासु रक्तावसेचनम् ॥

इति मूर्च्छामदभमचिकित्सा

शीतसेवावगाहाद्यं श्रीखण्डं व्यजनानिलान् ।

शीतानि चान्नपानानि सर्वमूर्च्छासु योजयेत् ॥

शर्करैक्षुरसद्राक्षावातमूर्च्छाप्रदानकैः ।

काश्मर्यमधुकैरेव पित्तमूर्च्छां जयेन्नरः ॥

यष्ट्याः काथं शृतं सर्पिः शृतं वामलकीरमम् ।

पिबेद्रसं पिबेत्ताजायुक्तं चाणञ्च शीतलम् ।

मधुना हन्ति वै मूर्च्छामालेपेन प्रबोधयेत् ॥

इति शीतद्वयवधमापितं हारीतोत्तरं तृतीयस्थाने मूर्च्छानिचिकित्सा

नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः ।

धुरिणां गीतैर्नृत्याद्यैस्तन्द्रां निद्रां दिवा जयेत् ।

यदा रात्रौ न निद्रा स्यात् तदा कुर्यादिमां क्रियाम् ।

काकमाच्यास्तु मूलञ्च शिखां बद्ध्वा भिषग्वरः ।

अधोमुखीं शिखां बद्ध्वा निद्रां जनयते निशि ॥

मस्तुना पादतलकौ मर्दयेन्निद्रयार्थिनाम् ।

यस्य नो दिवसे निद्रा तस्य निद्रा निशासु च ॥

भयचिन्तालोभहेतोर्या निद्रा न भवेन्निशि ।

तां चिन्तां च परित्यज्य निद्रा सञ्जायते क्षणात् ॥

सिंही व्याघ्री सिंहमुखी काकमाची पुनर्नवा ।

वार्त्ताकानां च मूलानां काथो निद्राकरो नृणाम् ॥



काकजङ्घा त्वपामार्गः कोकिलाक्षः सुपर्णिका ।

काथो निद्राकरः शीघ्रं मूलेन बन्धयेच्छिवाम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने तन्द्राचिकित्सा

नाम षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ मदात्ययचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

हालाहलाहलममं भजते वियोगात्

मेथ्यानां शिष्यानुजानां कथितं मुनीन्द्रेः ।

तृष्णा वमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा

मञ्जायनेऽतिसरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥

ये नित्यमेवनादृष्टा मद्यस्य मनुजा भृशम् ।

विषमाहारमदृशी सुरा तेषाञ्च मोहनी ॥

यथा विषं प्राणहरं वियोगाद् योगेन तं चाप्यमृतं वदन्ति ।

तथा सुरा योगयुता हिता स्यात् अयोगतश्चारभतेऽतिकष्टम् ॥

क्षुधातुरे तृपाक्रान्ते सुरा वा भोजनं विना ।

न च क्षीणैर्विना भक्ता विनाहारातिपानकम् ॥

अत्यग्नेऽप्यजीर्णेऽपि सुरा पीता रुजाकरी ।

यस्य प्रलपनं चापि न च वातमदात्ययः ।

दाहमूर्च्छातिमारश्च ज्वरः पित्तमदात्यये ॥

ऊर्ध्वरोचकहृत्क्षामतन्द्रास्तैमित्यगौरवम् ।

शीतता च प्रतिश्यायः कफजे च मदात्यये ॥

त्रिषु दोषेषु समता लिङ्गैर्येषामुपक्रमः ।

स त्रिदोषममुद्भूतो भिषग्वर ! मदात्ययः ॥

वमने तु प्रशस्तञ्च निद्रासंसेवनं पुनः ।  
 स्नानं हितं पयःपानं भोजने सगुडं दधि ॥  
 मस्तुखण्डं सखर्जूरं मृद्वीका दाडिमाम्लिका ।  
 आमला च परूषञ्च लेहो हन्ति मदात्ययम् ॥  
 द्राक्षांमलकखर्जूरपरूषकरसेन वा ।  
 कल्कयेत् पयसा तत्तु पानं सर्वमदात्यये ।  
 पथ्याक्वाथेन संयुक्तं पयःपानं मदात्यये ॥

इति मदात्ययचिकित्सा ।

अथ पूगीफलमदात्ययचिकित्सा आरभ्यते ।

पूगीफलमदे कम्पो मोहो मूर्च्छा क्षमस्तमः ॥  
 प्रस्वेदो विधुरत्वञ्च लालास्रावश्च जायते ।  
 भ्रमस्तमपरीतत्वं विज्ञेयं पूगमूर्च्छिते ॥  
 मानवो लक्षणैरेभिर्ज्ञेयः पूगविमूर्च्छितः ।  
 तस्य शीतं जलं पीतं वस्तिवातहितं भवेत् ॥  
 शर्करा भक्षणे देया मुस्ता वा शर्करान्विता ।  
 कोद्रवान्नभवमूर्च्छायां देयं क्षीरं सुशीतलम् ॥  
 धुस्तूरकमदे देयं शर्करासहितं दधि ।  
 फलिनी करवीरञ्च मोहिनी मदयन्तिका ॥  
 अन्येषामपि कन्दानां वमनञ्चाशु कारयेत् ।  
 पाययेत् शर्करायुक्तं क्षीरं वा दधि शर्कराम् ॥

इति श्रीमहर्षात्रेयभाषिते हारौतोत्तरे तृतीयस्थाने मदात्ययचिकित्सा

नाम सप्तदशीऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथ दाहचिकित्सा ।

आवेय उवाच ।

समानः संक्रुद्धो रुधिरमपि पित्तं त्वचि गते  
नरस्याङ्गे दाहं भवति नितरां घोरमपि च ।  
क्वचिद्दन्तोद्धर्षो भवति मनुजां दाहजनितो  
भवेत् शीतस्यार्त्तिः श्वसनमपि वा शोषमरतिः ॥  
पित्तज्वरसमानानि लक्षणानि भिषग्वर ! ।  
पित्तज्वरवदारभ्या क्रिया दोषोपशान्तये ॥  
कुशकाशेक्षुमूलानामुशीरं घनवालुकौ ।  
क्वाथः शर्करया युक्तः शीतदाहं नियच्छति ॥  
पर्पटः सघनीशीरः कथितः शर्करान्वितः ।  
शीतपानं निहन्त्याशु दाह्यं पित्तज्वरं नृणाम् ॥  
लामज्जचन्दनोशीरैर्लेपनं दाहशान्तये ।  
वीजयेत् तालवृन्तैश्च कदल्यभोजसंस्तरे ॥  
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ।  
शस्यते शीतलं वारि दाहलृणानिवारणे ॥  
उत्तानस्य प्रसुप्तस्य नाभेरुपरि धारयेत् ।  
कांस्यपात्रं तथा हृद्यं धाराभिः शीत वारिणः ॥  
पूरयेत् सततं यत्नात् तेन सौख्यं समश्नुते ।  
शतधीतं घृतं वापि तद्दाहोपरि धारयेत् ॥  
मधु ध्वत्रीफलं वापि सिताजलविलेपनम् ।  
दाहशोषातुरस्यापि लेह्यं वा सुखकारकम् ।  
जम्बाम्त्रपल्लवान् निम्बं वीजपूररसेन तु ॥  
पिष्ट्वा प्रलेपनं दाहे शीघ्रं सुखमभीप्सति ।  
धारागारमथो सुशीतलशशी ज्योत्स्ना च पानानि च

वातः शीतलचन्दनञ्च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा ।  
 रामागूहनमर्दनं स्तनयुगे शुक्लार्द्रवस्त्राणि च  
 क्षीरं शर्करशङ्खलोहरजतं दाहप्रशान्त्यै हितम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतसंहिते तृतीयस्थाने दाहचिकित्सा नाम  
 अष्टादशोऽध्यायः ।

ऊनविंशोऽध्यायः ।

अथापस्मारचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

पित्तं मरुच्च श्लेष्मा च उदानः कुपितो भृशम् ।  
 प्राणः शिरसि सङ्कुप्य कुरुते नष्टचेष्टताम् ॥  
 प्राणान्नयत्यचेतन्यं नाडीं चेन्द्रियरोधनम् ।  
 पतते काष्ठवस्त्रोको मुखे लालां विमुञ्चति ॥  
 कण्ठञ्च घुर्घुरायेत फेनमुद्गिरतेऽथवा ।  
 कम्पे ते हस्तपादौ च रक्तव्यावर्त्ति लोचनम् ॥  
 अपस्मारे च लिङ्गानि जायन्ते भिषजां वर ! ।  
 व्यावृत्तं लोचनं क्षामं तमो दाहः शिरोव्यथा ॥  
 हतप्रभेन्द्रियसंज्ञश्चापस्मारो विनश्यति ।  
 तस्य पानाञ्जनालेपमर्दनं पानमेव च ॥  
 उपाचर्यमपस्मारे घृतं तैलञ्च धीमता ।  
 अगस्तिपत्रं मरिचं मूत्रेण परिपेषितम् ॥  
 नस्ये शस्तमपस्मारं हन्ति शीघ्रं नरस्य तु ।  
 बन्ध्याकर्कोटिकामूलं घृतं शर्करयान्वितम् ॥  
 नस्ये वापि प्रयोक्तव्यमपस्मारप्रशान्तये ।

कुष्माण्डखण्डाश्च रसाश्च पक्वाः सत्रूपषणैलादलनागकेशरम् ।  
 कुमेथिकाग्रन्यिकधान्यकानां समांशकेनापि सिता प्रयोज्या ॥

प्रभातके भक्षणकं विधेयं तस्योपरि क्षीरमितं प्रशस्तम् ।  
 निहन्त्यपस्मारविकारमाशु प्रणाशयेत् शीघ्रमसृग्विकारम् ॥  
 कुष्माण्डवल्ली षड्ग्रन्था शङ्खपुष्पी पुनर्नवा ।  
 सुरसासहितं चूर्णं शर्करामधुसंयुतम् ॥  
 अपस्मारविनाशाय भक्षणे हितमेव च ।  
 उन्मादे पित्तरक्ते च बन्ध्याया गर्भदायकम् ॥  
 रास्त्रामागधिकामूलं दशमूलं शतावरी ।  
 शणचिवृत्तथैरण्डो भागान् द्विपलिकान् क्षिपेत् ॥  
 यष्टिमधुकसृद्धौका शङ्खपुष्पी शतावरी ।  
 रास्त्रा समङ्गा शृतकं त्रिसुगन्धञ्च भीरुकम् ॥  
 कुष्ठं तद्वैपकञ्चैव घृतं योज्यं भिषग्वरैः ।  
 हन्त्यपस्मारमुन्मादं रक्तपित्तं गुदामयम् ॥

इति कुष्माण्डकं नाम घृतम् ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च ।  
 पचेत् घृतं पुराणञ्च अपस्मारं नियच्छति ॥

इति ब्राह्मीघृतम् ।

महावलाढ्यं तैलञ्च वस्तौ नस्ये प्रशस्यते ।  
 शतावर्ष्यादिकञ्चापि सदैव च हितं भवेत् ॥  
 चन्दनाद्यं घृतञ्चैव प्रयोज्यं चात्र चोत्तमैः ।  
 अपस्मारे वाप्युन्मादे वातरोगेऽथवा हितम् ॥  
 त्रूप्रणं त्रिफला हिङ्गु सैन्धवं कटुका वचा ।  
 नक्तमालकवीजानि तथा च गौरसर्षपाः ॥  
 वस्तमूत्रेण पिष्टा तु गुटी क्वायाविशोषिता ।  
 अश्वत्थं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्चैव दारुणम् ॥  
 स्मृतिभ्रंशभ्रमौदोषभूतदोषविनाशनम् ।  
 ऐकाहिकं द्वाहाहिकञ्च ज्वरं चातुर्थकं हरेत् ॥

तिमिरं पटलं हन्ति रात्र्यन्धश्च शिरोरुजम् ।

सन्निपातविस्मरणं चेतयत्याशु मानवम् ॥

इति दूषणाद्या गुटिका ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं यष्टीत्रिगन्धवासकम् ।

मञ्जिष्ठाभौरुसृङ्घोकापाठाश्यामाप्रियङ्गुभिः ॥

स्वयंगुप्ता पीलुपर्णी विषा रास्ना गवादनौ ।

काकोत्थी जीवकं मेदे पुष्करं घनवालुकम् ॥

विदारौ चैव वासन्ती वृद्धं दन्तौ विडङ्गकम् ।

पद्मकञ्चैन्द्रवृक्षश्च तथारग्वधचित्रकम् ॥

धान्यकं पञ्चजीरेण तथा तालीशपत्रकम् ।

खादिरं नगरञ्चैव कालौयकञ्च केकतम् ॥

नागकेशरकञ्चैव परूषञ्च समांशिकम् ।

सखर्जूरं भिषक् सम्यक् सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥

भावितं पुनरेवञ्च मधुना सघृतेन च ।

लेहाऽयञ्च सदा शस्तश्चापस्मारेऽतिदारुण ॥

उन्मादे कामलारोगे पाण्डुरोगे हलोमके ।

राजयक्ष्मे रक्तपित्ते पित्तातिसारपीडिते ॥

रक्तातिसारं शोषे च शिरोरोगे सदाज्वरे ।

तमकभ्रमके कृदिदाहे च समदात्यये ॥

अश्मर्याञ्च प्रमेहेषु कासे श्वासे च पीनसे ।

एतेप्राञ्च प्रयोक्तव्यः सर्वरोगनिवारणः ॥

बन्ध्यानाञ्च प्रयोक्तव्यो वृद्धानाञ्च विशेषतः ।

वालानाञ्च हितश्चैव शृणु चात्र प्रमाणकम् ॥

उत्तमे क्षीरमात्रञ्च पादहौनस्तु मध्यमे ।

दद्यात् क्षीरयुतं स्त्रोणां बालानां क्षीरसंपुतम् ॥

एवं प्रयोजितो रोगे महाकल्को मतो बुधैः ।

धलवान् गुणवांश्चैव भवतीह फलप्रदः ॥

वरकुञ्जरवाहानामुपयुक्तो हितो मतः ।

भिषग्भिः कथ्यते लेहः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥

इति चन्दनाद्यं चूर्णम् ।

द्राक्षा दारु तथा निशा च मधुकं कृष्णा कलिङ्गा त्रिवृत्  
यष्टिका त्रिफला विडङ्गकटुकासृक्चन्दनं दाडिमम् ।  
चातुर्जातकनिम्बकाच तुरगी तालीशपत्रं घना  
मेदे हे सुरदारु कुष्ठकमलं रोध्रं समङ्गा वरी ॥  
भार्गीकोलकदाडिमाम्बुसहितं काश्मर्य्यशृङ्गाटकं  
काम्बोजा शणघाण्टिका लघुतरा क्षुद्रा च रास्त्रायुतम् ।  
चूर्णं शर्करया समं मधु घृतं खर्जूरकैः संयुतं  
लिङ्गात् कर्षमिदं समस्तवलकत् हन्यादपस्मारकम् ।  
उन्मादश्च सुदारणं क्षयमथो यक्ष्मा च पाण्डुं गदं  
कासासृग्धिरप्रमेहगुदजं स्त्रीणां हितं शस्यते ॥

इति द्राक्षावलेहः ।

एतैर्यदि न सौख्यं स्यात् दहेल्लोहशलाकया ।  
ललाटे च भ्रूवोर्मध्ये दहेद्वा मूर्ध्नि मानवम् ॥  
वर्जयेत् कटुकं चाम्बु रक्तपित्तविकारिणाम् ।  
विशेषेण वर्जनौयं सुरापूगकषायकम् ।  
न सेव्यानि ह्यपस्मारे मोहमूर्च्छाकराणि वा ॥

इति श्रीमृहर्ष्याविद्यभाषिते हारीतीक्षरे तृतीयस्थाने अपस्मारचिकित्सा

नाम ऊनविंशोऽध्यायः ।

## विंशोऽध्यायः ।

अथोन्मादनिदानम् ।

आत्रेय उवाच ।

अयं मानसको व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ।  
 प्रमत्ता ऊर्ध्वगा दोषा ऊर्ध्वं गच्छन्त्यमार्गताम् ॥  
 उन्मादो नाम दोषोऽयं कष्टसाध्यो भिषग्वरैः ।  
 सोऽपि पृथग्विधैर्दोषैर्द्वन्द्वजोऽन्यः प्रकीर्तितः ॥  
 तथान्यः सन्निपातेन विषाद्ववति चापरः ॥

अशुचिविषयशून्यागारकेऽरण्यमध्ये  
 सभयगहनवीथीदेवतागारके च ।  
 अथ कथमपि भीत्याशङ्कया खिन्नचेतः  
 क्षुभितविविधचेष्ट स्थाज्य उन्माद एति ॥  
 चिन्ताव्यथासुभयहर्षविमर्षलोभात्  
 देवातिथिहिजनरेन्द्रगुरुप्रधर्षात् ।  
 प्रेमाधिकं युवतिजनस्य च विप्रयोगात्  
 उन्मादहेतु च नृणां कथितं वरिष्ठैः ॥

तेन गायति वा रौति विरूपं पठते तथा ।  
 लोलयेच्छर्दते वापि कम्पते हसते तथा ॥  
 धावते सहसा चैव चाकस्माच्चैव क्रन्दति ।  
 नरो वा भ्रमतेऽत्यर्थं पश्येद्दहनमथातुरः ॥  
 तस्यापस्मारकं कर्म कर्तव्यं भिषजां वरैः ।  
 विशेषेण भूतविद्यामध्ये वक्ष्यामि चाग्रतः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूर्च्छानिदानं नाम

विंशोऽध्यायः ।



एकविंशोऽध्यायः ।

अथ वातव्याधिचिह्ना ।

आत्रेय उवाच ।

चतुरशीतिर्विख्याता नृणाम् वाता रुजाकराः ।  
 तेषां निदानं वक्ष्यामि समासेन पृथक् पृथक् ॥  
 विरुद्धचिन्ताशनजागराच्च व्यायामतस्यापि तमोऽभिषङ्गात् ।  
 असृग्विरेकाद्विषमासनेन सन्धारणात् प्राणसमानरोधात् ।  
 अध्वश्मच्चीणवलेन्द्रियाणामासन्नतो धातुगतोऽपि वायुः ॥  
 प्राणापानसमानस्य उदानो व्यान एव च ।  
 एषां दोषाद्भवन्त्येते वातदोषाः पृथक् पृथक् ॥  
 शिरःशूलं कर्णशूलं शङ्खशूलमसृग्गदः ।  
 अर्द्धशीर्षविकारश्च दिनवृद्धिसमुद्भवः ॥  
 नासिकोपद्रवो वापि मन्यास्तम्भो हनुग्रहः ।  
 जिह्वास्तम्भस्तालुशूलं तथा च तमकं भ्रमः ॥  
 तन्द्राश्वासगलाद्याश्च षोडशैते शिरोगताः ।  
 प्राणापकोपतो यान्ति पित्तेन सममीरिताः ॥

इति षोडशविधशिरोगतप्राणवायुप्रकोपः ।

भगन्दरो वस्तिशूलो मेहार्शश्चातिकोठकः ।  
 लिङ्गदोषो गुदभ्रंशस्तथान्यो गुदशूलकः ॥  
 मूत्ररोधो विङ्ग्विरोध एते दश विजानता ।  
 अपानस्य प्रकोपेन विज्ञेयास्तु प्रधानतः ।  
 एते विकाराः कथिता विस्ताराश्च प्रकीर्तिताः ॥

इति दशविधापानवायुप्रकोपः ।

शूलं गुल्म उदावर्त्त आधानोदररुक् तथा ।  
 परिणामो विषमाग्निरजीर्णं वातगुल्मकः ॥  
 परिक्षेदी रसशेषो रसश्च मलवाहकः ।

बन्धी भेदी विलासी च षोडशैते समानतः ॥

इति षोडशविधसमानप्रकोपः ।

हिकाश्वासः परिश्वासः कासः शोषार्तिघण्टिका ।

हृत्तासो हृदिशूलश्च यक्तदातादिका वमिः ॥

क्षवथुर्जृम्भणश्चैव तथा वैस्वर्यपीनसः ।

अरुचिश्च प्रतिश्याय एते प्रोक्ता उदानतः ।

उदानः श्लेष्मसंयुक्तो दोषात् हृदि प्रकुप्यति ॥

इति षोडशविधोदानप्रकोपः ।

हृदिस्तम्भः पृष्ठस्तम्भ ऊरुस्तम्भश्च गृध्रसी ।

पृथक् तेन च कथितमग्रे शृणुष्व कोविदः ।

एते व्यानप्रकोपेन षोडशैव प्रकीर्त्तिताः ॥

इति व्यानप्रकोपः ।

वक्ष्यामी व्याननाम्नस्तु मारुतस्य प्रकोपनम् ।

वातः सर्वाङ्गको धातुविकारं कुरुते भृशम् ॥

स च धातुगतो ज्ञेयस्तथा प्रोक्तः पृथक् पृथक् ।

त्वग्गते रोमहर्षश्च मन्वास्तम्भनमेव च ॥

मांसगे शोथतोदश्च भेदोगे चैव कम्पनम् ।

भङ्गतास्थिगते वाते पतनं मज्जगे भवेत् ॥

शुक्रगे सन्धिशोथश्च तस्मात् त्वग्वातलक्षणम् ।

एतैर्धातुगतान् वातान् साध्यासाध्यान् निरोधयेत् ।

सत्यक्तमांसमेदःस्थो वायुः सिध्यति भेषजैः ॥

अन्यं कष्टेन सिध्यन्ति न सिध्यन्त्यथवा पुनः ।

लोमहर्षो भवेत् तादो निद्रानाशोऽरुचिस्तमः ॥

गात्रं सूचौव विध्यत भ्रमन्त्येव पिपीलिकाः ।

रूक्षत्वं त्वग्रसे नेत्रे कृशत्वं जायते पुनः ॥

रजसः शुक्रस्य गर्भस्य नाशो भवति वेपथुः ।

मन्दान्नित्वञ्च भवति स्वप्नानि च स पश्यति ॥  
निद्रानाशः क्षोभयति सामान्यं वातलक्षणम् ।  
मुहुराक्षेपयेद्वात्रं भेदस्तोदो बहुस्वरः ।  
स चैवाक्षेपको नाम जातो व्यानप्रकोपतः ॥

इत्याक्षेपको वायुः ।

धनुर्वेन्नाम्यते गात्रमाक्षेपेच्च मुहुर्महुः ।  
प्रक्षिन्ननेत्रः स्तब्धाक्षः कपोत इव कूजति ।  
तमाहुर्भिषजां श्रेष्ठा अपतन्त्रकनामतः ॥

इति अपतन्त्रको वायुः ।

मतान्तरे वदन्यन्ते बहूपतानको मतः ।  
गृह्येत्वाद्यं ततो वायुः सोऽपतानक संज्ञितः ॥

इति अपतानको वायुः ।

सोऽपि कफाश्रितो वायुः सम्पीडयति दण्डवत् ।  
स्तम्भयत्याशु गात्राणि सोऽपि दण्डापतानकः ॥  
हृदक्षोजकराङ्गुलि गुल्फमन्थी समाश्रितः ।  
स्नायुं प्रतानयेद् यस्तु सोऽपि स्नायुप्रतानकः ॥  
वाह्यानामथ नाडीनां प्रतानयति मारुतः ।  
कठ्याश्रितो वा भवति सशल्यमिव कुर्वते ॥  
तमसाध्यं बुधाः प्राहुस्तच्च वातं प्रतानकम् ।  
अन्यं चतुर्थमाक्षेपमभिघातसमुद्भवम् ॥  
अभिघातेन यो जातो न स साध्यः प्रतानकः ।  
ऊर्ध्वं तालुगतो यस्तु विशोषयति गात्रकम् ॥  
मोहे तमःकृते वास्थिसन्धिसंशुष्कको मतः ।  
कच्छार्द्धिकर्षं भवति शुष्कतालुः प्रमुञ्चति ॥  
पुण्यात्यर्द्धं क्षयत्यर्द्धं स तथैकाङ्गिको मतः ।

इति एकाङ्गिकपञ्चघातवायुः ।

एकाङ्गपक्षघातश्च भवत्यन्यतमो यदि ।

वातघ्नै रौषधैः सर्वैर्वायुः कष्टेन सिध्यति ॥

इति एकाङ्गरोगपक्षघातः ।

तोदो मूर्च्छा वेपनं स्यात् वेष्टता स्पर्शनाञ्जता ।

यस्तु नश्यति गात्राणि वायुस्तूनीतिशब्दतः ॥

वेपनं तोदवेष्टत्वं स्पर्शनं वेत्ति यः पुनः ।

प्रतूनयति गात्राणि प्रतितूनीति गद्यते ॥

इति प्रतितूनीवायुः ।

सन्तापदाहशोषाश्च मूर्च्छा पित्तान्वितो मरुत् ।

शैत्यं शोफारुचिर्जाड्यं वातश्लेष्मसमन्वितम् ॥

यो हन्वजाश्रितो धीर ! तं साध्यं मारुतं विदुः ।

केवलोऽपि समीरोऽपि सोऽपि साध्यतमः स्मृतः ॥

वक्त्रं भवति वक्रार्द्धं ग्रीवा चाप्युपवर्तते ।

वैकृत्यं नयनानाञ्च विसंज्ञो वेदनातुरः ॥

ग्रीवायां गण्डयोर्दन्तपार्श्वे यस्यातिवेदना ।

तमर्दितमिति प्राहुर्वातव्याधिविचक्षणाः ॥

इत्यर्दितं नाम ।

लालास्रावोऽथ शोषश्च हनुग्रहो विरस्यता ।

दन्तशूलं भवेद् यस्य वातेनार्दितमेव च ॥

पीताङ्गं सज्वरं तृष्णा पित्तजो मोह एव च ।

शोफस्तम्भोऽस्य भवति कफोद्भूतोऽथवार्दिते ॥

भाविनो लक्षणं यस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम् ।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥

न सिध्यत्यर्दितं गाढं विषमञ्चापि तस्य च ।

कण्ठरोधो भक्षणार्थं जृम्भा प्रस्तारिते सुखे ॥

हनुस्तम्भो भवत्येते कृच्छ्रसाध्या भवन्ति हि ।

विषमे वा दिवास्त्रग्ने विवर्तितनिरीक्षणे ॥  
मन्यास्तम्भं जनयति कृच्छात् पार्श्वं विलोकते ।  
वाग्वादिनीं शिरां रुद्धा स्तम्भयेद्रसनानिलम् ॥  
रक्ताश्रितोऽपि पवनः शिरोनाड्यां समाश्रितः ।  
शिरोऽर्त्तिं कुरुते, यस्तु सोऽप्यसाध्यः शिरोग्रहः ॥

इति लक्षणम् ।

अतः प्रतिक्रियां वक्ष्ये यथा सिध्यति मारुतः ।  
स्नेहनं रूक्षणं कार्यं पाचनं शमनानि च ॥  
स्वेदनं मर्दनाभ्यङ्गी वस्तिस्नेहो निरुहणम् ।  
स्नायुसन्ध्यस्थि संप्राप्ते भेदनं कारयेत् सुधीः ॥  
माणिमन्येन यन्त्रेण ततः संभूषयानिलम् ।  
असाध्ये शुक्रगे व्याने बीजवत् समुपाचरेत् ॥  
मुण्डी गुडूची वृहतीद्वयं च रास्ना समङ्गा कथितः कषायः ।  
सामुद्रकेणापि विमिश्रितं च दुग्धं दधि स्यान्नवनौतकञ्च ॥  
पचेत् सुधीमान् मृदुवह्निना च सिद्धं घृतं स्नेहनमेव पुंसाम् ।  
कर्षप्रमाणं विहितं च पाने चाभ्यञ्जने भोजनके तथैव ।  
वस्तौ हितं स्नेहनमेव पुंसां सप्ताहकं वातविकारिणाञ्च ॥

इति स्नेहकं नाम घृतम् ।

अथ निरुहणम् ।

रास्नाविडङ्गरजनी सह नागरेण  
सौवीरकेण सुरसा सह सैन्धवेन ।  
सोष्णञ्च पानमिदमेव विरूक्षणञ्च  
•स्नान्मृणाञ्च पञ्चदिनकर्षमात्रमेव ॥

अतः स्यात् पाचनं सम्यक् दिनसप्तममेव तत् ।  
पाचिते चैव दोषे च तस्मात् संशमनं ददौ ॥  
वक्ष्यामि ते पुष्टिगते धमन्या समाश्रिते च बहुधाशनेन ।  
संस्वेदश्च नाशयते समीरं सप्ताहकं चोष्णजलेन सेकः ॥

रास्नात्रिकण्टकैरण्डशतपर्वा पुनर्नवा ।  
 काथो वातामयं हन्ति सर्वाङ्गगतमाशु च ॥  
 रास्नागुडूचिकादारुनागरैरण्डसंयुतः ।  
 काथः सर्वाङ्गवातेऽपि समधातुगते हितः ॥  
 रास्नाश्वगन्धाकाशीशं वचाञ्च कपिकच्छुकम् ।  
 काथस्त्वेरण्डतैलेन पीतो हन्ति समीरणम् ॥  
 रास्नाधान्यकशुण्ठी च यवानौ दशमूलकम् ।  
 काथः पाचनके प्रोक्तो नरे वातविकारिणि ॥  
 रास्नाद्यानि पाचनानि हितानि कथितानि च ।  
 अङ्गं पलं रसोनञ्च हिङ्गुसैन्धवजौरकैः ॥  
 सौवर्चलेन संयुक्तं तथैव कटुकत्रिकम् ।  
 घृतेन संयुतं भक्षेत् मासमेकं दिने दिने ॥  
 निहन्ति वातरोगञ्च अर्दितं च प्रतानकम् ।  
 एकाङ्गरोगिणाञ्चापि तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् ॥  
 ऊरुस्तम्भं क्रिमेर्दीपं गृध्रसीर्वापि कर्षति ।  
 पलार्द्धञ्च पलं चापि रसोनञ्च सुकुट्टितम् ॥  
 हिङ्गुजौरकसिन्धूत्यं सौवर्चलकटुत्रयम् ।  
 एभिः संचूर्णितैः सर्वैस्तुल्यं तैलेन संयुतम् ॥  
 यथार्ग्नं भक्षयेत् प्रातः रुदुक्काथानुपानवत् ।  
 मासमेकं प्रयोगेण सर्ववातामयान् जयेत् ॥  
 एकाङ्गं चैव सर्वाङ्गमूरुस्तम्भं च गृध्रसीः ।  
 कटिपृष्ठास्थिसन्धिस्थमर्दितं चापतन्त्रकम् ।  
 ज्वरं धातुगतं जीर्णं नित्यञ्च सैकराह्वयम् ॥

इति रसोनप्रयोगः ।

नागरा च हरिद्रा च कणाजाज्यजमोदिका ।  
 वचा सैन्धवरास्ना च मधुकं समभागिकम् ॥

श्लक्ष्णचूर्णं पिबेच्चैव सर्पिषा प्रत्यहं नरः ।  
 एकविंशतिदिनैर्वा रागान् हन्ति न संशयः ॥  
 भवेत् श्रुतिधरः श्रोमान् मेघदुन्दुभिनिस्वनः ।  
 हन्ति वातामयान् सर्वान् लेहो यस्य सुखावहः ॥  
 शतावरौ वचा शुण्ठी रास्ना वदरशल्लकौ ।  
 दशमूलौ वला किण्वस्तुस्वरु च गुडूचिका ॥  
 एष कल्को घृतैर्युक्तो हन्ति वातं शरीरगम् ।  
 शल्लकौचिकणौत्वक् च काथस्तैलेन सयुतः ॥  
 कुर्याद्वातादितं स्वस्थमेकविंशदिनैर्नरम् ।  
 अतोऽभ्यङ्गश्च कर्तव्यस्तैलेरपि घृतेरपि ।  
 गुग्गुलुञ्च रसोनञ्च कारयेद्दिधिपूर्वकम् ॥

इति संशमनीयः काथः ।

अथ वलाद्यं कथ्यते ।

भागाश्चाष्टौ वलामूलं चत्वारो दशमूलकम् ।  
 काथश्चतुर्गुणे तोयेऽथवा द्रोणस्य संख्यया ॥  
 तत्राढकं क्षिपेत् क्षीरमाढकं मिश्रयेद्दधि ।  
 आढकञ्चाशु कुल्माषयूषं पर्युषितं क्षिपेत् ॥  
 तैलं तिलानां द्रोणं तु कटाहे पाचयेच्छनैः ।  
 जीवन्ती जीवनौया च काकोल्यौ जीवकर्षभौ ॥  
 मेदे हे सरलं दारु शल्लकश्च कुचन्दनम् ।  
 कालीयकं सर्जरसं मञ्जिष्ठा त्रिसुगन्धिकम् ॥  
 मांसी शैलेयकं कुष्ठं वचा कालानुशारिवा ।  
 शतावरौ चाश्वगन्धा शतपुष्पा पुनर्नवा ॥  
 किण्वकं च सुरा मुस्ता तथा तालोशपत्रकम् ।  
 कटुत्रयं वालुकी च सर्वं तत्रैव मिश्रयेत् ॥  
 सिद्धं सर्वगुणं श्रेष्ठं कृत्वा मङ्गलवाचनम् ।



सौवर्णे राजते कुम्भे वाथवा मृण्मयायसे ॥  
 प्रतप्तं धारयित्वा तु पानाभ्यङ्गे निरुहके ।  
 वस्तौ वापि प्रयोक्तव्यं मनुष्यस्य यथावलम् ॥  
 वातार्दितेऽथवा भग्ने भिन्ने वापि प्रदापयेत् ।  
 या बन्ध्या च भवेन्नारी पुरुषश्चाल्परेत्सः ॥  
 क्षीणो वा दुर्बलो वापि तथा जौर्णज्वरातुरः ।  
 आमवातातुराणाञ्च तथा प्रक्षिप्य कञ्चटम् ॥  
 प्रभाते च प्रयोक्तव्यं तथा शुष्के हनुग्रहे ।  
 कणेशूले चाक्षिशूले मन्यास्तम्भे च पाश्वरे ॥  
 सर्वेवातविकाराणां हितं तैलं यथामृतम् ।  
 हन्ति श्वासञ्च कासञ्च गुल्माश्चाग्रहणीगदम् ॥  
 अष्टादशानि कुष्ठानि शौघ्रं वापि नियच्छति ।  
 ग्रहभूतपिशाचाश्च डाकिनौ शाकिनौ तथा ॥  
 दूरदेशे पलायन्ते वलातैलस्य दर्शनात् ।  
 अपस्मारादिदोषांश्च तच्च दूरे नियच्छति ॥  
 वृद्धो युवा च भवति बन्ध्या च लभते सुतम् ।  
 तैलं महावलाद्यच्च महावातहरं स्मृतम् ॥

इति महावलाद्यं तैलम् ।

वलाकाथाढकं क्षिप्वा क्षिपेत् तत्राढकं दधि ।  
 कुलत्याढकयूषन्तु सौवीरस्याढकं तथा ॥  
 एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधञ्च तत् ।  
 शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥  
 त्रिसुगन्धि मुरामांसी कुष्ठञ्च दशमूलकम् ।  
 चूर्णकं निक्षिपेत् तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥  
 योज्यं पाने तथाभ्यङ्गे निरुहे नस्यकर्मणि ।  
 हन्ति वातामयं सर्वं श्रेष्ठं गुणगणात्मकम् ।



यथा महावलं तैलं तथेदं गुणवर्धनम् ॥

इति वल्गायं तैलम् ।

भृङ्गराजरसश्चैव कटुतुम्बीरसं तथा ।

सौवीरकरसं चैव काथं वै दशमूलकम् ॥

माषकुल्माषयूषं च वाजं दधि समाश्रयेत् ।

समांशकानि सर्वाणि तैलं चाङ्गं प्रयोजयेत् ॥

मृद्वग्निना पाचनीयं सिद्धं चैवावतारयेत् ।

अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यं न पाने वस्तिकर्मणि ॥

पूरणं कर्णरोगेषु शिरःशूले च दारुणे ।

अर्द्धशोर्षविकारेषु भ्रुवः शङ्खाक्षिशूलके ॥

तस्य योगेन मनुजः सुखमापद्यते द्रुतम् ।

हन्ति कुष्ठञ्च पामानं त्वग्रोगोऽभ्यञ्जनेन तु ।

शोत्रं विनाशमायाति हन्त्यपस्मारमुत्कटम् ॥

इति भृङ्गराजतैलम् ।

सपित्ताविकलश्वासः पक्कामः पतति त्वधः ।

न वस्तिशूलो भवति वामवाते श्मः क्लमः ॥

आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्यात् तस्य पाचनम् ।

विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥

कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं वस्तिशूलता ।

गुल्मवज्जठरं गर्जेत् तथान्त्रे शोफमेव च ॥

शिरोगुरुत्वं भवति वामे च पतते भृशम् ।

सर्वाङ्गणे भवेत् सोऽपि विज्ञेयः सुविजानता ।

तस्य वै पाचनं कुर्याद्विरेचनमतः परम् ॥

विष्टम्भो गुल्मपाको च सर्वाङ्गगोऽन्यः कौर्त्तितः ।

विज्ञेयस्तत्र यः साध्यश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ ॥

जेही चामस्य कथितः कृत्वापस्मारनिग्रहम् ।

श्योनाकः पाटला विष्वं तर्कारी पारिभद्रकः ॥  
 अश्वगन्धा कण्टकारी शोथघ्नौ च प्रसारिणी ।  
 श्वदंष्ट्रा च बला चैवातिबला समभागिका ॥  
 पादशेषं जलद्रोणे कथितं स्नावयेत्ततः ।  
 वक्ष्यमाणानि योज्यानि भेषजानि भिषग्वरैः ॥  
 शतपुष्पा वचा मांसो दारु शैलेयकं वरा ।  
 पतङ्गं चन्दनं कुष्ठं तथान्यं रक्तचन्दनम् ॥  
 करञ्जवीजांशुमती त्रिसुगन्धि पुनर्नवा ।  
 रास्ना तुरङ्गगन्धा च सैन्धवं च दुरालभा ॥  
 मिश्री च सुरभा चैतत् प्रत्येकन्तु पलद्वयम् ।  
 चूर्णं कृत्वा क्षिपेत् तत्र क्षिपेत्ताक्षारसाढकम् ॥  
 शतावरीरसं चैव अजाक्षीरं चतुर्गुणम् ।  
 दधि तत्राढकं गव्यं निलतैलं प्रयोजयेत् ॥  
 सिद्धं तत्र प्रदृश्येत ततो मङ्गलवाचनम् ।  
 प्रतिह्येनं प्रतिष्ठाप्य नारायणमिदं स्मृतम् ॥  
 हन्ति वातविकारांश्च अपस्मारग्रहांस्तथा ।  
 शिरोरोगान् कर्णरोगान् कुष्ठान्यष्टादशान्यपि ॥  
 बन्ध्या च लभते पुत्रं षण्ण्डोऽपि पुरुषायते ।  
 कृशो युवायते मूर्खो विद्याराधनतत्परः ।  
 नारायणमिदं तैलं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥

इति नारायणं नाम तैलम् ।

अन्यानि घृततैलानि तानि चात्र प्रयोजयेत् । \*  
 एतेन जायते सौख्यं वातरोगं नियच्छति ॥

इति शोमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सा

नाम एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथामवातचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

लक्षणं शृणु पुत्र ! त्वं समासेन वदाम्यहम् ।  
 गुर्वन्नाहारपुष्टेन मन्दाग्नेश्च व्यायिनः ॥  
 तर्पितैः कन्दशाकैस्तु आमो वायुसमीरितः ।  
 श्लेष्मस्थाने प्रपच्यैव जायते बहुवेदनः ॥  
 आमातिसारो वर्त्तत सन्धौ शोफः प्रजायते ।  
 जरत्वञ्चैव गात्राणां वलासपतनं मुखे ॥  
 पृष्ठमन्यात्रिके जाते वेदनात्तोऽपि सीदति ।  
 अङ्गं वैकल्यमायाति आमवाते भिषम्बर ! ॥  
 तस्य नो स्नेहनं कार्यं पाचनञ्च विधीयते ।  
 आमं सञ्क्षयते प्राज्ञश्चतुर्धा भेदलक्षणेः ॥  
 विष्टम्भी गुल्मकृन्मेही आमः पक्काम एव च ।  
 सर्वाङ्गो भवेच्चान्यो वक्ष्ये तस्यापि लक्षणम् ॥  
 विष्टम्भि गुरु चाध्मानं वस्तिशूलञ्च जायते ।  
 तस्यापि पाचनं कार्यं स्नेहनं चैव कारयेत् ॥

इति विष्टम्भाग्निलक्षणम् ।

जठरं गर्जते यस्य गुल्मवत् परिपीड्यते ।  
 कटिदेशे जडत्वञ्च आमगुल्माभिश्चङ्कितः ॥  
 तस्यादौ लङ्घनानि स्युर्ज्ञात्वा देहवलावलम् ।  
 पाचनं नैव कर्तव्यं गुल्मपाके विमूर्च्छति ।  
 पाचिते चापि गुल्मामे तदाशु मरणं भ्रुवम् ॥

इति गुल्माग्निहामलक्षणम् ।

यस्य च स्निग्धता गात्रे जायते मन्दाग्निको वली ।  
 स्नेहामो विजलो यस्य स्नेही वामः प्रकीर्तितः ॥

तस्य नो स्नेहनं कार्यं चोपवासश्च कारयेत् ।

पाचनं चैव कर्त्तव्यमामं चैवातिसारयेत् ॥

इति स्नेहामसचक्षम् ।

यस्य शोफाननं जाड्यं तथा चैव घनोदरम् ।

अरुच्यामातिसारश्च स चासाध्यो विज्ञानता ॥

प्रताख्येया क्रिया कार्या जीवितस्यापि संशये ।

पाचनं पाचितं ज्ञात्वा तस्माच्चूर्णं निदापयेत् ॥

इति आमस्य सचक्षम् ।

सपीतो विजलः श्यामः पक्कामः पतते त्वधः ।

न वस्तिशूलो भवति आमवाते अमः क्लमः ॥

आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्यात् तस्य पाचनम् ।

विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥

कटिपृष्ठे वक्षो देशे तोदनं वस्तिशूलवान् ।

गुल्मतो जठरं गर्जेत् तथातः शोफ एव च ॥

शिरो गुरुत्वं भवति आमश्च पतते भृशम् ।

सर्वाङ्गो भवेत् सोऽपि विज्ञेयोऽसौ विज्ञानता ॥

तस्यैव पाचनं कुर्याद्विरेचनमनन्तरम् ।

विष्टम्भी गुल्मपाकी च अन्यः सर्वाङ्गो मतः ॥

विज्ञेयाश्चात्र ये साध्याश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ ॥

स्नेही आमश्च कथितः कृच्छ्रसाध्यं द्वयं मतम् ॥

पक्कामः सुखसाध्यस्तु ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ।

रास्ना त्रिकण्टसेरण्डं शतपुष्पा पुनर्नवा ॥

पानं पाचनके शस्तं वामे वाते भिषग्वर ! ।

रास्ना श्योनाककाश्मीरं चिकणीकश्च पुष्करम् ॥

क्वाथं शतं सुखोष्णं च पाचनं पाययेद्वरम् ।

एतत् पाचनकं विद्धि प्रोक्तं चामे सवातिके ॥

इति पाचनविधिः ।

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ।

गुडूची नागरं पथ्या चूर्णमेतद्गुडान्वितम् ॥

धान्यनागरराजान्नदेवदासवचाभयाः ।

पाचनं चामवाते च श्रेष्ठमेतत् सुखावहम् ॥

तथा कोलकचूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ।

आमवातश्च मन्दाग्निं शूलं गुल्मश्च नाशयेत् ॥

पिबेदेरण्डजं तैलं गुडूचीरेण संयुतम् ।

सर्वाङ्गे चामवाते हि श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥

नागरस्य भागमेकं द्वौ भागौ क्रिमिजस्य तु ।

त्रिवृङ्गागत्रयं क्षिप्त्वा चूर्णं गुडममं वटम् ॥

भक्षेत् तथोष्णतोयेन पुनश्चोष्णं पयः पिबेत् ।

एतेन जायते वामे विरेकः सुखकारकः ॥

विडङ्गशुण्ठी रास्ना च पथ्या त्रिकटुकान्विता ।

क्वाथमष्टावशेषश्च कारयेद्भिषजां वरः ॥

दुग्धं क्वाथार्द्धकं तैलं तथैवैरण्डजं क्षिपेत् ।

कर्षमात्रश्च पातव्यो विरेकश्चानुपानतः ॥

गुडूचीत्रिफलापथ्या गुडेन सह भक्षयेत् ।

विरेको ह्यामवातेषु श्रेष्ठमेतत् सुखावहम् ॥

अथ उपशमनानि बक्ष्यामः ।

अभयं मस्तुना पिष्ट्वा मधुशर्करयान्विता ।

आमातिसारं शमयेद् गुडामलकमेव च ॥

वत्सकं जीरके द्वे च दध्ना पिष्टन्तु दापयेत् ।

आमातिसारशमनं वस्तिशूलं नियच्छति ॥

गुग्गुलुश्च रसोनश्च हिङ्गुनागरसंयुतम् ।

काथं वामविनाशाय शमनं मारुतस्य च ॥  
 अजमोदोगन्धा च कुष्ठं त्रिकटुकं शठी ।  
 फलत्रिकञ्च भार्गी च पुष्करं लवणाष्टकम् ॥  
 जीरके हे विडङ्गानि तुम्बुरु हे च दारु च ।  
 तथा विल्वा शिलाभेदो रोक्षं वत्सकवासकम् ॥  
 धातकीकुसुमं चैव शाल्लोलूत्वक् च टाडिमम् ।  
 एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥  
 घृतेन संयुतं वातं नाशयत्याशु निश्चितम् ।  
 सहिङ्गु चारनालेन पीतं शूलार्त्तिनाशनम् ॥  
 तथाचोष्णजलेनापि वामवातं नियच्छति ।  
 गृध्रसीकटिशूले च दशमूलजलेन तु ॥  
 विबन्धैरण्डतैलेन शोफे वापि सुदारुणे ।  
 गुल्मगोमूत्रसंयुक्तं गुडेन पाण्डुरोगजित् ॥  
 प्रमेहे मधुसंयुक्तं यक्ष्माणि शर्करायुतम् ।  
 हन्ति सर्वामयान् घोरान् यथायोगेन योजितम् ॥  
 शीतोदकेन न स्नानमामवाते भिषग्वर ! ।  
 पाचिते चामदोषे च आमवातं न सेवयेत् ॥  
 न सेवनीयं चोष्णञ्च द्रवद्रव्यं विशेषतः ।  
 ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥

इति श्रीमहर्षिर्विषभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सा

नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ गृध्रसौचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

रक्तवातसमुद्भूतान् दोषान् शृणु महामते ! ।  
 कट्यूरुजानुमध्ये तु जायते बहुवेदना ॥  
 गृध्रसौति विजानीयात् तेन नोक्तञ्च लक्षणम् ।  
 जानुमध्यं भवेत् शोफो जायते तीव्रवेदना ॥  
 वातरक्तसमुद्भूता विज्ञेया क्रोष्टुशोर्षिका ।  
 कण्डरा बाहुपृष्ठे च अङ्गुल्यभ्यन्तरेषु च ॥  
 करक्रमक्षयकरी सा विज्ञेया विपश्चिता ।  
 पादहर्षो भवेच्चात्र पादयोर्लोमहर्षणम् ॥  
 कफवातप्रकोपान्ते प्रस्वेदः करपादयोः ।  
 पित्तवातान्वितञ्चान्ते उष्णत्वं करपादयोः ॥  
 अमौषां रुधिरस्रावं ततः स्वेदञ्च कारयेत् ।  
 अभ्यङ्गे वातहृत् तैलं पानं रास्नादि पञ्चकम् ॥  
 शतावरी वले द्वे च पिप्पली पुष्कराह्वयम् ।  
 चूर्णमेरण्डतैलेन गृध्रसौमप्रकर्षति ॥  
 अजमोदादिकं चूर्णमामवाते प्रकीर्तितम् ।  
 तदत्र योजनीयञ्च गृध्रसौनां निवारणम् ॥  
 एतैर्न जायते सौख्यं दहेत्क्षौहशलाकया ।  
 पादरोगेषु सर्वेषु गुल्फे द्वे चतुरङ्गुले ॥  
 तिर्यग्दाहं प्रकुर्वीत दृष्ट्वा पादे शिरां दहेत् ।  
 वातरोगेषु प्रोक्तानि पथ्यानि चात्र योजयेत् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गृध्रसौचिकित्सा नाम

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

—

## चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ वातरक्तचिकित्सा ।

आग्नेय उवाच ।

कटुक्षाराम्ललवणैः रक्तं देहे प्रकुप्यति ।  
 रोधात् सन्धारणाद्वापि दिवास्वप्नादिसेवनैः ॥  
 समीरकोपः प्रत्यङ्गे युगपदृश्यते नृणाम् ।  
 वातरक्तमिति प्रोक्तं नृणां देहे प्रवर्तते ॥  
 जायते सुकुमाराणां तथा स्त्रीणां भिषग्वर ! ।  
 स्थूलानाञ्च विशेषेण कुप्यते वातशोणितम् ॥  
 आलस्यञ्च तथा कण्डुर्मण्डलानाञ्च दर्शनम् ।  
 वैवर्ण्यं स्फुरणं शीथशोषौ दाहश्च मार्दवम् ॥  
 वातरक्तं विजानीयात् श्यावता दन्तरक्तयोः ।  
 एतद्विलक्षणं दृष्ट्वा कर्तव्या च प्रतिक्रिया ॥  
 विरेकं रक्तमोक्षञ्च पानलेपनलेहकान् ।  
 धान्यनागरसंयुक्तं क्षीरञ्चास्य प्रदापयेत् ॥  
 पटोलोनिम्बपत्राणि कथित्वा मधुसंयुतम् ।  
 पाचने वातरक्तानां तथा च शमनानि च ॥  
 काष्ठीकेन च समिप्य पिचुमर्ददलानि च ।  
 लेपनं शस्यते तस्य वातरक्तप्रशान्तये ॥  
 दूर्वा मूर्वा शठी शुण्ठी धान्यकं मधुयष्टिका ।  
 वर्त्तनं शीततोयेन वातरक्तप्रलेपनम् ॥  
 धन्याकर्षञ्च जीरे द्वे गुडेन परिपाचितम् ।  
 भक्षणे वातरक्तानां दापयेद्दोषशान्तये ॥  
 एतैर्यदि न सौख्यं स्यात् तदा रक्तावसेचनम् ।  
 ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥

इति श्रीमहर्षिर्वाग्देव भाषिते हारीतसंहिते तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सा

नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।



षड्विंशोऽध्यायः ।

२३७

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथास्त्रपित्तचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

गुडस्य सेवनाच्चास्त्रे विरुद्धाहारसूचिते ।  
कुपितश्चास्त्रपित्तश्च कण्ठस्तेन विदह्यते ॥  
टाहो वा हृदये तस्य शिरोऽर्त्तिश्चैव जायते ।  
उद्गारानस्त्रकान् कण्ठे हिक्कास्त्रोऽपि प्रधावति ॥  
शृणु तस्य प्रतीकारं वमनं कारयेद्द्रुतम् ।  
अधोगते चास्त्रपित्ते विरेकश्च प्रदीयते ॥  
पारिभद्रदलानीति आमलक्याः फलानि च ।  
क्वाथपानं प्रयोक्तव्यमस्त्रपित्तं व्यपोहति ॥  
पटोलपाटलाक्वाथो धान्यनागरकान्वितः ।  
जलेन हितकः प्रोक्तश्चास्त्रपित्तनिवारणे ॥  
ग्रेलविश्वामृतवल्लितिक्ता पत्राणि निम्बस्य च वत्सकानाम् ।  
अथो विसर्पोद्भवमस्त्रपित्तं विनाशयेन्मण्डलकानि दद्रून् ॥  
रात्रौ सम्पाचनं देयं धान्यनागरकल्कितम् ।  
इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतकस्तरे तृतीयस्थाने अस्त्रपित्तचिकित्सा

नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथ शोफचिकित्सा ।

०

आत्रेय उवाच ।

शोफो भवेच्च विकलेन्द्रियरोममार्गः  
क्षीणे बले वपुषि चास्त्रकटूणासेवया ।  
शैत्यात् तथा विशदपिच्छलसेवनेन  
रुद्धाभिघातपतनेन च धारणाद्वा ॥

आमाशये गतवतोऽपि नरस्य यस्य  
अन्ते प्रधावति ततोऽपि च दोष एषः ।  
करोति पाणिचरणे च पृथक् प्रसूतो  
द्वन्द्वेन वा भवति शोथविकारचारः ॥

नरस्य चान्तप्रभवाश्च शोफाः साध्या भवेन्नुर्विनता मुखेषु ।  
असाध्यकाः सर्वशरीरगाश्च पादे स्त्रियो वा वदने नरस्य ॥  
क्षये च वाते त्वथ गुल्मदेशे स्याद्राजयक्ष्मादिषु चोदरेषु ।  
रक्तेन जातोऽप्ययमेव शोफो भवेत्तथा शोफविकारचारः ॥

अन्याश्चोर्द्ध्वगशोफाश्च श्लेष्मपित्तममुद्गवाः ।

कष्टसाध्याश्च विज्ञेया बह्वपद्रवसंयुताः ॥

श्लेष्मणि शिरसि प्राप्ते ऊर्द्ध्वशोफः प्रजायते ।

मध्यः पक्वाशयस्थेऽपि मलमप्यागते त्वधः ॥

रसे सर्वानुगाः शोफाः सर्वदेहानुगा रसाः ।

सर्वाङ्गशोफा अथ मध्यशोफा अर्द्धाङ्गशोफाः परिवर्जनीयाः ।

वृद्धे च बाले क्षतजाः क्षयोत्थान्छर्दातिसारश्वसनेन युक्ताः ॥

भ्रमज्वरक्षीणशरीरजाता शोफोद्गवा या च भवेन्नरस्य ।

साध्या न वैद्यस्य न चान्यदोषा सा नैव साध्या भिषजां वरिष्ठ ।

तोदश्च रुक्षं श्वसनश्च वातात् पित्ताच्छ्रमः शोफविदाहकश्च ।

शीता घना श्लेष्मणि बाधकण्ठः स्याद् द्वन्द्वजा द्वन्द्वजलक्षणेन

अतो वदामीत्यपचारमस्यां संस्वेदनं पाचनशोधनं वा ।

विरेचनं रक्तविमोक्षणञ्च कषायशोथेषु विधिः प्रदिष्टः ॥

न चास्य स्नेहनं कार्यं नैव कार्यं विरुक्षणम् ।

पुनर्नवा मगधजा च कटुत्रयश्च

निम्बाभया च कटुका च पटोलदार्वी ।

काथः सुखोष्णः क्षथितस्तु विपाचनेन

शोफो जहाति जठरश्च नरस्य शीघ्रम् ॥

पुनर्नवा गुडूची च गुग्गुलुं समकल्कितम् ।  
 शोथदोषांश्च गुल्मञ्च हन्तुादारं कफामयम् ॥  
 जमहिष्या वृषभस्य सूत्रं तथैव लाजं सकणं प्रयोज्यम् ।  
 नानेन शोफो विजहाति शीघ्रमेरण्डतैलेन युतं पयो वा ॥  
 संस्वेदनक्रिया कर्ह्या सा कार्या च पुनः पुनः ।  
 एरण्डपत्रकैर्वापि अथवा तिलिङ्गीच्छदैः ॥  
 मयूरः कोकिलाक्षश्च वाह्याश्चापि जलेन च ।  
 लोमशा कटुतुम्बी च काञ्चिकेन जलेन वा ॥  
 निःकाथ्य चापि संस्वेदस्तथैवोष्णेन तन च ।  
 पश्चाच्चैवोपनाहञ्च यथालाभेन योगतः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रयभाषिते हारीतौतरे तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा  
 नाम षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथ जलोदराचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

विषमासनोपवेशात् पीततोयादथापि वा ।  
 श्ममाध्वश्वासनिष्क्रान्तादतिव्यायामितेऽपि वा ॥  
 पीतं तूदरमेवञ्च तस्माज्जातं जलोदरम् ।  
 उदरं सजलं यस्य सघोषमतिवर्द्धितम् ॥  
 श्वयथुः पादयोः शोथो जलोदरस्य लक्षणम् ।  
 विरेकं वमनं कुर्यात् पाचनानि च कारयेत् ॥  
 क्षारयोगश्च वटकस्तेन तदुपशम्यति ।  
 तस्मान्नाभेर्वलिभागे वर्जयित्वाङ्गुलद्वयम् ॥  
 जलनाडीच्चानुमान्य कुशपत्रेण वेष्टयेत् ।  
 एरण्डजलनालञ्च तत्र सञ्चारयेद् बुधः ॥  
 अन्तर्गतं जलं स्राव्यं ततः सञ्चारयेद् दृढतम् ।

यदा न धरते तच्च तदा दाहः प्रशस्यते ॥  
 कणाकल्कं परिस्नाव्य घृतं देयं चतुर्गुणम् ।  
 शुण्ठीविषासमं पाच्यं पानमालेपनं हितम् ॥  
 शस्त्रकर्म भिषक्श्रेष्ठो विज्ञातेनैव कारयेत् ।  
 दुष्करं शस्त्रकर्मैव न कुर्याद् यत्र तद्, तु ॥  
 अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ।  
 तस्मादवश्यं कर्तव्यमीश्वरं सात्त्विकारिणा ॥  
 इति श्रीमहर्षात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने जलोदरचिकित्सा

नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

विंशत्येवं प्रमेहास्तु नगाणामिह लक्षणम् ॥  
 अमाङ्गवायाच्च तथैव धर्मविरुद्धतीक्ष्णोष्णविभोजनेन ।  
 मद्येन वा क्षीरकटुप्रमेवनात् मेहे प्रसूतिः कथिता मुनीन्द्रैः ॥  
 जलप्रमेहो रुधिरप्रमेहः पूयप्रमेहो लवणप्रमेहः ।  
 तक्रप्रमेहः खटिकाप्रमेहः शुक्रप्रमेहः कथितः पुरस्तात् ॥  
 स्याच्छर्करामेहवसाप्रमेहो रसप्रमेहोऽन्यघृतप्रमेहः ।  
 पित्तप्रमेहो कफमेहिनश्च मधुप्रमेहोति विभावयेच्च ॥  
 यथा च नामानि तथैव लक्षणं वलक्षणं वापि नरस्य देहे ।  
 कुर्वन्ति शीघ्रं भिषजां वरिष्ठः कुर्यात् क्रियां वै शमन्वय सद्यः  
 ध्वार्जुनश्चन्दनशालशङ्खकीकाथो हितः स्याच्च जलप्रमेहे ।  
 रक्तप्रमेहे शिशिरं पयश्च द्राक्षाण्वितं यष्टिकचन्दनेन ॥  
 स्त्रीसेवनश्चाल्पतरश्च पूयमेहे कषायश्च ध्वार्जुनस्य ।  
 दूर्वाकषेरुकदलीनलिम्बा लोणश्च मेहे च कषाय उक्तः ॥

ददस्वशालार्जुनदीप्यकानां विडङ्गदार्ढीधवशक्तीनाम् ।  
 एवं तथैते मधुना कषायाः कफप्रमेहेषु निषेवणीयाः ॥  
 भ्राजुनः क्षीरमरिष्टपत्रान् तत्रैव धात्रीफलचन्दनानि ।  
 कफप्रमेहे खटिकाप्रमेहे देयो हितः काथगुडो वटश्च ॥  
 र्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती समङ्गा सह शाकली च ।  
 कफप्रमेहे कथितं जलेन पानं हितं वा रुधिरप्रमेहे ॥  
 लत्रिकारग्वधमूलमूर्वाशोभाञ्जनारिष्टदलानि मोचा ।  
 क्षायुतो वा कथितः कषायः सर्पिःप्रमेहस्य निवारणाय ॥  
 तुष्टं तथा पर्पटकश्च तिक्ता सिताप्रगाढः कथितः कषायः ।  
 र्वारिकापाटलिकानियुक्तो दुरालभाकिंशुकटुण्डकानाम् ॥  
 सप्रमेहे च सदा हितः स्यात् निषेवते काथमिमं प्रशस्तम् ॥

नीलोत्पलार्जुनकलिङ्गधवाम्लिकानां  
 धात्रीफलानि पिचुमर्ददलानि तोये ।  
 निःकाथ्य शर्करयुते मनुजस्य पाने  
 पित्तप्रमेहशमनाय वदन्ति धीराः ॥

वेङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां कदम्बरोध्राशनवृक्षकाणाम् ।  
 जलेन काथ्यश्च हितो नराणां कफप्रमेहं विनिहन्ति तेषाम् ॥

मुस्ता फलत्रिकनिशा सुरदारु मूर्वा  
 इन्द्रा च रोध्रमलिलेन कृतः कषायः ।  
 पाने हितः सकलमेहभवे गर्दे च  
 मूत्रग्रहेषु सकलेषु विद्योजनीयः ॥

त्रिभयालोहरजोनिकुम्भचूर्णं हितं शर्करया समतम् ।  
 लत्रिकाया मधुना च लेहं सर्वप्रमेहेषु हितं वदन्ति ॥

मधुमेहे प्रयोक्तव्यं घृतपानं सुधीमता ।  
 क्षीरं वा शर्करायुक्तं काथो वा गुटिकानि च ॥  
 न्यग्रोधोडुम्बराश्लथप्लक्षारग्वधटुण्डुकम् ।

पियालं ककुभं जम्बूकाकपिच्छास्रकाणि च ॥  
 मधुकं यष्टिमधुकं रोध्रं वै पारिभद्रकम् ।  
 पटोलश्चारिणी चैव दन्ती मेषविषाणिका ॥  
 चित्रकश्च करञ्जश्च शक्राह्वं त्रिफलायुतम् ।  
 भस्मातकानाञ्च समं त्रिगन्धं कटुकत्रयम् ॥  
 सूक्ष्मचूर्णं प्रटातव्यं न्यग्रोधाद्यं गुणाधिकम् ।  
 मधुना संयुतो लेहो हन्याच्च मधुमेहकम् ॥  
 क्वाथो वा तैलपाको वा घृतपाकोऽथवापि च ।  
 पानाभ्यङ्गे प्रशस्तः स्यात् हन्ति वै मूत्रजं गदम् ॥  
 न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं पेयं वा क्षीरसंयुतम् ।  
 मधुमेहे च नान्योऽस्ति यथालाभेन योजितः ॥  
 माक्षिकं धातुमाक्षिकं शिलोद्भेदं शिलाजतु ।  
 चन्दनं रक्तधातुश्च तथा कर्पूरकं कणाः ॥  
 वंशलोचनकञ्चैव क्षीरेण सहितं पिबेत् ।  
 मधुप्रमेहं हरति मूत्ररोगादिमुच्यते ॥  
 प्रमेहपीडकानाञ्च वक्ष्यामोऽथ चिकित्सितम् ।  
 धवार्जुनकटम्बानां वदरी खदिरशिंशपे ॥  
 पारिभद्रकमेतेषां मेहनस्य प्रधावनम् ।  
 अर्जुनस्य कटम्बस्य तिन्दुक्या वान्तरत्वचा ॥  
 पाके पूयविशोधार्थं मेहनस्य प्रशस्यते ।  
 भृङ्गराजरसं ग्राह्यं तथा च सुरसादलम् ॥  
 निष्पावकपटोलानां पत्राणि काष्ठीकेन तु ।  
 पिष्ट्वा वातपीडकानां लेपनं मेहनस्य च ॥  
 यष्टीमधु तथा कुष्ठञ्चन्दनं रक्तचन्दनम् ।  
 उशीरं कत्तृणञ्चैव रक्तधातुमृणालकम् ॥  
 क्षीरमण्डकसंयुक्तं यथास्मिन् भिषम्बर ! ।

लैपनं पित्तरक्तानां मेहदाहः प्रशाम्यति ॥  
 धावनं शीतपयसा नवनौतेन मर्दनम् ।  
 कदम्बार्जुनपिण्याकपत्राणि दाडिमस्य च ॥  
 खदिरस्य दलांश्चैव तथा चामलकौदलान् ।  
 उष्णेन वारिणा पिष्ट्वा सोमपाके च मेहने ॥  
 त्रिफलायाश्च वा चूर्णं शुष्कपूयनिवारणम् ।  
 धावनं काञ्चिकेनाथ तक्रेणाथ तुषाम्बुना ॥  
 अतिशीतेन तोयिन मेहपाके च धावनम् ।  
 रक्तशालिष्य षष्टीकखादकी वा कुलत्थकः ॥  
 घृतञ्च मधुरं किञ्चिद् भोजनार्थं विधीयते ।  
 चाराम्लकटुकं वापि दिवास्त्रपं विशेषतः ॥  
 स्त्रीदर्शनं व्यवायञ्च तथा चात्यशनं गुरु ।  
 चलनं धावनञ्चेति तथा मूत्रविरोधनम् ॥  
 वस्त्रवातं रक्तवस्त्रं वर्जयेद्भिषजांवरः ।  
 एकान्ते गृहमध्ये च गावस्त्रीवालकं तमः ॥  
 न चाभरणताम्बूलं कोपमेवं जहाति च ।  
 दूरे चैतानि वर्जन्तु यदीच्छेत् सुखसम्पदः ॥

इति खटिकामेहचिकित्सा ।

हरिद्राद्वितयं शुण्ठी विडङ्गानि हरीतकी ।  
 कफप्रमेहे विहितः काथोऽयं मधुना सह ॥  
 नीलोत्पलमुशीरञ्च पथ्यामलकमुस्तकम् ।  
 पिबेत् पित्तप्रमेहार्तः काथं मधुविमिश्रितम् ॥  
 कमलञ्च तथा रोध्रमुशीरमर्जुनान्वितम् ।  
 पित्तप्रमेहे विहितः काथोऽयं मधुना सह ॥  
 आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम् ।  
 हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम् ॥



खदिरं शर्करा दारु हरिद्रा मुस्तमेव च ।

चूर्णितन्तु पिबेत् सर्वप्रमेहगदशान्तये ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सा

नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशमत्तोऽध्यायः ।

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

एलाशिलाजतुयुतं मागधिकापाषाणभेदसंचूर्णम् ।

तण्डुलजलेन पीतं प्रमेहरोगं हरत्येव ॥

एरण्डमूलपाषाणभेदगोक्षुरकास्तथा ।

एलाटरुषपिप्पल्यो यष्टौमधुसमन्विताः ॥

एषां काथं पिबेज्जन्तुः शिलाटित्येन योजितम् ।

अश्मरीशर्करायाश्च शर्कराभिः फलत्रयम् ॥

सुशीतलं जलं कर्षमात्रं स्यान्मूत्रकृच्छ्रहृत् ।

तध्यम्बुना च संमिश्रमयोचूर्णं सुसुप्रदम् ॥

मूत्रकृच्छ्रे यवचारचूर्णं हिङ्गुप्रयोजितम् ।

कूष्माण्डश्च समादाय शर्करासहितं पिबेत् ॥

यो हि त्रिदोषसम्भृतमूत्रकृच्छ्रनिवारणः ।

पिबेच्छतावरीमूलं शीतपानीयचूर्णितम् ॥

अतः शर्करारोगार्त्तं शर्करां सम्प्रयोजयेत् ।

आरग्वधफलं मूलं दुरालभाधान्यकशतावर्यः ॥

पाषाणभेटपथ्ये काथोऽयं मूत्रकृच्छ्रे स्यात् ॥

पाषाणभेदस्त्रिवृता च पथ्या दुरालभा गोक्षुरपुष्करं वा ।

एला सकुरुण्टककर्कटीजं बीजं कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥



कुलथयुक्तः पटोलीमूलकषायः प्रतिपाकः ।  
 पुष्करमूलमिश्रः प्रमेहपाषाणरोगघ्नः स्यात् ॥  
 यो मातुलुङ्गिकामूलं पिबेत् पर्युषिताम्बुना ।  
 तस्यान्तः शर्करोद्भूतं दुःखं सद्यो विलीयते ॥  
 गवां तक्रेण सैम्पष्टं क्षिप्रं नामकमौषधम् ।  
 पिबेच्चिरेण तक्रञ्च शर्करादोषदूषितः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारौतोत्तरे तृतीयस्थाने  
 मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ मूत्ररोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

पिबेत् कर्कटिकावीजं त्रिफलामैन्धवान्वितम् ।  
 उष्णाम्बुचूर्णितं पीतं मूत्ररोधं शमं नयेत् ॥  
 यस्तिलकाण्डक्षारं दधिमधुसंमिश्रितं पिबेत् ।  
 स नरश्च मूत्ररोधं हत्वा सद्यः सुखमाप्नोति ॥  
 अजाक्षीरेण संमिश्रं जातीमूलं प्रपेषितम् ।  
 पिबेत् सदाहमूत्रोष्णप्रवेदनाशमनं ततः ॥  
 तैलेन पद्मिनीकन्दं पक्वगोमूत्रमिश्रितम् ।  
 पिबेन्मूत्रनिरोधे तु सतीव्रवेदनान्विते ॥  
 पित्तप्रकोपनैर्द्रव्यैः कटून्मलवणैस्तथा ।  
 गौरास्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्त्तते ॥  
 मद्यपानेन क्षोणेन अमव्यायामपीडितैः ।  
 पित्तं प्रकोपयेच्छीघ्रं करोति मूत्रकृच्छ्रकम् ॥

तेन मूत्रयते कृच्छ्रं चाणधारा प्रवर्तते ।  
 मूत्रस्रोतश्च हरति रक्तञ्चापि प्रवर्तते ॥  
 तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन सम्पद्यते सुखम् ।  
 यष्टीमधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥  
 रक्ततण्डुलतोयेन मूत्रकृच्छ्ररुभापहम् ।  
 बन्धप्ररोहमालासु द्राक्षाशर्करयान्वितः ॥  
 लेहोऽयं मूत्रकृच्छ्रस्य नाशनो भिषजांवर ! ।  
 देहोपशमनः प्रोक्तः शीतगाहनकोपतः ॥  
 मूत्रकृच्छ्रे तु तत् प्रोक्तं भोजनं मयुरं हितम् ।  
 उत्तानस्य रती भङ्गाद् दाहव्यायामजातके ॥  
 मूत्ररोधे वचा वर्ध्या दद्यात् तत्रानिरोधकान् ।  
 अव्यायामे शुभं भोज्ये शीतावगाहिता नरे ॥  
 एतैस्तु कुपितो वायुर्मृचहारं प्रकम्बति ।  
 श्लेष्ममहितः पापिष्ठ उक्तः कष्टतमो गदः ॥  
 शृणु तस्य प्रतीकारं कषायं बालुयामनम् ।  
 वस्तिनिरूहकाथश्च मूत्ररोधे हितो विधिः ॥  
 सर्वसस्त्रेदनञ्चैव स्थानं वक्रमणाविव ।  
 तुरङ्गशकटारोहधावनञ्च हितं मतम् ॥  
 फलत्रिकं समगुडं काथः क्षौररसेन तु ।  
 पानं मूत्रनिरोधेषु पित्ताद्वा लवणास्त्रिकम् ॥  
 पाटला च टुण्डुका च निम्बगोक्षरकं तथा ।  
 एलात्वक् च तथा पत्रं काथस्त्रिफलयान्वितः ॥  
 गुडेन संयुतं पौतं हन्ति मूत्रनिरोधकम् ।  
 दाडिमाम्लयुतञ्चैव हितं मूत्ररुजां नृणाम् ॥  
 क्षिफलेक्षुसिताकाथगुडेन सह सैन्धवम् ।  
 मूत्ररोधं धारयति पथ्या वा गुडसंयुता ॥

अथवा तोदनाक्षारीमैथुनञ्च विधेयकम् ।

तेन सौख्यं भवेच्छीघ्रं स्त्रीणाञ्च योनिमर्दनम् ॥

इति श्रीमच्छर्मात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सा  
नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ अश्मरौचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

पितृमातृकदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ।  
अतिपथ्याक्षाभिचारैर्जायते चाश्मरौगदः ॥  
मूत्राविष्टौ च पितरौ सुरतं कुरुतो यदि ।  
मूत्रेण सहितं युक्तं च्यवते गर्भसम्भवम् ॥  
पञ्च यस्य मर्दहस्य स च तत्र प्रजायते ।  
मूत्रं मूत्रस्य संस्थाने करोति बन्धनं त्रिषु ॥  
सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदश्चाल्पाद्भवति मानुषे ।  
तारुण्ये चापि साध्यश्च जायते मूत्रशर्करा ॥  
विपरीतेन चोत्ताने स्त्रिया च पुरुषेण वा ।  
शुक्रञ्च प्रवहेत् तस्य स्त्री शुष्कं विचिनोति च ॥  
पुनश्च मेहने वासः वार्तन शोणितञ्च तत् ।  
द्वयं दत्तं प्रपद्येत मूत्रहारं प्ररुध्यति ॥  
तेन मूत्रप्ररोधश्च जायते तीव्रवेदना ।  
अण्डसन्धिस्थिता याति शर्करा शस्त्रसाध्यका ॥  
अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र ! महामते ! ।  
शुण्ठी गोक्षुरकं चैव वरुणस्य त्वचस्तथा ॥  
काथो गुडयवक्षारयुक्तश्चाश्मरिनाशनः ।  
कुशकाशनलं वेणु अग्निमन्याक्षहृत्तकम् ॥

खदंष्ट्रा मोरटा वापि तथा पाषाणभेदकम् ।

पलाशस्त्रिफलाक्वाथो गुडेन परिमिश्रितः ॥

पाने मूत्राश्मरीं हन्ति शूलवस्तौ व्यपोहति ॥

एलाकणावृषत्रिकण्टकरेणुकाच-

पाषाणभेदमधुकञ्च फलत्रिकञ्च ।

एरण्डतैलकशिलाजतुशर्कराद्यं

क्वाथोऽश्मरीञ्च जयते खलु सोष्णपानम् ॥

गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षिकसंयुतम् ।

चूर्णे माहिषदुग्धेन पानं चाश्मरिनाशनम् ॥

शस्त्रविधिरुत्तरीये मूत्रस्थाने प्रोक्तस्तैलं च ।

तैलाध्याये प्रोक्तं घृतं घृताध्याये च स्मृतम् ॥

पुराणषष्टिकाशालिरक्ततण्डुलकास्तथा ।

श्यामाकः कोद्रवो दालो मर्कटी तृणधान्यकम् ॥

कुलत्थयवगोधूमास्तथा चैवाढकी किल ।

वातघ्नाश्च प्रयोक्तव्या भोजने वातरोगिणाम् ॥

क्रीञ्चाद्यानि च मांसानि पथ्यान्यश्मरिनाशने ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने

अश्मरीचिकित्सा नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

हात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ वृषणवृद्धिचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

अत ऊर्ध्वमण्डहृद्विर्वक्ष्यते भिषजां वर ! ।

बाल्ये मातुः पितुर्दोषाज्जायते वृषणानुगा ॥

दुष्टदाराविहाराच्च वातो वस्तिगतो भृशम् ।

अण्डस्थानं च संप्राप्य तस्य वृद्धिं करोति वै ॥

एकैकसन्निपाताच्च चतुर्थः सान्निपातिकः ।  
 पित्तदोषात् सन्निपातात् तथासाध्या इमे स्मृताः ॥  
 दोषान् वक्ष्याम्यौषधानि शृणु तानि भिषग्वर ! ।  
 स्वेदनाभ्यञ्जनान्युक्ता काथ्यपानं च वक्ष्यते ॥  
 शिरःस्रावो भिषक्श्रेष्ठ ! तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।  
 कम्पश्च मृदुवातेन पित्तेन दाहकज्वरः ॥  
 कफाह्वनश्च शोषश्च कठिनो वृषणो भवेत् ।  
 रसालशल्लकीकाथस्तर्कारी कटुतुम्बिका ॥  
 काथसंसेवनार्था च मुष्कवृद्धिः सवातिके ।  
 शीततोयावगाहो वा शीतसंसेवनं तथा ॥  
 शीतशीताग्निलेपश्च पित्तमुष्के प्रशस्यते ।  
 वचालवणतोयेन कदम्बार्जुनसर्षपैः ॥  
 कषायसेवनैः प्रोक्तं कफमुष्केऽहितापहम् ।  
 कोलञ्च वारुणत्वक् च शाशिपर्णी शतावरी ॥  
 काथः शस्तः सन्निपातमुष्कवृद्धौ विदां वर ! ।  
 वृक्षादनी च वरुणं दशमूली शतावरी ॥  
 काथपानं वातिके च मुष्कवृद्धौ हितावहम् ।  
 येन वा लभते मौख्यं तत् तत् कर्म समाचरेत् ॥  
 अण्डकोषस्य मध्ये तु रक्ताञ्च धारयेच्छिराम् ।  
 वामकोषस्य वृद्ध्या तु दक्षिणां धारयेच्छिराम् ॥  
 तथोभाभ्यां शिराभ्याञ्च तेन वा न सुखं भवेत् ।  
 इति श्वाण्डे क्रिया प्रोक्ता सा चैवोन्नीतरोगिणे ॥  
 दृष्ट्वा च नितराङ्गञ्च कुर्यात् स्त्रीसेवनं भृशम् ।  
 तेन भङ्गो भवेत् तस्मादुपचारः सुखावहः ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रिभार्षिते हारोतीतरे तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सा

## त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ विसर्पचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

लवणक्षारकटुकैरुष्णस्वेदातिदोषतः ।

रक्तपित्तं प्रकुप्येत स विसर्पे भिषग्वर ! ॥

स चाष्टधा परिज्ञेयः पृथग्दोषैश्च हन्वजैः ।

केवलो रक्तजस्त्वन्यः सन्निपातेन चाष्टमः ॥

तथापरे प्रवक्ष्यन्ते नामानिच पृथक् पृथक् ।

आग्नेयो ग्रन्थिको घोरः कर्दमश्च तथापरः ॥

आग्नेयो वातपित्तेन ग्रन्थिकः पित्तश्लेष्मणा ।

कर्दमो वातश्लेष्मोत्थो घोरः स्यात् सान्निपातिकः ॥

वातज्वरसमो वातसमः पित्तज्वरोपमः ।

श्लेष्मणा शीतलघनः सन्निपातसमस्तथा ॥

न्यग्रोधविल्वखदिरकषायो धावने हितः ।

काञ्चिकाम्लैः पिच्छिलया सौवोरकरसेन वा ॥

मातुलुङ्गरसेनापि धावनं वातसर्पिषु ।

क्षीरेण शीततोयेन धावनं पित्तसर्पिणि ॥

श्लेष्मविसर्पिणे वाथ ध्वजार्जुनकदम्बकम् ।

धावनं सर्पिणे शस्तं सुरासौवोरकेण वा ॥

धावनञ्च हितं तस्य सन्निपाते विसर्पिणे ।

यवाग्निमन्यैश्च शठीन्यग्रोधैश्च समर्षपैः ॥

क्वाथः स्यात् सान्निपातोत्थविसर्पधावने हितः ।

पञ्चजौरकपित्याञ्च काञ्चिकेन तु पेषयेत् ॥

मातुलुङ्गरसेनापि लेपनं वातसर्पिणे ।

धवा रोध्रतिलाद्यैव विदारौ कण्टकं तथा ॥

लेपः पित्तविसर्पे वा गुल्मापन्नैस्तु लेपनम् ।

सैन्धवारिष्टतुम्बीकापटोलपत्रकैर्घृतम् ॥  
 पाचितं लेपने शूलं विसर्पाणां निवारणम् ।  
 रक्तजेषु विसर्पेषु कुर्याद्रक्तावसेचनम् ॥  
 पञ्चाङ्गवकदम्बानां सर्वदा गृहधूमकम् ।  
 लेपने हितकृत् प्रोक्तं धावमं काञ्चिकेन तु ॥  
 कुठेरकाश्च सुरसा चक्रमर्दी निशायुगम् ।  
 मर्षपाः काञ्चिकेनापि पिष्ट्वा च लेपनं हितम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सा नाम  
 त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

### चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ उपसर्गचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

चतुर्विधो भवेद्दोषो वातरक्तममुद्भवः ।  
 गन्धदोषेण जायन्ते नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥  
 क्षुद्रतश्चान्तको घोरः अथवान्या मसूरिका ।  
 वसन्तः मर्षपाकारा पीडका यस्य दृश्यते ॥  
 सोऽपि क्षुद्रतरः प्रोक्तः पित्तरक्तप्रदोषतः ।  
 अग्निदाह इवासञ्ज्ञा पीडका यस्य दृश्यते ॥  
 सोऽप्यतीव विसर्पी स्यादसुखी च निरन्तरम् ।  
 सधनाः पीडका यस्य पाकमेति समः कफः ॥  
 दाहोऽर्बुतिर्विवर्णत्वं तस्य सद्यः प्रजायते ।  
 वर्तुला मसूरिकावत् पीडका यस्य दृश्यते ॥  
 शास्यति शीघ्रपाकेन सा विज्ञेया मसूरिका ।  
 तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं यथाविधि महामते ! ॥  
 गुमाकारं सुरक्षेच्च रक्षायोगविधानतः ।

न स्त्रीणां नाधमानाश्च संसर्गं वा प्रसङ्गकम् ॥  
 सुशीतं शीतलं स्थानं कारयेत् सुप्रयत्नतः ।  
 क्षुद्रकस्योपसर्गस्य लेपनं चात्र कारयेत् ॥  
 कुष्ठं सोशीरन्यग्रोधस्तथोदुम्बरिकत्वचः ।  
 प्रलेपनं प्रशस्तं स्यात् क्षुद्रोपसर्गवारणः ॥  
 शर्कराक्षीरमधुभिर्युक्तं पानं सुखावहम् ।  
 जम्बाम्बपल्लवानाञ्च पिष्टं दधि मधुयुतम् ॥  
 पाययेत् क्षुद्रकस्यास्य अतिसाराग्निनाशनम् ।  
 गोक्षुरकश्चातिविषा कर्कटाद्यं सपर्पटम् ॥  
 कल्कमेतत् प्रयोक्तव्यं मधुशर्करसंयुतम् ।  
 हरीतकीमातुलुङ्गस्वरसं शर्करायुतम् ॥  
 क्षुद्रकस्योपसर्गस्य वामिशोषनिवारणम् ।  
 अग्निकेऽप्युपसर्गं च योज्यं चैतत् प्रलेपनम् ॥  
 रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिम्बपत्राणि चार्जुनम् ।  
 क्षीरेण नवनीतेन हितं स्याल्लेपनं तथा ॥

इति आग्निः ।

घोरं चोपद्रवं दृष्ट्वा न स्वेदं न च मर्दनम् ।  
 न प्रलेपं प्रकुर्वन्ति यथायोगेन पण्डिताः ॥  
 अरण्यगोमयक्षारतैलेन चालनं हितम् ।  
 न तैलेनापि चाभ्यङ्गं लेपं नैव च कारयेत् ॥  
 चन्दनं मधुकं रोध्रं न्यग्रोधोत्पलमारिवा ।  
 मधुना संयुतः कल्कः पानेन चोपसर्गहृत् ॥  
 उपसर्गे ज्वरस्तीव्रो रक्तमूत्रं प्रजायते ।  
 तस्य वक्ष्याम्युपाचारं येन संपद्यते सुखम् ॥  
 पटोलं पर्पटं शुण्ठी मुस्ता च खदिरं समम् ।  
 कल्को मधुयुतः पाने हितः स्याज्ज्वरनाशनः ॥



चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापुष्करं दन्तधावनम् ।  
 क्वाथपानं मधुयुतमुपसर्गज्वरापहम् ॥  
 वमने चातिमारे च दाडिमं कुटुजं तथा ।  
 मधुदधान्वितं पानमतिसारनिवारणम् ॥  
 शेषाश्च क्षुद्रिकाः प्रोक्ताः क्रिया चात्र विधेयका ।  
 एषा क्रिया मसूरिके कर्त्तव्या सुविधानतः ॥  
 वातलानि च सर्वाणि तथा रूक्षाणि कोविदः ।  
 स्त्रीसङ्गं रूक्षशोकञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥  
 ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ।  
 एवं त्रिसप्तरात्रेण सुखं सम्पद्यते नरः ॥  
 ततोऽभिषेकः कर्त्तव्यः कृत्वा मङ्गलवाचनम् ।  
 नूतनानि च सूक्ष्माणि वस्त्राणि च सितानि च ।  
 परिधाय होमकार्यमिष्टभोज्यं विधेयकम् ॥

इति श्रीमद्व्यासविश्वामित्रेण हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सा

नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

### पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ व्रणचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रणानां तु चिकित्सितम् ।  
 व्रणाश्चानेकधाः प्रोक्ता नानाधातुविकारिणः ॥  
 ष्टास्युपानाशनसेवनाश्च क्रोधातिभाराद् व्यमनेन वापि ।  
 ज्ञायते दुष्टव्रणोऽपि घोरश्चान्येन रक्तस्य हि दूषणेन ॥  
 आतेन पित्तेन कफेन वापि हन्धेन वा दोषसमुच्चयेन ।  
 आसं प्रकृष्य रुधिरं विकीर्य सञ्जायते दुष्टव्रणोऽपि घोरः ।

अन्येन रक्तस्य हि दूषणेन वातेन पित्तेन कफेन वापि ॥

त्वग्रक्तानि समेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।

दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्तुप्रदता भृशम् ॥

सरक्तञ्च सशूलञ्च रुजावञ्च सवेपथु ।

रूक्षं वा वातसम्भूतं विज्ञेयं सरूजं व्रणम् ॥

स तु दाहज्वरः सृष्टःस्पर्शनं सहते तु यः ।

शीतः सौख्यं लघुपाको पित्तात् सञ्जायते व्रणः ॥

कठिनो वर्तुलाकारो घोरः शीतः सकण्डुकः ।

उष्णसहः स्निग्धतरश्चिरपाको कफव्रणः ॥

सर्वैर्लिङ्गैर्विजानीयात् सन्निपातसमुद्भवम् ।

द्वन्द्वजैर्द्वयोदोषस्तु दोषे चापि प्रदृश्यते ॥

अभिघातसमुद्भूता विज्ञेयास्ते चतुर्विधाः ।

अन्ये नाडीव्रणा ये स्युः सवाताश्च सवेदनाः ॥

अन्ये तु स्रोतसां मध्ये तेषां शृणु चिकित्सितम् ।

प्रथमं मण्डविस्रावो द्वितीयं स्वेदनं स्मृतम् ॥

तृतीयं पाचनं प्रोक्तं पाचिते पाटनं तथा ।

शोधनञ्च प्रयोक्तव्यं तथा रोहणमेव च ॥

पश्चात् क्रमस्तथैव स्याद् व्रणानां हितकारकः ।

रास्ना वचा तथा शुण्ठी मातुलुङ्गरसस्तथा ॥

काञ्जिकेन सममेकधावनं वातिके व्रणे ।

यष्टौमधुकमञ्जिष्ठापटोलनिम्बपत्रकैः ॥

दुग्धेन कथितं शीतं धावनं पैत्तिके व्रणे ।

त्रिफला च कदम्बश्च तथा जम्बुकपित्तकम् ॥

क्वाथः सोष्णकफोद्भूते व्रणे धावनमुत्तमम् ।

मातुलुङ्गाग्निमन्यौ च मूलं वा काञ्जिकेन च ॥

सुरदारु तथा शुण्ठी लेयो वातव्रणे हितः ।

नलमूर्वा च मधुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥  
 पिष्टं तण्डुलतोयेन पित्रव्रणविनाशनम् ।  
 अङ्गोलकञ्च रोध्रञ्च कदम्बार्जुनवेतसाः ॥  
 पारिभद्रदलञ्चैव पिष्ट्वा व्रणविलेपनम् ।  
 पाकं गते व्रणे वापि गम्भीरे सरुजेऽथवा ॥  
 सरन् शोधनं कार्यं धावनन्तु भिषग्वरैः ।  
 करञ्जधवनिम्बानां कदम्बार्जुनवेतसैः ॥  
 पादावशेषे क्वाथेन गम्भीरव्रणधावनम् ।  
 मञ्जिष्ठा च तथा लाक्षारसश्चैव मनःशिला ॥  
 निशायुगसमायुक्तं पिष्ट्वा वस्त्रपरिसृतम् ।  
 मधुयुक्तं शोधनञ्च व्रणानां हितकारकम् ॥  
 निम्बपत्राणि सङ्घिष्य मधुना व्रणशोधनम् ।  
 निम्बपत्रतिलक्षौद्रं दार्ढ्यमधुकसंयुतम् ॥  
 तथा तिलानां कल्कञ्च शोधनञ्च व्रणेषु च ।  
 तिलञ्च पीतनिम्बस्य पत्राणि सुनिपण्णकम् ॥  
 कषायश्च हितश्चैव व्रणानां शोधनेषु च ।  
 विशुद्धञ्च व्रणं ज्ञात्वा स्रक्षयेच्च व्रणञ्च तत् ।  
 जवनीतेन वा श्रेष्ठं तेन सद्योद्धतो व्रणः ॥

जातीकरञ्जपिचुमर्दपटोलपत्रं  
 यष्टौमधुश्च रजनी कटुरोहिणी च ।  
 मञ्जिष्ठकोत्पलमुशीरकरञ्जबीजं  
 स्यात् सारिवा त्रिवृन्मागधिका समांशा ॥  
 पक्वं घृतं वै हितमेव व्रणे प्रशस्तं  
 नाडीगते च सरुजे च सशोणिते च ।  
 लूताविसर्पमपि हन्ति गम्भीरमेव  
 व्रणाः सदाहकठिना अपि यान्ति नाशम् ॥

इति व्रणक्रिया प्रोक्ता समासेन भिषग्वर ! ।

यथायोगञ्चोपचारं ज्ञात्वा सम्यगुपाचरेत् ॥

इति जात्यादिघृतः

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सा नाम

षष्ठत्रिंशत्तमोऽध्यायः । ०

षड्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ श्लेष्मदार्वर्दाचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

व्रणोक्तैरुपचारैश्च जायते श्लेष्मदं तथा ।

वातेन स्फुटितं रुक्षं श्यामञ्चापि प्रदृश्यते ॥

पित्तेन सदाहपाकं मज्जरञ्चैव दृश्यते ।

श्लेष्मणा जायते स्निग्धं घनं शोफममन्वितम् ॥

सन्निपातेन सर्वाणि जायन्ते भिषजां वर ! ।

मेदाश्रितन्तु वाल्मीकं वल्मीकवत् प्रदृश्यते ॥

सदृशानि च चिक्लानि वातिकोत्थानि लक्षयेत् ।

तस्य क्रिया व्रणोक्ताश्च कारयेद्दिधिपूर्विकाः ॥

जात्यादि च घृतं शस्तं तथैवालेपनानि च ।

पुनः प्रलेपनं कार्यं धवार्जुनकदम्बकैः ॥

गिरिकार्णिकामूलञ्च तथा वृक्षादनीमपि ।

पिष्टा प्रलेपनं कार्यं वाल्मीकश्लेष्मपदस्य च ॥

पिष्टा शूरणकन्दञ्च मधुना च घृतेन च ।

लेपनञ्च हितं तस्य वल्मीकश्लेष्मपदापहम् ॥

वेगाभिवातपवनाद् व्रणाद्वापि तथा पुनः ।

रक्तनाड्यः प्ररोहन्ति शुध्यन्ति च तथा पुनः ॥

तेन रक्तस्य मार्गस्तु रुध्यते तेन जायते ।

अर्बुदञ्च महास्थूलं मार्गरोधाञ्च जायते ॥  
 वातान्मृदु च परुषं कफाञ्च घनशीतलम् ।  
 पित्तेन दाहपाकाब्धं विजानीयात् विचक्षणैः ॥  
 सन्निपातेन कठिनं घनं पाषाणसन्निभम् ।  
 हृदिमञ्च गुडकं स्यादसह्यं तद्भिषग्वर ! ॥  
 तस्यादौ पाटनं कार्यं मर्मस्थानञ्च वर्जयेत् ।  
 सैन्धवेन घृतेनापि कुर्यात् तस्यानुलेपनम् ॥  
 शूरणं कन्दकं दग्धा घृतेन च गुडेन च ।  
 लेपनञ्चार्बुदानाञ्च नाशनञ्च भिषग्वर ! ॥  
 शेषा व्रणक्रिया प्रोक्ता शस्ता वार्बुदशान्तये ।  
 वातघ्नानि च पथ्यानि हितानि मधुराणि च ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने श्लोपदार्बुदचिकित्सा

नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तविंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ लूतागण्डमालाचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

दुष्टास्त्रुपानाञ्च कदन्ननिषेवणाञ्च  
 सञ्जायते च क्रिमिसम्भवगण्डमाला ।  
 समारुते च कफपित्तभवे विकारे  
 संसर्पते क्रिमिजदोषगणश्च गण्डात् ॥  
 त्रातेन वातसदृशानि च लक्षणानि  
 पित्तेन दाहसरुजव्रणशोषतापाः ।  
 संश्लेषणा च शीतलघना समप्रयोगात्  
 स्यात् सन्निपातविहिता च समस्तलिङ्गैः ॥

तस्य चेमं प्रतीकारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ! ।

रोहिणी विशदा चैव विजया च विभेदिनी ॥  
 कान्तारौ वज्रपुष्पा च तथा चेन्द्रायुधापरा ।  
 इति सप्तविधा लूताः शृणु पश्चात् पृथक् पृथक् ॥  
 रक्तमुण्डा भवेद्रक्ता रक्तस्थाने च रोहिणी ।  
 विशदा मांसलस्थाने श्वेतवर्णा च दीर्घिका ॥  
 विजया च शिरोमध्ये पीतवर्णा यवप्रभा ।  
 भेदिनी मेढसंस्थाने श्वेता च नीलरेखिका ॥  
 कान्तारौ च वस्तिमध्ये श्वेताङ्गा रक्तमुण्डिका ।  
 वज्रपुष्पा चास्थिमध्ये श्वेता कृष्णा शिरा मता ॥  
 वज्रायुधा शिरान्ते च धूम्रा कृष्णा शिरा मता ।  
 रोहिण्यङ्गुलिमात्रेण मूत्रेण विशदा समा ॥  
 विजया च यवाकारा वर्तुणा विजया तथा ।  
 अन्या नृणाञ्च विज्ञेया तण्डुलीकण्टकानिभा ॥  
 रोहिणी विजया विंशा मांसस्थानसमाश्रिता ।  
 गुल्फे वा चास्थिमन्थी च दृश्यते भेदिनी नर ॥  
 कुक्षौ कर्णान्तरेऽपाङ्गे कान्तारौ विद्धि पृथक् ॥  
 वज्रपुष्पा शिरसि च शिरान्तार्त्तिप्रदा मता ॥  
 अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र ! प्रयत्नतः ।  
 सान्द्रपूयविस्रावञ्च गम्भीरञ्च व्रणं विदुः ॥  
 अन्यञ्च सरुजञ्चैव पक्वजम्बूममप्रभम् ।  
 लूताव्रणानाञ्चेतानि अपक्वानि च दृश्यते ॥  
 त्यक्त्वा सन्धिस्यमर्मस्थां लूताञ्चैव हि तद्व्रणम् ।  
 तदा तप्तेन तैलेन दाहश्चाशु विधीयते ॥  
 अङ्गोलञ्चैव मद्यानि पारिभद्रदलानि च ।  
 गृहभूमं कृष्णजौरं गोमूत्रेण तु पेपितम् ॥  
 लेपनं हि प्रशस्तञ्च लूतानां मारणे परम् ।

पिण्डीतकं विडङ्गानि तथा चेङ्गुदिमूलकम् ॥  
 वीजपूरकमूलानि पेक्षितानि विलेपयेत् ।  
 गण्डमालां तथा घोरां हन्ति शीघ्रं प्रकण्टकाम् ॥  
 स्नुहीक्षीरं चार्कक्षीरं लूतारम्भे नियोजयेत् ।  
 तेन कौटस्तु तन्मध्ये स्त्रियते नात्र संशयः ॥  
 आस्यतो गिरिकर्णीञ्च चन्दनञ्च समांशकम् ।  
 पिष्ट्वा लेपः प्रयोक्तव्यो लूतां हन्ति सुदारुणाम् ॥  
 करवीर चार्कदुग्धं तथा च कटुतुम्बिकाम् ।  
 निशाद्वयं जाङ्गलिकां तिलतैले विपाचयेत् ॥  
 लूतामभ्यञ्जनैर्हन्ति गण्डमालाञ्च दारुणाम् ।  
 घृतं जात्यादिकं नाम तथा चात्र प्रयोजयेत् ।  
 अन्यान्यपि व्रणे यानि प्रोक्तानि च यथाविधि ॥

इति श्रीमहर्ष्यार्य यभाषिते द्वारीतीतरे तृतीयस्थाने लूतागण्डमालाचिकित्सा  
 नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

### अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

आत्रेय उवाच ।

विरुद्धपानानि गुरुणि चाम्लपापोदकं सेवनकेन वापि ।  
 निद्रा दिवासु प्रतिजागराच्च पित्तं प्रकुप्येत् रुधिराश्रितं तत् ॥  
 त्वचागतः सर्पति रोगदोषः कुष्ठेति संज्ञा प्रवदन्ति धीराः ।  
 पापोद्भवास्ते प्रभवन्ति देहे नृणां भृशं कौपयतां विधिज्ञ ! ॥  
 कुष्ठानि चाष्टादशधा वदन्ति तेषां पृथक्त्वेन वदामि लक्षणम् ।  
 असाध्यसाध्यानि च कर्मजानि दोषोद्भवानि सहजानि तानि ॥  
 कारुण्यपारुष्यमथैव कण्डूरोमप्रहर्षस्त्रिमितं तथैषाम् ।  
 तोदस्तथा संव्यथनञ्च देहे स्निग्धे स्थिते कुष्ठभवेति चिह्नम् ॥  
 कपालकं चैवमुदुम्बरञ्च तथैव दद्रूणि च मण्डलानि ।



विसर्पकं हन्ति वलिं किणञ्च गोजिह्वकं लोहितमण्डलं वा ॥  
 वैपादिकं चर्मदलं तथान्यं विस्फोटक्रान्त्यत्र बहुव्रणञ्च ।  
 कण्डूर्विचर्ची कथितं तथान्यद् धातुप्रभेदास्त्वचि रोगसिद्धाः ॥  
 कपालकाभं सितवर्णकञ्च कापालिकं तद्भदितं विधिज्ञैः ।  
 स्निग्धञ्च सर्वाङ्गगतञ्च कण्डू मृदुस्वरं तं प्रव्रदन्ति सन्तः ॥  
 दद्रूपमं यद्भवते च दद्रुर्दद्रूपमं मण्डलकं तमाहुः ।  
 विसर्पकं सर्पति तद्विसर्पं नृणां तथा स्यात् गजचर्मतुल्यम् ॥  
 यद्दूष्यपारुष्यसकर्कशञ्च गोजिह्वकं स्यात् खलु भेदयोग्यम् ।  
 यथा सरक्तानि च मण्डलानि सकण्डुकानि व्रणसंयुतानि ॥  
 ज्ञेयं तु तल्लोहितमण्डलञ्च रक्तोद्भवं तद्रुधिराश्रितञ्च ।  
 सवेदनार्तस्य परिस्फुटञ्च विपादिका सा कथिता विधेया ॥  
 सरक्तवातात् कुपितात् प्रजाता तथैव विस्फोटकसन्निभा वा ।  
 तथापरं नाम बहुव्रणञ्च सूक्ष्मा च सा वै विदिता नरस्य ॥  
 कण्डूर्विचर्ची भुवने प्रतीता श्वेतानि सूक्ष्माणि च पाटलानि  
 विसर्पते यस्य नरस्य रक्तं युवा न केनापि भवेच्च सिद्धः ॥  
 शिरीषपुष्पाणि शिरीषकाणि सन्त्यक्तभावः परुषञ्च सूक्ष्मः ।  
 तोदस्तथा वेपथुवातलिङ्गं पित्तेन शोषभ्रमदाहटण्णाः ॥

श्लेष्मोद्भवे कठिनशीतलपाण्डुरञ्च

नेत्रे नखेषु च वपुष्यभिलाषिता च ।

मिश्रेण संश्रितभवानि भवन्ति यस्य

स्यात् सान्निपातिकभवं बहुधा च लिङ्गैः ॥

रूक्षं तथा सकण्डूत्वक्स्थितञ्च मृदु शीतलम् ।

आस्रावदाहरक्ताभं रक्तस्थं रक्तगं विदुः ॥

सुस्निग्धं तोदगम्भीरं मांसगञ्च विनिर्दिशेत् ।

भेदः स्थतोदवेष्टत्वं सुस्निग्धं रक्तलोचनम् ॥

अस्थिसंस्थञ्च गम्भीरं विसर्पे नासिकासुखे ।



मज्जसंस्थस्य विकलो मज्जास्रावश्च जायते ॥  
 विशौर्यते च सर्वाङ्गे तथैव शुक्रगं विदुः ।  
 अतो वक्ष्ये समासेन प्रतिकर्म भिषग्वर ! ॥  
 त्वक्स्थे स्वेदश्चावलेपो रक्तस्रावश्च रक्तगे ।  
 रेचनं मांसगे प्रोक्तं मेदोगे काथपाचनम् ॥  
 अथ तानि च त्रीण्येवमस्थिमज्जगतानि च ।  
 वातिके स्वेदनं पथ्यं पित्ते शीतोपचारणम् ॥  
 कष्टसाध्यमिदं प्रोक्तमसाध्यं सान्निपातिकम् ।  
 रोगकारणमालोच्य तदा कर्म समारभेत् ॥  
 पक्षान् पक्षान् शोधनं पाचनञ्च मासान्मासान् कारयेद्रेचनञ्च ।  
 मासान् कुष्ठे शोधनाय प्रकर्षात् षष्ठे षष्ठे मास्यसृग्मोक्षणञ्च ॥  
 वासापटोलफलिनौलवणं वचाञ्च  
 निम्बत्वचं कथितमाशु पिबेत् कषायम् ।  
 कुष्ठे करोति वमनं मदनान्विते च  
 कषाय पञ्च वमने मदनान्वितेषु ॥  
 फलत्रिकं त्रिवृहन्ती विरेकोऽपि भिषग्वर ! ।  
 काथो वचोष्णतोयेन पाने स्याद्विषगुत्तम ! ॥  
 श्वासप्रश्वासयोर्वेध्या शिरा शिरसि चेद्वहिः ।  
 ततः प्रयोजनीयञ्च काथस्नेहस्य भोजनम् ॥  
 शुण्ठीकणाखदिरपाटलिकापटोली-  
 मञ्जिष्ठिकेक्षुविषविल्वयवानिकानाम् ।  
 • व साफलत्रिकजलेन कषायसिद्धः  
 पानान्निहन्ति मनुजस्य च कुष्ठदोषम् ॥  
 वासाविडङ्गपिचुमर्दपटोलपाठा-  
 ण्ठीसुरेन्द्रतरुपञ्चजतुमूलपथ्याः ।  
 हाथो निहन्ति मरुत्प्रभवञ्च कुष्ठं

त्रिःसप्तकेऽहनि महौषधमेव योज्यम् ॥  
 नित्यं क्षिप्रोद्भवाचूर्णं तस्य क्वाथसमन्वितम् ।  
 पीतं जीर्णं घृतेनैव पीतञ्च षाष्टिकं पयः ।  
 हन्ति कुष्ठानि सर्वाणि सप्तधातुगतानि च ॥

अथ लेपनहनि ।

काश्मर्यदरदं घनञ्च कुष्ठं निशादयं काञ्जिककुष्ठमेतत् ।  
 लेपे प्रशस्तं विनिहन्ति कुष्ठं विचर्चिकाञ्चैव विसर्पदोषम् ।

पिष्टानि तत्र मधुकाञ्जिकमूत्रपिष्ट-

लेपेन कुष्ठमपि दुष्टविचर्चिकाञ्च ।

विसर्पदोषे प्रोक्तानि धावनानि च कारयेत् ।

सौवीरकरसेनापि धावनं त्रिफलास्वना ॥

वातिके चैव कुष्ठे च प्रशस्तं कथितं दुधैः ।

निम्बपत्रकषाये च यष्टौमधुककल्कितम् ॥

दुग्धेन शीतलेनापि विदार्याः क्वाथकेन वा ।

हन्ति कुष्ठं महाघोरं धावनं न प्रशस्यते ॥

अग्निमन्यपटोलानि मातुलुङ्गदलानि च ।

शठौपर्पटकक्वाथो धावनं श्लेष्मरोगिणाम् ॥

विपादिकां क्षालयित्वा नवनौतेन यत्नतः ।

स्वेदयित्वा कंदुग्धैश्च मधुतैलेन लेपनम् ॥

खदिरनिम्बककदम्बकं तथा ककुभः पाटलिका च शिरोषकम् ।

कुटजकिंशुकवासासमोरटः वटकुटन्नटपिप्पलिपौलुकम् ॥

धवमुदुम्बरवेतसमेकतः कथितपानविधानघृतेन तु ।

सकलकुष्ठविनाशनकारकं भवति चेन्दुसमानवपुर्नरः ॥

आरग्वधधातकौकर्णिकारधवार्जुनैः सर्जककिंशुकानाम् ।

कदम्बनिम्बकुटजाटरूपाः खदिरेण युक्तास्तथैव मूर्वा ॥

मूलानि चैशामुपहृत्य सम्यगष्टावशेषे कथितः कषायः ।

घृतेन तुल्यं प्रतिमानमस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ।  
कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥

इति भारग्वधादिकाथः ।

खदिरकदरमूर्वाबालकं कर्णिवारः  
कुटजसपष्टिभद्रारग्वधाश्चापि पिष्टाः ।  
क्वथितमितसमांशं वै घृतं पानमस्य  
विनिहन्ति सकलान् वै कुष्ठवैसर्पदर्पान् ॥

भस्मातकद्रूपणमक्षचूर्णं कुष्ठञ्च गुञ्जालवणानि पञ्च ।  
मलत्रिकं तैलविपाचितानि चाभ्यञ्जनं हन्ति च दद्रुकुष्ठम् ॥

इति भस्मातकाद्यं तैलम् ।

प्रश्वत्थमूलं मलिनं समङ्गा निशाद्वयं सर्पपचित्रकञ्च ।  
भृङ्गराजं कटुतुम्बिका च कुष्ठं विडङ्गं मगधा च चूर्णम् ॥  
तृक्ष्णकदुग्धेन विपाचितं तु तैलं तिलानां परिपक्व मेतत् ।  
भ्यञ्जनं चैव नरस्य नूनं दद्रूणि कण्डूनि विनाशयेच्च ॥

इति तिक्ततैलम् ।

हरिद्रा समङ्गा सुराह्वं सचित्रं  
विडङ्गानि कृष्णा विशालाम्बुकुष्ठम् ।  
तथा लाङ्गली चक्रमर्दं च गुञ्जा  
विशाला तथारिष्टपत्राणि चैतत् ॥  
कृतं भावितं चूर्णितं वा गुडेन  
विपाच्यञ्च घर्मे विधेयं नरेण ।  
हितं लेपने कुष्ठपामाविचर्ची  
नरस्यातिशीघ्रं निहन्ति व्रणञ्च ॥

इति हरिद्राद्यं तैलम् ।

स्वप्नं पटोलञ्च किरातकञ्च जाती विशाला सपुनर्नवा च ।  
गोदलाक्षारसमेव वासा त्रायन्तिका विष्वक्कुष्ठयष्टिः ॥

संचूर्णितं क्षीरदध्ना समेतं घृतं विपक्वं परिषेचने च ।

हितञ्च कुष्ठक्षतदद्रुक्तं पामाविचर्चीर्विनिहन्ति कण्डूम् ॥

इति निम्बाद्यं घृतम् ।

अथ पाण्डुरकुष्ठचिकित्सा ।

पित्तञ्चैव गदं भूत्वा वातेनैव समीरितम् ।

सरक्तञ्च प्रकुपितं कुरुते पाण्डुरच्छविम् ॥

स्तब्धचित्तं विरूपञ्च शृणु तस्य च लक्षणम् ।

अमाध्यं वापि साध्यं वा विज्ञेयं तद्भिषग्वरैः ॥

ईषद्रक्तं भवेत् पाण्डुः सन्निपातात् प्रजायते ।

अमाध्यं तच्च सर्वाङ्गचित्रं स्निग्धं तदेव तु ॥

पीतच्छविं पाण्डुररूक्षमेव उपागतं साध्यतमं प्रतीतम् ।

संपाचनं शोधनमेव शस्तं विरेचनं रक्तविमोक्षणञ्च ॥

वामागुडूचौत्रिफलाकरञ्जपटोलनिम्बार्जुनवेतसानाम् ।

कृष्णाममङ्गामहितञ्च कल्कं पाने हितं चित्रकमण्डले च ॥

खदिरवामकनिम्बपटोलकैर्धवयवासकमेव फलत्रिकैः ।

सकलकुष्ठविसर्पकमण्डलं विजयते मनुजस्य च पाण्डुरम् ॥

पाठाविडङ्गमगधासुरदारुचित्रं

दद्रुघ्न रात्रियुगलं च तथा समङ्गा ।

कुष्ठं वचामधुकसैन्यवकाञ्चिकेन

पिष्टन्तु मूत्ररुधिरासरकेन वापि ॥

प्रलेपने चित्रमथैव सिद्धं विनाशमायाति च कण्डुकुष्ठम् ।

विचर्चिकां नाशयते च कण्डूं विस्फोटमाशु प्रतिसर्पणानि ॥

भृङ्गराजो हरिद्रा च दूर्वाजाजी विडङ्गकाः ।

कृष्णास्तिलाश्चित्रकाणि तथैव हरिचन्दनम् ॥

मूत्रेण पेपितं तच्च लेपनं चित्रकुष्ठिने ।

हन्ति दद्रूणि सर्वाणि कुष्ठं दद्रूविचर्चिकाः ॥

निविदाहीनि चाक्षानि वातलानि तथैव च ।  
ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥  
ब्रणेषु कुष्ठराजीषु हितमेवोपचारिणाम् ।

इति श्रीमहर्ष्यत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नाम षष्ठ्यध्यायः ।

इति कायतनं समाप्तम् ।

### ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ शालाकम् ।

अथ शिरोरोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

अतिभारातियोगेन अतितीक्ष्णोष्णसेवनात् ।  
विनाभ्यङ्गेन वा शैत्यात् पित्तेनातिविशेषतः ॥  
क्लिमिदोषेण वा पुंसां जायते च शिरोरोगदः ।  
वातरक्तकफात् पित्तात् पित्तेनापि विशेषतः ॥  
सन्निपातेन विज्ञेयाः क्लिमिजाश्च तथापरे ।  
अर्द्धशौर्षविकारश्च दिनहृद्विकरस्तथा ॥

वातेन रात्रौ भवते व्यथा च तथातुरस्य व्यथते शिरश्च ।  
सौख्यं लभेत् स्वेदनमर्दनेन वातेन सा विड्ढपणे रुजा वा ॥  
यस्योष्णमङ्गं भवते शिरस्यं घर्मे सतापे च दिने च रात्रौ ।  
सधूमतो वा कटुको बलाग्ने वातात् सुखं वा निशि स्वास्थ्यमेति ॥  
शीतात् सुखं वा प्रथमञ्च तृष्णा सतीव्रपित्ताद् भवते रुजा च ।  
सूर्योदये वा भवते दिनान्ते भ्रमश्च तृष्णा भवते सुतीव्रा ॥  
सजाड्यमुण्डं भवते च शीतं स्वेदेन युक्तं युगलञ्च नूनम् ।  
दृश्यनेत्रं नयते च तद्वा कफे यदौष्टः शिरसो विकारः ॥  
क्षौणे नासापुटकेऽपि जालं निरेति श्लेष्मा वदने च तृष्णा ।

रक्ताक्षमन्या जठरे च यस्य तमाङ्ग रक्तोद्भवशीर्षरोगम् ॥  
 मध्यं प्रदूष्य प्रतनोति पीता नासापरिस्रावि सविड्जलञ्च ।  
 सजाड्यमोहश्चसनञ्च यस्य शिरोविरोधाद् भवते शिरोऽर्त्तिः ॥  
 यस्यातिमात्रं शिरसि प्रतोदो विभज्यमानेऽपि च मस्तकान्ते ।  
 घ्राणे परिस्रावि सरक्तपूयं क्रिमिप्रभ्रूता च शिरोव्यथा च ॥

क्रोधाच्छोकाद्भवेच्चान्या व्यायामेऽतिश्रमेषु च ।

सा वातेन शिरःपीडा सरुजे च नृणामपि ॥

अतिलेखनपाठेन तथा सूक्ष्मान्निरीक्षणात् ।

दूरदृष्टेक्षणेनापि वेदना वातरक्तजा ॥

नासिकार्द्धे व्यथा तस्य व्यथा भ्रूयुगले भवेत् ।

नीलं कृष्णञ्च पश्येत वेदना मस्तके भवेत् ॥

न रक्तेन विना पित्तं रक्तं पित्तेन चाल्यते ।

न पित्तेन शिरोऽर्त्तिः स्यात् पित्तं वातेन चाल्यते ॥

तस्माद्वक्ष्येऽप्युपाचारं शृणु भेषजलक्षणम् ।

स्वेदः प्रलेपनं नस्यं पानाभ्यङ्गञ्च मर्दनम् ॥

स्वेदनं वातकफजे चाभिघाते तथा पुनः ।

पित्तजे रक्तजे वापि न कुर्यात् स्वेदनं तयोः ॥

रक्तजे च शिरा वेध्या पित्तजे वापि कुत्रचित् ।

कोकिलाख्या च तर्कारी कटुका निम्बपत्रकैः ॥

शोभाञ्जनकपत्रैस्तु काथवास्नेन स्वेदयेत् ।

अमौषाञ्च प्रलेपेन सौख्यं चास्य प्रजायते ॥

मंशौतपरिषेकैश्च यष्टीमधुकचन्दनैः ।

केशरैर्मातुलुङ्गैश्च पित्तजे शीतलेपनम् ॥

कदम्बार्जुनसिन्धुश्च लेपनार्थं भिषग्वर ! ।

गुडेन नागरा वापि पथ्यं वापि गुङ्गेन वा ॥

गुडशोभाञ्जनरसैर्नस्ययोगात् पृथक् पृथक् ।

नस्येन वातमूत्रेण शिरोऽर्त्तिर्योपशाम्यति ॥  
 कट्फलं मरिचं पथ्या मूत्रेणोष्णोदकेन वा ।  
 नस्यं कफोद्भवे घोरे शिरोरोगे भिषग्वर ! ॥  
 वचामधुकसारं वा मूलं वा गिरिकर्णिका ।  
 नस्यप्रयोगे विहितं सन्निपाते शिरोगदे ॥  
 बभ्याकर्कोटकीमूलं पीतमुष्णेन वारिणा ।  
 मितं नस्ये प्रयुञ्जीत क्रिमिजे च शिरोगदे ॥

अथ तैलम् ।

भृङ्गराजरसं चैकं द्विभागं काञ्चिकेन च ।  
 शोभाञ्जनं भागत्रयं सर्वं तत्र विनिक्षिपेत् ॥  
 सौवीरकरसं पञ्च षड्भागं तुम्बिकारसम् ।  
 शुण्ठी सैन्धवमस्त्रीका पटोलं वासकं शिवा ॥  
 अभया सुरसा चैव तैलञ्च चतुरंशकम् ।  
 पाचितं तत् नस्येन योजयेत् च षड्विन्दुकम् ॥  
 तथैव मस्तकाभ्यङ्गे हितं स्यात् कर्णपूरणे ।  
 हितं वातादिजे रोगे शिरोऽर्त्तौ क्रिमिजे तथा ॥

इति षड्विन्दुकं नाम तैलम् ।

करञ्जबीजस्य विभीतकानां पुटेन तैलं परिस्रुत्य धीमान् ।  
 विन्दुत्रयं नस्यविधौ प्रयोज्यं हन्याच्च कुष्ठं क्रिमिजं विकारम् ॥

इति विन्दुत्रयं तैलम् ।

कुष्ठं च यष्टीमधुकं च नीत्वा पटोलजातीसुरसारसञ्च ।  
 विपाचितं तन्नवनीतकञ्च घृतेन नूनं च सरक्तपित्ते ॥  
 सशर्करायुक्तमिदं दिवा च गव्यं प्रहृष्टप्रभवे च दोषे ।  
 लाक्षारसं चन्दनयष्टिकानां पटोलधात्रीफलशर्कराणाम् ॥  
 दध्ना च दुग्धं नवनीतकञ्च विपाचिते नस्यविधौ प्रयुज्यते ।



भूदोषशङ्खतजक्षये वा दिनादिवृद्ध्या प्रभवेऽपि दोषे ॥

इति साक्षादितैलम् ।

कुङ्कुमं यष्टिमधुकं कुष्ठञ्च शर्करासमम् ।  
पक्वञ्च नवनीतेन घृतं नस्ये प्रयोजयेत् ॥  
नश्यन्ति पित्तजा रोगा दिनवृद्धोपवर्जनात् ।  
अर्द्धशौर्षविकारश्च प्रशमं याति सत्वरम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रियभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शिरोरोग-  
चिकित्सा नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

### चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ भूदोषचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

अतिपठनशीलस्य सूक्ष्मवस्त्वौक्षण्येन वा ।  
दूरालोकेन चोष्णेन भूदोषश्चोपजायते ॥  
रक्तवाताश्रितो दोषः पित्तेन सह मूर्च्छितः ।  
भ्रूयथा च प्रभवति नासावंशोद्भवा शिरा ॥  
व्यथते चोष्णवेलासु शीतेन स्याद्विशेषतः ।  
नेत्रमग्नेर्नीलपीतमण्डलानि च पश्यति ॥  
तस्यादौ च क्रियां कुर्याच्छिरा वेध्या प्रयत्नतः ।  
पूर्वोक्तं स्वेदनं कार्यं नस्ये षड्विन्दुकादिकम् ॥  
देवदारु रजनी घनं शठौ पुष्करं कुटजबीजमागधी ।  
कुष्ठरोध्रचविका च वासकं क्वाथितं पुनरेव विस्तृतम् ॥  
तत्र गुग्गुलुं विनिक्षिपेत् पुनः शृण्ठिसैन्धवफलत्रिकं हितम् ।  
चूर्णितं दधिप्रयोविमिश्रितं पाचितञ्च नवनीतकञ्च तत् ॥  
सिद्धमेव विदधीत शीतलं शर्करायुतमिदं हि नस्यकम् ।



नस्त्रकर्म शिरसो रुजापहं भ्रूललाटभुजशङ्खमूलकम् ॥  
 शीर्षरोगमपि चार्द्धशीर्षकं तोदने च विहिते न केवलम् ।  
 कर्णरोगमपि वारयत्यपि तैलमपि शिरोरोगहरं परम् ॥  
 ताम्बूलपत्रस्य रसं विडङ्गं सिन्धुद्भवं हिङ्गुगुडेन युक्तम् ।  
 तलेन पिष्टं विहितं च नस्यं भ्रूशङ्खदोषांश्च क्रिमीन्निहन्ति ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भ्रूदोषचिकित्सा

नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

### एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ नासारोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

नासारोगो भवेत् धीमन् ! क्रिमिजो दोषजः पुनः ।  
 रक्तजश्च भिषक्श्रेष्ठ ! लक्षणञ्च शृणुष्व मे ॥  
 वाताच्छिरोऽर्त्तिः शोथश्च सदोषे वातपैत्तिकम् ।  
 कफजे सघनं शीतं क्रिमिजेऽसृक्प्रवाहनम् ॥  
 नासापाके गुडं शुण्ठ्या वातिके नस्यमेव च ।  
 शर्करा घृतयष्ट्या च पैत्तिके नस्यमेव च ॥  
 श्लैष्मिके सुरसावासारसेन विहितञ्च तत् ।  
 विडङ्गहिङ्गुमगधाः क्रिमिदोषे हिता मताः ।  
 रक्तजेऽसृग्विरेकश्च शिरोरोगप्रशान्तये ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नासारोगचिकित्सा

नाम एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

## द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ इन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

केशघ्नस्य चिकित्सान्तु शृणु हारीत ! साम्प्रतम् ।  
 रूक्षं सपाण्डुरं वातात् पित्ताद्रक्तं सदृहकम् ॥  
 कफान्वितं भवेत् स्निग्धं रक्तात् पाकं व्रजन्ति तत् ।  
 सन्निपातेन सदृशं जायते सर्वलक्षणम् ॥  
 गुडेन सुरसा शुण्ठी मातुलुङ्गरसेन तु ।  
 केशघ्ने वातसम्भूते धावनञ्च प्रशस्यते ॥  
 त्रिफला च वचा शुण्ठी गुडेनापि प्रपेषितम् ।  
 धावनं कफसम्भूते चेन्द्रलुप्ते प्रशस्यते ॥  
 पैत्तिके च द्रितं दुग्धं नवनीतान्वितं तथा ।  
 सिताशिवाफलं यष्टी पैत्तिके धावनं मतम् ॥  
 भृङ्गराजरसं ग्राह्यं शृङ्गवेररसं तथा ।  
 सौवीरकरसेनापि तिलान् पिष्ट्वा प्रलेपनम् ॥  
 पश्चात् कार्यं पुरुषेण स्नानमुष्णेन वारिणा ।  
 धवार्जुनकदम्बस्य शिरीषमपि रोहितम् ॥  
 काथमेषां शिरोदद्रून् शमयेदिन्द्रलुप्तकम् ।  
 कुरुवकस्य पुष्पेण जपायाः कुसुमेन च ॥  
 घृष्टस्य चेन्द्रलुप्तस्य कृतमेव निवारणम् ।  
 पैत्तिकानि च लिङ्गानि दृष्ट्वा दुग्धेन धावनम् ।  
 शीतलानि प्रदेयानि पैत्तिके न विधीयते ॥

धुस्तूरपत्राणि च मागधीनां निशाविशालागृहधूमकुष्ठम् ।  
 घृतेन युक्तञ्च जलेन पिष्टं शिरःप्रलेपे चतवारणं स्यात् ॥  
 पित्ते कृते दोषयुते च रोगे पटोलपत्रं पित्तुमर्दकं वा ।  
 तथामलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च ॥

निवार्यते मस्तकजं क्षतञ्च शिरोऽर्त्तिसङ्घान् विनिहन्ति चैतत् ।  
 ॥जेन्द्रदन्तस्य मर्षीं गृहीत्वा प्रलेपनं वा नवनौतकेन ॥  
 तिलार्कभस्मातकदग्धमाषच्चारस्य लेपो नवनौतकेन ।  
 सर्पस्य चारस्य तथा प्रयोगः खल्लाटके केशचयं करोति ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने इन्द्रलुप्तचिकित्सा  
 नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ कर्णरोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

शक्येन वा तोयविपूरणेन मलेन वा चाति भवेद्गुजा च ।  
 मूच्छासरोधादभवते तथापि वातादिकैर्वा कुपितैरथापि ॥  
 सर्गदोषैरपि सर्वदोषैः क्रिमित्रणेनापि तथैव चान्या ।  
 जायते कर्णरुजा नरस्य शृणोति तेनापि बहुस्वनांश्च ॥  
 नःस्वानमेघध्वनिदन्तशब्दान् शूलं सदाहञ्च शिरोव्यथा च ।  
 गुस्वनं वत्स ! शृणोति सर्वं पित्तेन तं विद्धि भिषग्वरिष्ठ ! ।  
 या च मूच्छां प्रतनोति शब्दं मेघस्वनं वा कफजे शृणोति ॥  
 क्रिमिदोषे स्रवेत् पूयं सरक्तां वापि पुत्रक ! ।  
 तथाचैवाभिघातेन जायते तीव्रवेदना ॥  
 क्षतेन पूयं स्रवते वाल्याद्भवति चापरः ।  
 तत्रापि लूतादोषेण जायते कर्णजा रुजा ॥  
 कर्णरोगे जलपूरणञ्च न चूर्णमेतत् कथितं विधिज्ञैः ।  
 तं हितं स्वेदनमेव कर्णे सवाष्पविन्दुश्च हितो मतश्च ॥  
 समुद्रफेनं सिन्धूयं सूक्ष्मचूर्णञ्च कारयेत् ।  
 सौवीरकरसेनापि वातिके कर्णपूरणम् ॥  
 आर्द्रसौवीरकरसं शुण्ठीसैन्धवगुग्गुलुम् ।

माषकुल्माषतोयेन तैलं पक्वातिषोणकम् ।

तुम्बीरसञ्च धार्येत कर्णरोगे प्रशस्यते ॥

यष्टीमधुः कुष्ठमरिष्टपत्रं निशाविशालासुमनःप्रवालाः ।

विपाचितं कर्णभवे च शूले सपैत्तिके वा घृतमेव शस्तम् ॥

ब्राह्मीरसं सैन्धवकं विडङ्गं सभृङ्गराजस्य नृतेन युक्तम् ।

तथैव सौवीररसञ्च पथ्या स्रुतञ्च वस्त्रं परिपूर्णमेतत् ।

हितम्भवेत् तत् श्रुतिपूरणाय पूयं सरक्तं क्रिमिजं निहन्ति ॥

सर्वे प्रोक्ताः शिरोरोगास्तैलानि च घृतानि च ।

जात्याविकान् वा युञ्जीत शिरोरोगविदांवरः ।

वातहारौणि पथ्यानि विदाहौनि गुरुणि च ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रियभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सा

नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

### चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ नेत्ररोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

उष्णातिक्षारकटुकैरभिघातेन वा पुनः ।

सूक्ष्मवस्त्वौक्षणेनापि दोषाः कुप्यन्ति नेत्रजाः ॥

सहजा ये पराजेया वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ।

रूक्षः कण्डूश्च तोदश्च शुष्कशीतास्रसन्ततिः ॥

वातिकं तं विजानीयात् पैत्तिकं शृण्वतः परम् ।

सरक्तदाहे नेत्रे च उष्णस्रावश्च पैत्तिके ॥

शोफकण्डूः सन्निपाते शीतजाश्च कफात्मके ।

द्वन्द्वजो मिश्रलिङ्गैश्च सर्वैस्तैः सान्निपातिके ।

एतद्विलक्षणं ज्ञात्वा चोपचारं शृणुष्व मे ॥

शुण्ठीसुराक्षसुरसाः सह काष्ठीकेन  
 चोष्णेन धावनमिदं सह पैत्तिके च ।  
 श्लेष्मोद्भवे त्रिफलकल्कमिदं समूत्रं  
 प्रशस्तमन्यैः कथितं भिषग्वरैस्तथा ॥  
 शुण्ठी शठी च रजनी त्रिफला सनिम्बा  
 पत्राणि सैन्धवयुतानि तुषाम्लकेन ।  
 शस्तं वदन्ति नयने च ससन्निपाते  
 रक्तोद्भवे च सरुजे च तथा प्रशस्तम् ॥  
 तलत्रिकं दारुनिशासु धूमो वचासु वर्षाभवसैन्धवेन ।  
 लेपनं श्लेष्मभवे विकारे सवातिके वा हितमेव शस्तम् ॥  
 शुण्ठीसैन्धवतक्रेण ताम्रभाण्डे विघर्षितम् ।  
 अपामार्गस्य मूलं वा मूलं धुस्तरकस्य वा ।  
 अञ्जनञ्च हितं तेषां वातनेत्रामयापहम् ॥  
 दुग्धोत्पन्नं नवनीतं यष्टी निम्बस्तिलाश्च संयोज्याः ।  
 त्रिफला गुडसंयुक्ता लेपनं कफनेत्रजरोगघ्नम् ॥  
 शुण्ठी सैन्धवतुल्यं मागधिका ताम्रभाजने घृष्टम् ।  
 दध्ना घृतेनाञ्जनकं निहन्ति सर्वांश्च नेत्रगदान् ॥  
 तपित्तकफदोषसम्भवान् नेत्रयोर्बहुव्यथां हरते क्षणात् ।  
 क एव हरति प्रयोजितः शिशुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥

अथ पुष्पचिकित्सा ।

पूर्वाहारविहारैस्तु नेत्रे पुष्पञ्च जायते ।  
 प्रथमं सुखसाध्यं स्याद्वितीयं कष्टसाध्यकम् ॥  
 तृतीयं शस्त्रसाध्यन्तु चतुर्थं तदसाध्यकम् ।  
 शङ्खपुष्पं तथा रोध्रं शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥  
 काष्ठीकेन तु सम्पिष्टा छायाशुष्का भिषग्वर ! ।  
 वातिके काष्ठीकेनापि पैत्तिके पयसा हिता ॥

श्लेष्मले मूत्रसंयुक्ता पुष्पस्याञ्जनके हिता ।  
 भृङ्गराजरसेनापि त्रिदोषशमने हिता ॥  
 हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ।  
 विभीतकस्य मज्जा वा शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥  
 एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।  
 नाशयेत् तिमिरं कण्डूपाटलान्यवुदानि च ॥  
 हन्ति पुष्पं सपटलं रात्रयन्धञ्च नियच्छति ।  
 क्षताभिघातशोकेन अग्निदग्धञ्च वा पुनः ॥  
 काचञ्च नीलिका चैव सिद्धिमिच्छन्ति नेत्रयोः ।

इति पुष्पचिकित्सा ।

बाल्याद्दोषवलाद्देवदुष्टदाराभिषेवणात् ।  
 वार्द्धक्याच्चैव पटलं तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥  
 वातात् सकश्मलं रूक्षं पित्तान्नीलञ्च पीतकम् ।  
 कफेन शुभ्रं सघनं रक्तेनारक्तकं विदुः ।  
 सन्निपातादिलिङ्गैश्च अतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥  
 शुण्ठीवचारजनितुल्यमनःशिला च  
 शोभाञ्जनाञ्जनविशालजटा च शङ्खम् ।  
 वास्तूकमूलमधुसैन्धवकट्फलानां  
 सौवीरकेण परिमर्दनवर्त्तिरेषा ।  
 छायाविशुष्कनयनाञ्जनके प्रशस्तं  
 नाशं नयेत् पटलनेत्रजरोगसङ्घान् ॥  
 साञ्जना सकट्फला च हरीतक्या मनःशिला ।  
 गुडेन कट्फलञ्चापि निहन्ति नेत्रप्रच्छदम् ॥  
 महाविभीतकफलस्य च शङ्खनाभि-  
 घृष्टं ससैन्धवयुतं पयसास्त्रकेन ।

वर्त्तिर्गुडेन नयनाञ्जनके हिता च  
पित्तप्रसृतपटलस्य निवारणञ्च ॥

इति षटलचिकित्सा ।

सधूमञ्च सवातञ्च रुक्षमुष्णादिकं तथा ।

कटुकाम्लं व्यवायञ्च वर्जयेन्नेत्ररोगिणाम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे दृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सा

नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ मुखरोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

ओष्ठौ च स्फुटितौ यस्य वातिवाहेन वातिकात् ।

तस्य सर्पिर्मर्क्षणञ्च चोष्ठदारणवारणे ॥

सदाहञ्च भवेत् सौख्यं पैत्तिकं तं विनिर्दिशेत् ।

मधुना नवनीतेन ओष्ठयोर्मर्क्षणं मतम् ॥

लेपनं चोष्ठरोगेषु शर्करासहितं दधि ।

सरक्तमोष्ठरोगञ्च दृष्ट्वा रक्तावसेचनम् ।

धवार्जुनकदम्बानां प्रलेपः स्यात् सुखावहः ॥

इति ओष्ठरोगचिकित्सा ।

कृष्णा दन्तावलिर्यस्य दन्तमूलं च वातिकात् ।

चलनं वा प्रदृश्येत वातिकञ्च विनिर्दिशेत् ॥

पैत्तिकात् पित्तवाहञ्च दन्तमांसं विनिर्दिशेत् ।

श्लैष्मिके दन्तपाके च शोफः स्यात् श्वेतता भृशम् ॥

रक्तजे जायते कण्डूरक्तस्रावञ्च दृश्यते ।

सूयते दन्तमांसञ्च रक्ते दन्तपुटे तथा ॥

सच्छिद्रं दन्तमूलञ्च सवलं शूलमेव च ।



दन्तमांसं विशीर्येत क्रिमिजा दन्तरुग् भवेत् ॥  
 वचायवानीसहचित्रकेण सिन्दुत्यविश्वासहसिन्धुवारम् ।  
 कल्कं तथोष्णञ्च सदन्तरोगे मुखे च गण्डूषशतानि पञ्च  
 सर्वेषु मुखरोगेषु हितमेतत् प्रशस्यते ।  
 वचासैन्धवशुण्ठ्या च घर्षणं दन्तमूलके ॥  
 यवानीञ्च वचां रात्रौ दन्तमूले च धारयेत् ।  
 पित्तदन्तजरोगेषु नवनीतं सशर्करम् ॥  
 धात्रीफलेन संघृष्टं दन्तरोगनिवारणम् ।  
 श्लैष्मिके दन्तरोगे च हरीतक्या गुडेन वा ॥  
 घर्षणञ्च प्रशस्तं च त्रिफलाक्वाथसंयुतम् ।  
 अहिमारकमूलस्य क्वाथो गण्डूषधारणात् ॥  
 खदिरस्य तथा क्वाथो यवानीक्वाथ एव च ।  
 क्वाथस्य निम्बमूलस्य दन्तरोगनिवारणः ॥  
 रक्तजे तु विकारे च घर्षो लवणसर्षपैः ।  
 रक्तञ्च स्नावयेत् तस्य इष्टमोष्ठपुटे च तत् ॥  
 विडङ्गं हिङ्गुं सिन्धुञ्च वचाचूर्णेन घर्षयेत् ।  
 क्रिमिजे दन्तरोगे च हितमेतत् प्रशस्यते ॥

इति दन्तरोगचिकित्सा ।

जिह्वायां पीडका यस्य जिह्वापाकं विनिर्दिशेत् ।  
 वातिके सरुजा कृष्णा पित्तेन दाहसंयुता ॥  
 श्लेष्मणा सघना श्वेता सर्वे वै सान्निपातिके ।  
 वचाभया विडङ्गानि शुण्ठी सौवर्चलं कणा ॥  
 घृतेन युक्तं जिह्वायां घर्षणं वातिके गदे ।  
 काष्ठीकेन तु तक्रेण शोष्णगण्डूषधारणम् ॥  
 यष्टीकं चन्दनं सुस्ता मागधी मधुसंयुतम् ।  
 लेपने पैत्तिके दोषे जिह्वास्फोटकवारणम् ॥



शीतेनापि च दुग्धेन हन्ति गण्डूषधारणम् ।  
 दन्तरोगे तथा जिह्वापाके तच्च हितं विदुः ॥  
 रोध्राजुनकदम्बानां काथश्चोष्णः सुखावहः ।  
 श्लेष्मोद्भवे मुखपाके हितं गण्डूषधारणम् ॥  
 रक्तजेषु विकारेषु रक्तस्रावश्च कारयेत् ।  
 कण्ठकेनापि हि जिह्वायाश्चौरयित्वा विलेपनम् ॥  
 मूर्वामुस्ताभयाशुण्ठीमागधीरजनौदयम् ।  
 गुडेन मधुना युक्तं लेपनं रक्तजिह्वके ॥  
 मरिचञ्च वचा कुष्ठं हरीतक्याश्च चूर्णितम् ।  
 घर्षणं श्लेष्मले जाते जिह्वापाके हितं विदुः ॥

इति जिह्वापाकप्रतीकारः ।

तिलपिच्छिलगौल्यादिसेवनातिद्रवादपि ।  
 नवोदकेन कफजो जायते घण्टिकागदः ॥  
 जिह्वामूले कण्ठसन्धौ श्लेष्मरक्तसमुद्भवः ।  
 तेनास्यशोषो जड़ता ज्वरो मन्दश्च जायते ॥  
 शिरोव्यथारुचिस्तन्द्रा तथास्यजड़ता भवेत् ।  
 तर्जन्यां कण्ठमध्ये तु संपीड्य रक्तग्रन्थिका ॥  
 परिस्रुतं तथा रक्तं तदा विम्लापनं हितम् ।  
 वचाञ्च मरिचं कृष्णाचूर्णं तत्र निधापयेत् ॥  
 मर्दनं स्यात् कण्ठदेशे तेन ग्रन्थिर्विलीयते ।  
 धान्यनागरजीमूतवचान्यगोधशुङ्गकाः ॥  
 काथः स्वेदो घण्टिकाया मुखे गण्डूषधारणम् ।  
 दिवारात्री वचाग्रन्थिं मुखे सन्धारयेद्भिषक् ॥  
 तेन सौख्यं भवेत् तस्य मुखरोगादिमुच्यते ।

इति घण्टिकारोगः ।

गले च घण्टिकामार्गे रक्तश्लेष्मविकारजा ।

लम्बिका वर्धते नृणां विज्ञेया गलशुण्डिका ॥  
 रुन्धते चास्य मार्गश्च नेत्रस्रावः प्रदृश्यते ।  
 शिरोऽर्त्तिः श्वासकासश्च ज्वरेणैव प्रपच्यते ॥  
 आशुकारौ महाप्राज्ञः शीघ्रं कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ।  
 शस्त्रेण शुण्डिकां छित्वा कुर्याद्विस्त्रापनं हितम् ॥  
 मागधीमरिचं पथ्या वचाधान्ययवानिकाः ।  
 काथः सोणः स्वेदनञ्च गलशुण्डोपशान्तये ॥  
 दिवारात्रौ यवान्याश्च सुखे संधारणं हितम् ।  
 मर्दनं कण्ठदेशे तु तेन संपद्यते सुखम् ॥  
 सिद्धार्थकं वचा कुष्ठं रजनी पारिभद्रकम् ।  
 गृहधूमं सलवणं कण्ठे वा लेपनं हितम् ॥  
 ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि यानि तानि महामते ! ।  
 न गौल्यं पिच्छिलं सेव्यं तैलं नैव गलामये ॥

इति गलशुण्डिकाचिकित्साः

इति श्रीमद्द्विष्यत्रेयभाषिते हारौतसंहिते तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सा

नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

—

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ वृद्धक्षीणानां वाजीकरणम् ।

आत्रेय उवाच ।

क्लैब्यं पञ्चविधं प्रोक्तं समासेन शृणुष्व मे ।  
 निरोधातिव्यवायेन वयःश्रान्तेऽपि मानवे ॥ १ ॥  
 जायते रेतसो हानिः क्लौवत्वञ्चापि जायते ।  
 त्रिविधं जायते क्लैब्यं मानसं रेतसः क्षयात् ॥  
 सङ्गजं शुष्कसंस्वेदाज्जायते क्लौवता नरे ।  
 यस्य वै समता चित्ते दृष्ट्वा स्त्रीणां विरागिताम् ॥

स्पर्शने स्वेदकं पञ्च तत् साध्यं मानसं स्मृतम् ।

यस्य विद्वेषतः स्त्रीणां व्यवायेन मनःक्षतिः ॥

ध्वजभङ्गो भवेच्छीघ्रं तत् क्लैब्यं रेतसः क्षयात् ।

समप्रकृतिर्यस्यान्यः सोऽप्यसाध्यतमः स्मृतः ॥

मनःक्षये मनोद्वेको मुग्धस्त्रीसहसङ्गमः ।

सरागविभ्रमकथालापैः संवर्द्धते मनः ।

शुक्रक्षये शुक्रवृद्धिं कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥

शरिकामोक्षुरमूषलानां धात्रीफलं स्यात् सहसैन्धवानाम् ।

॥नि चैतानि च मागधीनां युक्तं सिताब्जं पयसा पिवेच्च ॥

३ वृहत्पौ मगधात्रिकण्टा तथात्मगुप्ता सशतावरी च ।

॥र्करं गोपयसो घृतेन पानं नराणां प्रकरोति वीजम् ॥

यवगोधूममाषाणां निस्तुषाणाञ्च चूर्णकम् ।

दुग्धेनेक्षुरसेनापि संस्कृत्य च घृतेन तु ॥

पाचितं वटकश्रेष्ठं भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।

तस्योपरि पयःपानं पिप्पलीशर्कराम्बितम् ॥

यवक्षारविदारौश्च माषचूर्णं तथा यवान् ।

सरिचानां सिताब्जञ्च घृतानाञ्च प्रपोलिकाम् ॥

पाचयेद्भक्षयेत् प्रातः पयःपानं तथोपरि ।

वौर्यञ्च कुरुते पुंसां वनिता रमते भृशम् ॥

गुडूची शतमूली च स्वयंगुप्ता वला तथा ।

शाल्मलीमुषलीमूलं चूर्णं गोपयसाम्बितम् ।

पानं नराणां श्रेष्ठं तु वीजमिन्द्रियकारकम् ॥

शरिकम्दांशुमतौ वृहत्पौ काकोलिका भीरु पुनर्नवे द्वे ।

गटकं मागधिका वला च चूर्णं सिताब्जं सितया प्रयोज्यम् ॥

र्णं पयःपायसमेव योज्यं करोति पुंसां वलमेवमोजः ।

णां सहस्रं भजतेऽपि षण्णो मासद्वयेनापि च सेवमानः ॥

वर्जयेत् कटुकं चाम्लं तीक्ष्णं चोष्णं विदाहि च ।  
 रुक्षं वापि च सौवीरं प्रोक्तानि चेन्द्रियक्षती ॥  
 पलाण्डुयवसं कन्दान् तिलान् माषान् यथावलम् ।  
 तथौदनं विशालीनां दुग्धं चक्षुरसं तथा ॥  
 वास्तुकं चिल्लकानाञ्च पथ्ये रुक्क्षयादपि ।  
 वर्जयेत् शूरणं शुण्ठीं योगयुक्तो न योजयेत् ॥

इति श्रीमहर्ष्यतिथभाषिते हारौतोत्तरे तृतीयस्थाने वाजीकरणं

नाम षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ बन्धोपक्रमः ।

आत्रेय उवाच ।

बन्ध्या स्यात् षट् प्रकारेण वात्येनाप्यथवा पुनः ।  
 गर्भकोषस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि ॥  
 जायते न च गर्भस्य सम्भूतिश्च कदाचन ।  
 काकबन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्वितीयका ॥  
 गर्भस्रावी तृतीयान्या कथिता मुनिसत्तमैः ।  
 मृतवत्सा चतुर्थी स्यात् पञ्चमी च बलक्षयात् ॥  
 तस्योपक्रमणं वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् ।  
 अजातरजसां स्त्रीणां क्रियते यदि मैथुनम् ॥  
 तेनैव गर्भसङ्कोचं भगत्वमुपगच्छति ।  
 तेन स्त्री भवते बन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम् ।  
 सा च कष्टेन भवति रामा गर्भवती पुनः ।  
 औषधैश्चोपचारेण सिद्धिश्चापि न संशयः ॥  
 अनपत्यवलेनापि जायते भिषजां वर ! ।  
 न भवेत् काकबन्ध्या च अनपत्यापि सिध्यति ॥

सिध्यन्ती क्षीणधातुत्वाद् जायते सा भिषग्वर ! ।

हौषधानि ।

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनबालकम् ।  
 मधुकं मधुयष्टौ च तथा लोहितचन्दनम् ॥  
 सारिवा जीरकं मुस्तं पञ्चकञ्च पुनर्नवा ।  
 क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥  
 ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ।  
 चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा गिरिकर्णी सिता तथा ॥  
 क्षीरेणालोडिता पित्ते पुष्पसिद्धिं करिष्यति ।  
 रजोरक्तं परीक्षेत वातपित्तकफात्मकम् ॥  
 सरुजञ्च सकृष्णञ्च पक्वजम्बूनिभञ्च यत् ।  
 वातेन बाधितं पुष्पं तच्चैव लक्षयेद्बुधः ॥  
 तत्र नागरपिप्पल्यौ मुस्ताधन्वयवासकम् ।  
 वृहत्यौ पाटला चैव क्वाथः सगुडको दधि ॥  
 सप्ताहं पाययेद्बीमान् यावत् स्रवति शोणितम् ।  
 विशुद्धे च तथा रक्ते पाययेत् पयसान्वितम् ॥  
 श्वेता च गिरिकर्णी च श्वेता गुञ्जा पुनर्नवा ।  
 तेन सा लभते गर्भं मासमेकं प्रयोगतः ॥  
 जपाकुसुमसङ्काशं कुसुम्भरक्तसन्निभम् ।  
 दाहशोषमूत्रकृच्छ्रयुक्तं तत् पित्तदूषितम् ॥  
 चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनबालकम् ।  
 मधुकं यष्टिमधुकं तथा लोहितचन्दनम् ॥  
 पुनर्नवे पञ्चकञ्च शारिवा जीरकं घनम् ।  
 क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तकृते गदे ॥  
 ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ।  
 श्वेतार्कमूलं पयसा श्वेता च गिरिकर्णिका ॥

श्वेताद्रिकर्णिकामूलं पानं गोक्षीरसंयुतम् ।  
 बभ्यानां गर्भजननं भवते लक्षणान्वितम् ॥  
 सघनं पिच्छलञ्चापि जाड्यं स्यान्मूत्ररोधनम् ।  
 आलस्यतन्द्रा निद्रा च कफदुष्टं रजो विदुः ॥  
 त्रिफला गिरिकर्णी च तथारण्वधवत्सकी ॥  
 एतेषां पयसा पानं स्त्रीणाञ्च गर्भकारणम् ।  
 वलाद्यं चन्दनाद्यञ्च द्राक्षाद्यं चूर्णमेव च ॥  
 दापयेद्गर्भजननं नारीणां भिषगुत्तमः ।  
 खण्डखाद्यञ्च चूर्णञ्च वलाद्यं चूर्णमेव च ॥  
 दापयेद्गर्भजननं नारीणां भिषगुत्तमः ।  
 खण्डकाद्यञ्च चूर्णञ्च वलाद्यं चूर्णमेव च ॥  
 पुनर्नवाद्यं देयं वा स्त्रीणां गर्भप्रदायकम् ।  
 अथ पथ्यं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणाञ्च शृणु पुत्रक ! ॥  
 कच्चरं शूरणञ्चैव तथा चास्लञ्च कार्ज्जिकम् ।  
 विदारहिकञ्च तीव्रञ्च स्त्रीणां दूरे परित्यजेत् ॥  
 बभ्याकर्कोटकीमूलं लाङ्गली कटुतुम्बिका ।  
 देवदाली द्विजननी सूर्यवल्ली च भौरुका ॥  
 निर्माल्यं माल्यवस्त्रञ्च तथा स्यादुत्तुमङ्गमः ।  
 अन्यस्त्रीस्नातमुदकं स्त्रीणां पथ्यस्योपक्रमः ॥

इति श्रीमद्द्विषात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ गर्भोपचारः ।

आत्रेय उवाच ।

प्रथमे मासि मधुकं मधुपुष्पाणि चैव हि ।  
 नवनीतेन पयसः मधुरं पाययेच्च ताम् ॥  
 द्वितीये मासि काकोलीमधुरं पाययेत् तथा ।  
 तृतीये क्लृप्तं श्रेष्ठं चतुर्थे च क्लृप्तौदनम् ॥  
 पञ्चमे पायसं दद्यात् षष्ठे च मधुरं दधि ।  
 सप्तमे घृतखण्डेन चाष्टमे घृतपूरकम् ॥  
 नवमे विविधान्नानि दशमे दोहदं तथा ।  
 मासे तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियाः ॥  
 यद्यत् कामयते सा च तत्तद्दद्याद्भिषग्वरः ।  
 वर्जयेद्द्विदलान्नानि विदाहीनि गुरुणि च ॥  
 अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणीनां विवर्जयेत् ।  
 मृत्तिका भक्षणीया न न च शूरणकन्दकाः ॥  
 रसोनश्च पलाण्डुश्च सन्त्यक्तो गुर्विणोस्त्रिया ।  
 शूरणानि प्रदेयानि गौल्यानि सरसानि च ॥  
 पथ्ये हितानि चैतानि गुर्विणीनां सदा भिषक् ।  
 व्यायामं मैथुनं रोषं शौर्यञ्चक्रमणं तथा ।  
 वर्जयेद् गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः ॥  
 अथोपपन्नं विहितमपि स्वकीयाचारेण पञ्चमासिकमष्ट-  
 सिकं वा । ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रभोजनमपि कर्त्तव्यम् ।  
 इदादिषु परिपूर्णेषु रूपवान् शूरः पण्डितः शीलवान् पुत्रो  
 प्रते ।

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपचारो

नाम अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

## ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ चलितगर्भचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि ।

तदा मधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥

पयमालोडितं पीतं तेन गर्भः स्थिरो भवेत् ।

द्वितीये मासि चलिते मृणाले नागकेशरम् ॥

तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा ।

तदा मूषककिट्वन्तु शर्करापयसा पिबेत् ।

चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा शूलमेव च ॥

ज्वरेण स्त्रौणां यदि गर्भश्चलते तदोशीरचन्दननागकेशर  
धातकौकुसुमशर्कराष्टतमधुर्दधि पाययेत् । पञ्चमे मासं  
चलिते गर्भं दाडिमोपत्राणि चन्दनं दधि मधु च पाययेत् ।  
षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिकागोमयभस्म उटकं परिसृतं  
शैतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत् । सप्तमे मासि गालुरस-  
मङ्गापद्मकघनमुशीरनागकेशरं मधुरं पाययेत् । अष्टमे मासि  
रोध्रं मधु मागधिकाञ्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे  
स्त्रौणां सुखं सम्पद्यते ।

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतसंहिते तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सा

नाम ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

—

## पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ गर्भोपद्रवचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

शोषो ज्वरस्तथारुचिः शोथो ज्वरस्तथारुचिः ।

अतीसारो विवर्णत्वमष्टौ गर्भस्योपद्रवाः ॥

वक्ष्यामि भेषजं तस्य यथायोगेन साम्प्रतम् ।



घटप्ररोहं मगधा चोशीरं घनमेव च ॥  
 धृतास्ये खण्डगुटिका विहिता शोषवारिणी ।  
 वत्सकं मगधा शुण्ठी तथा चामलकीफलम् ॥  
 युक्तं कोमलविल्वेन दध्ना पिष्टन्तु दापयेत् ।  
 शर्करासंयुतं पानं स्त्रीणां गर्भे हितं सदा ॥  
 पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभागतः ।  
 छर्दिं हरेच्च हृत्क्लेदं मधुना वा समन्वितम् ॥  
 शृङ्गवेरं सकटुकं मातुलुङ्गस्य केशरम् ।  
 भार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा ॥  
 गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिञ्च नियच्छति ।  
 वत्सकं दाडिमं पाठा शुष्कविल्ववलास्तथा ॥  
 जम्बूाम्रपल्लवाश्चैव यथालाभेन सत्तम ! ।  
 शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणाञ्चैवातिसारके ॥  
 हरीतकौ नागरकं गुडेन त्रिफलोदकम् ।  
 पीतं स्त्रीणां नाशयति विबन्धविद्रधिं गदम् ॥  
 मागधी त्रपुसैर्वारिवीजानि मूत्रबन्धने ।  
 शिलाभेदं सिताढ्यञ्च पिबेत् तण्डुलवारिणा ।  
 मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम् ॥

मधुकविषमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं

घनमतिविषमैन्द्रं बीजमौशीरनौरम् ।

समकृतमथ कल्कं देयमाशु प्रपाने

र्हितमपि युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥

गर्भस्योपद्रवाः शोथाः स्वेदयेदुष्णवारिणा ।

न दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान् ॥ ३

इति श्रीमहर्ष्यत्रयभाषिते हारीतीतरे तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सा

## एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ मूढगर्भचिकित्सा ।

आद्वेय उवाच ।

विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च ।  
 अतिमूर्ध्वेनपीडायाः पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥  
 तिर्यग्वापि च गर्भश्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च ।  
 अन्यद्वा म्रियतेऽपत्यं तेन कष्टं प्रपद्यते ॥  
 अथवा लज्जया स्त्रीणां सङ्कोचात् सङ्कुचिते भगे ।  
 मूढगर्भश्च जानीयात् तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥  
 वस्तिशूलश्च भवति योनिद्वारं निरुन्धति ।  
 गर्जते जठरं यस्या आधानञ्चैव जायते ॥  
 तोदनं चाङ्गभङ्गश्च निद्राभङ्गश्च जायते ।  
 वाताद्भवति गर्भस्य संरोधो भिषगुत्तम ! ॥  
 शूलं ज्वरस्त्रिदोषश्च तृणा दोषो भ्रमस्तथा ।  
 मूत्रकृच्छं शिरोऽर्त्तिः स्यात् पित्ताद्रोधो भ्रूणस्य च ॥  
 आलस्यतन्द्रा निद्रा च जाड्याधानश्च वेपथुः ।  
 कासो विरसता चास्ये श्लेष्मणा मूढगर्भके ।  
 दन्धैश्च दन्धजं विद्यात् सर्वं स्यात् सान्निपातिकम् ॥

अथ मृतगर्भस्य लक्षणम् ।

भ्रममूर्च्छातृषाधानं वातरोधश्च विह्वलम् ।  
 मूर्च्छावमिं सपारुथं दीनत्वमुपगच्छति ॥  
 मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी स्त्रियामपि ।  
 अतो वक्ष्यामि भैषज्यं महामोहे विशारद ! ॥  
 वातिके मर्दनाभ्यङ्गं स्वेदनं वात्पमेव च ।  
 यवागुं पञ्चकोलश्च पाययेद्विषगुत्तमः ॥  
 पैत्तिके शीतलं पानं शीतान्नसहितानि च ।

थञ्जनानि तथा तस्य यष्टिकं पयसा पिबेत् ॥

त्रिकटु त्रिफला कुष्ठं रोध्नं वत्सकधातुकी ।

सगुडं कथितं पाने श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥

मूर्वाचिश्चावास्तुकर्णीमञ्जिष्ठारोध्ननीलिकाः ।

कर्कभुमूलं सैराष्ट्री काथश्च सगुडो हितः ॥

रक्तपित्तविकारेषु कुक्षिशुद्धिश्च जायते ।

मृतगर्भस्य वक्ष्यामि भेषजं भिषजां वर ! ॥

मर्दयित्वा मानुषीश्च ततश्चापि प्रयत्नतः ।

निराहाराच्च म्रियते यदि गर्भोऽन्तरे स्थितः ॥

तदा शस्त्रप्रतीकारं भेषजानि शृणुष्व मे ।

नाभिविलशयाच्च सुकुण्डलिकां कृत्वा तु तस्योपरि मूढ-  
र्भासुपवेश्य जानुनी प्रसार्य किञ्चित् पृष्ठभागे साधारण-  
पृष्ठभ्य उदरादधोऽवतारयेत् । योनिद्वारे प्रगलति तिल-  
लेन वारिणा अभ्यज्य हस्तो याति योनिद्वारश्च तस्मात्  
जंन्याङ्गुष्ठेन गलप्रदेशे धृत्वा निःसारयेत् । अथवार्द्धचन्द्रेण  
स्तेणैव मृतगर्भस्य बाहुयुगलं सञ्छिद्य बाहू निःसारयेत् ।

अथ प्रसवोपायमन्त्रौषधानि ।

लाङ्गल्या मूलेन उष्णेन वारिणा यो योषितां नाभिलेप-  
नेन शीघ्रं गर्भो जायते प्रसूयते च । वलामूलं सूर्यकान्ति-  
मवल्लीकानि कज्जलेन पिष्ट्वा लेपनं कुर्यात् ।

अथ सुखप्रसवः ।

भीरुभूनिम्बवार्त्ताकीमूलश्च पिप्पलीयकम् ।

यवान्युग्रवचाः पिष्ट्वा तथा चोष्णेन वारिणा ॥

नाभिदेशादधस्ताच्च प्रलेपेन प्रसूयते ।

मूलश्च लाङ्गलिक्याश्च देवदास्याश्च तुम्बिका ॥

कोशातक्यादिकं सर्वं लेपने परिकल्पितम् ।  
सूतिलेपाः स्त्रियो ह्येते सुखेनैव प्रसूयते ॥

अथ मन्त्रः ।

हिमवदुत्तरे कूले सुरसा काम राक्षसी ।  
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गुर्विणी भवेत् ॥  
ऐं क्लीं भगवति भगमालिनि चल चल भ्रामय पुष्पं  
विकाशय विकाशय स्वाहा । श्रीं नमो भगवते मकरकेतवे  
पुष्पधन्वाय प्रतिचालितमकलसुरासुरचित्ताय युवतिभग-  
वासिने क्लीं गर्भं चालय चालय स्वाहा । एभिर्मन्त्रितं पयः  
पाययेत् तेन सुखप्रसवः ।

अथ यन्त्रः ।

ऐं क्लीं क्लीं क्लूं क्लें क्लीं क्लीं क्लः । इदं यन्त्रमाढकस्योद्ध-  
भागे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेत् शर्यातले च स्थापयेत् तेन  
सुखेन प्रसवः ।

इति यन्त्रः ।

गङ्गातीरे वसेत् काकी चरते च हिमालये ।  
तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् "   
ततो प्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा ।  
अनेन व्याकुलो दूतो भवेत् तावच्च पाययेत्  
तेन प्रसूयते नारी गृहे काकसुखेन च ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सा  
नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ सूतिकोपचारः ।

आत्रेय उवाच ।

प्रसूत्यनन्तरं रोधार्जुनकदम्बदेवदारुबीजकाष्ठं कर्कभूक्ष  
गलाभं लोहितविशुद्धये दापयेत् । प्रसूतिजाता योनिः  
पीध्यते । तैलेनापूर्याभ्यज्य चोष्णेन वारिणा स्वेदयेत् ।  
प्रवासमेकं कृत्वा द्वितीये दिवसे गुडनागरहरीतकीश्च  
पयेत् । ग्रामद्वयादूर्द्ध्वं कुलत्पयूषं वा सोष्णं पाययेत् ।  
तृतीयदिवसे पञ्चकोलयवागूर्दापयेत् । चतुर्थे चातुर्जातक-  
ाया यवागूर्दापयेत् । पञ्चमेऽहनि शालिषष्ठिकीदनं भोज-  
त् । अनेन क्रमेण दशपञ्चदशाहं च उपचारयेत् ।

अथ चीरवृद्धिकारणम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलं नागरं घनवालुकम् ।  
कुस्तुम्बुरुणि मञ्जिष्ठां सह चीरेण कल्कयेत् ॥  
पानं चीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमश्नात्यनन्तरम् ।  
मरिचं पिप्पलीमूलं चीरं चीरविशुद्ध्यर्थे ॥  
मागधी नागरी पथ्या गुडेन सष्टतं पयः ।  
पानं जनयते चीरं स्त्रीणाञ्च चीरपानतः ॥  
एवं कृत्वा च नारीणां द्वादशाहे भिषग्वरः ।  
माङ्गल्यं वाचनं कृत्वा योषार्थञ्च प्रदर्शयेत् ॥  
जातके सुतमोक्षञ्च द्वादशाहं तथा पुनः ।  
नामकर्मकृतौ सत्यां कर्णवेधनमेव च ॥  
वस्त्रबन्धं विवाहञ्च कारयेद् बालकस्य च ।

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतौत्तरे तृतीयस्थाने सूतिकोपचारो

नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ बालचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

षष्ठैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिता दुधैः ।  
 घनक्षीरोष्णक्षीराम्लक्षीरा चैव तथापरा ॥  
 अल्पक्षीरा मृदुक्षीरा क्षारक्षीरा तथापरा ।  
 मृदुक्षीरा भवेत् सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः ॥  
 घनाध्माननिरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः ।  
 उत्फुल्लकुक्षितावन्तिघनक्षीरस्य सेवनात् ॥  
 अल्पमत्वः क्षुशो दीनः श्वासातिसारपीडितः ।  
 अल्पक्षीरस्य दोषेण सम्भवेद्धतवाक् सुतः ॥  
 ज्वरः शोषस्तथाल्पत्वमुष्णक्षीरेण बालके ।  
 तथैव चोष्णक्षीरेण ज्वरातिसार एव च ॥  
 सुखञ्च बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः ।  
 मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि ॥  
 चक्षूरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावशूलिता ।  
 मंक्लेदयुक्तं नासास्यं जायते क्षारदुग्धके ॥  
 अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु हारीत ! मे मतम् ।  
 आध्मानात् फुल्लकुक्षिश्च श्वासदोषादिपीडितः ॥  
 उत्फुल्लिका च विज्ञेया बालानां दुःखकारिणी ।  
 उदरे च जलीकादिरक्तं चादौ विमोक्षयेत् ॥  
 उत्फुल्लिदोषे दातव्यं क्षीरदोषनिवारणम् ।  
 अग्निना प्रबलः स्वेदो दहेद्वापि शलाकया ॥  
 जठरे विन्दुकाकारा जायन्ते भिषगुत्तम ! ।  
 विष्वमूलफलं पाठा त्रिकटुर्वह्नीद्वयम् ॥  
 क्वाथश्च गुडयुक्तश्च बालानाञ्च ज्वरे हितः ।

स्त्रीणां स्यात् पानमेतेषां बालानां ज्वरनाशनम् ।

इति उत्फुल्लिकाचिकित्सा ।

हितः पर्पटककाथः शर्करामधुयोजितः ।

बालानां ज्वरनाशाय कैरातं मधुसंयुतम् ॥

भार्गी रास्ना कर्कटकं चूर्णं वा मधुसंयुतम् ।

लेहो वा बालकस्यापि श्वासकासनिवारणः ॥

पथ्यावचानागरकं घनं कर्कटमेव च ।

चूर्णं सगुडमेवं हि बालानां कासनाशनम् ॥

पलाशभेदं त्रिफलात्रपुसीवरिमागधीः ।

पिष्टा तण्डुलतोयेन सिताढ्यं मूत्ररोधजित् ॥

नागरीं चाभयां दन्तीं गुडचूर्णं प्रदापयेत् ।

बालानां विद्रधिञ्चैव नाशयेच्च न संशयः ॥

पाठाविल्वशिलादीनि वत्सकं शाल्मलीत्वचम् ।

दुग्धेन पानं बालानामतिसारनिवारणम् ॥

अर्जुनञ्च कदम्बञ्च कुष्ठं गैरिकमेव च ।

त्वग्दीषाणां लेपनञ्च वारणं बालकस्य च ॥

रोध्रं रसाञ्जनं धात्री गैरिकं मधुना युतम् ।

अञ्जनं चैव बालानां नेत्ररोगनिवारणम् ॥

अथ बालानां प्रज्ञाकरणम् ।

वचा ब्राह्मी च मण्डाकी घनकुष्ठं सनागरम् ।

प्रातर्देयं घृतेनैव बालानां पुष्टिकारकम् ॥

गुडूचिक्रापामार्गश्च विडङ्गं शङ्खपुष्पिका ।

विष्णुक्रीस्ता वचा पथ्या नामरश्च शतावरी ॥

चूर्णं घृतेन संमिश्रं पिबतो धीः प्रवर्त्तते ।

त्रिभिर्दिनैः सहस्रैकं श्लोकानामवधारयेत् ॥

इति बालानां प्रज्ञाकरणम् ।



अथ बालानां वाचाकरणम् ।

त्रिकटु त्रिफला धन्या यवानौ सालमूलिका ।  
वचा ब्राह्मी तथा भार्गी चूर्णञ्च मधुना हितम् ॥  
वाक्पटुत्वञ्च बालानां नादो वीणासमस्वरः ॥

अथ बालानामपक्वुरचिकित्सा ।

यस्य श्वासो विचैतन्यं तन्द्रा चातीव वेपथुः ।  
शिरोऽर्त्तिः सज्वरश्चैव स चासाध्यो भिषग्वर ! ॥  
लालाप्रवृत्तिर्बालस्य तथा विभ्रान्तलोचनम् ।  
स्तब्धाङ्गविकृतिर्यस्य चापस्मारो स उच्यते ॥  
अपस्मारे तु बालस्य शीतलानि प्रयोजयेत् ।  
वचा सैन्धवपिप्पल्यो नस्यं हि गुड़नागरः ॥  
रसं चागस्तिपत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम् ।  
एतेन प्रतिसौख्यं स्यात् तदा चान्दोलनं हितम् ॥  
मस्तकान्ते ललाटे च दहेल्लोहशलाकया ॥

अथ बालानां पूतनादोषः ।

शून्यागारे देवकुले श्मशाने देवमध्यगे ।  
चत्वरे सङ्गमे नद्योर्भयक्षुभितबालके ॥  
संक्रामन्ति भिषक्श्रेष्ठ ! बालकस्यापि पूतनाः ।  
लोहिता रेवती ध्वाङ्गी कुमारी शाकुनी शिवा ॥  
ऊर्ध्वकेशी तथा सेना अष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिताः ।  
तथान्या मासजातस्य नामानि शृणु साम्प्रतम् ॥  
रोहिणी विजया काली कृत्तिका डाकिनी निशा ।  
भूतकेशी कृशाङ्गी च अष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिताः ॥  
लक्षणञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु पूजावलिक्रमम् ।  
जातमात्रस्य बालस्य लोहिता नाम पूतना ॥  
विस्रगन्धा लोहिता च रोदित्येव मुहुर्मुहुः ।



षलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं प्रजायते ॥  
 द्वितीये दिवसे बालं रेवती नाम पूतना ।  
 गृह्णाति लक्षणं तस्य रोदिति कम्पते भृशम् ॥  
 कृष्णमृगमयीं प्रतिमां कृत्वा गन्धानुलेपनैः ।  
 कृशरारालचूर्णैश्च दीपधूपैस्तथाक्षतैः ॥  
 ताम्बूलैः कृष्णसूत्रैश्च रात्रौ नैऋतिके क्षिपेत् ।  
 तृतीये दिवसे प्राप्ते वायसी नाम पूतना ॥  
 तया गृहीतमात्रेण रोदिति न पिवेत् स्तनम् ।  
 ज्वरश्चैवातिसारश्च काकवद्वदते भृशम् ॥  
 तस्या दध्योदनं पात्रे यवकृशरपोलिकाः ।  
 ध्वजाभिः सगुडैश्चैव कृष्णगन्धानुलेपनम् ॥  
 धूपदीपाक्षतैश्चैव मध्याह्ने वलिमाहरेत् ।  
 चतुर्थे दिवसे बालं कुमारी नाम पूतना ॥  
 गृह्णाति बालकस्तेन ज्वरेण परितप्यते ।  
 शून्यं विगाहते बालस्तन्मुखं परिशुष्यति ॥  
 कृशं स रोदिति तस्याः शृणु पूजावलिक्रमम् ।  
 पायसं सघृतं खण्डं घृतस्य दीपकत्रयम् ॥  
 मृगमयीं प्रतिमां कृत्वा पुष्पधूपाक्षतैरपि ।  
 कृतान्तदिशि मध्याह्ने वलिं दत्त्वा सुखी भवेत् ॥  
 पञ्चमे दिवसे बालं शाकुनी नाम पूतना ।  
 गृह्णाति स तयाक्रान्त स्तन्यं नाकर्षते शिशुः ॥  
 सज्वरो वमते रौति कासमानोऽथ वेपते ।  
 तस्याः शोभनिका पूजा क्रियते तिललड्डुकैः ॥  
 श्वेतगन्धाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृगमयाकृतिम् ।  
 उत्तराशां समाश्रित्य पूर्वाह्ने वलिमाहरेत् ॥  
 षष्ठे च दिवसे प्राप्ते शिवा नाम कुमारिका ।

रीति निःश्वसिति तेन वमते कम्पते तथा ॥  
 स्तन्यञ्च नाहरेद् बालो ज्वरातिसारपीडितः ।  
 तस्यै वलिः प्रदेयश्च सप्तब्रीहिमयश्चरुः ॥  
 पायसैर्दधिदौपैश्च पूज्या सा तिलचूर्णकैः ।  
 गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृगमयाकृतिम् ॥  
 ऐशानीं दिशमाश्रित्यापराह्णे वलिमाहरेत् ।  
 सप्तमेऽङ्गि पूतनाया ऊर्ध्वं केश्याः शिशौ तथा ॥  
 पूर्ववद् दृश्यते चिह्नं तथैव वलिमाहरेत् ।  
 अष्टमे दिवसे प्राप्ते सेना नाम च पूतना ॥  
 तथा गृहीतः श्वसिति हस्तौ कम्पयते भृशम् ।  
 तस्यै दध्योदनं दद्यात् तिलचूर्णञ्च पोलिकाम् ॥  
 धूपदीपगन्धपुष्पताम्बूलान्यक्षतानि च ।  
 आग्नेयीं दिशमाश्रित्य प्रदोषे वलिमाहरेत् ।  
 एवं क्रमेण मासस्य वर्षस्य वलिकर्म च ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने बालचिकित्सा

नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

—

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ भूतविद्या ।

आत्रेय उवाच ।

शून्ये देवकुले श्मशानफलके वीथीप्रतोलीतले ।  
 रथ्याकारविहारशून्यनगरे चारामके चत्वरे ॥  
 जायन्ते क्षुभिते वलानि हृदये क्षुद्रग्रहाणां नरे ।  
 ते चापि प्रथिता ग्रहा दशविधा वक्ष्यामतः साम्प्रतम् ॥  
 दश प्रोक्ता महाचार्यैः कैश्चिदप्येकविंशतिः ।  
 दशग्रहाणां वक्ष्यामि चिकित्सां शृणु पुत्रक ! ॥

ऐन्द्राग्नेयो यमश्चान्यो नैऋतो वरुणो ग्रहः ।  
 मरुतोऽपि कुबेरश्च ऐशान्यो ग्रहको ग्रहः ॥  
 पैशाचिको ग्रहश्चान्यो दशैते ग्रहनायकाः ।  
 आरामे च विहारे च देवस्थाने च यो भवेत् ॥  
 ऐन्द्रग्रहं विजानीयात् तेन हर्षति गायति ।  
 सदर्पश्चासदर्पश्च उन्मादग्रस्त एव च ।  
 श्मशाने चत्वरे चैव गृह्णात्याग्नेयकुग्रहः ॥  
 तेनैव रोदित्यत्यर्थं भयं सर्वत्र पश्यति ।  
 युद्धभूमौ श्मशाने च यमश्चापि उदौर्यते ॥  
 दौनश्च विह्वलस्तेन प्रेतवच्चेष्टते नरः ।  
 वल्मीकचत्वरे चैत्ये गृह्णाति नैऋतो ग्रहः ॥  
 तेनासौ वर्तते द्वेष्टि धावते मारयत्यपि ।  
 दृप्तनेत्रो विवर्णास्यो वलिष्ठो दुष्टचेतनः ॥  
 नदीतडागतीरे च क्लृप्ते वारुणग्रहः ।  
 तेनास्यात् स्रवते लाला भृशं मूत्रयते नरः ॥  
 नेत्रप्लावश्च दृश्येत मूकवत् प्रविलोक्यते ।  
 वातमण्डलमध्ये च गृह्णाति मारुतग्रहः ॥  
 तेनास्यं शोषयेद्दौनः कम्पते वायु रोदिति ।  
 विह्वलः श्रान्तनेत्रश्च निषीदति क्षुधातुरः ॥  
 हर्षगर्वाभिमाने च गृह्णाति यक्षराड् ग्रहः ।  
 तेन गर्वोद्धतश्चैव तथालङ्करणप्रियः ॥  
 देवस्थानै च रम्ये च शिवग्रहश्छलप्रदः ।  
 भस्माङ्गरागं कुरुते भ्रमते च दिगम्बरः ॥  
 शिवध्यानरतो नित्यं गीतवाद्यप्रियस्तु सः ।  
 शून्यागारे शून्यकूपे ग्रहको ग्रहनामकः ॥  
 क्षुधात्ती न तृषार्त्तश्च क्रथते नृ शृणोति च ।

उच्छिष्टे वाशुचौ यस्य क्लृते स पिशाचकः ॥  
 तेन नृत्यति वा रौति गायत्येवाथ जल्पति ।  
 मत्तवदुभ्रमते नग्नो लालास्रावः क्षुधातुरः ॥  
 एवं दशग्रहाणाञ्च लक्षणं कथितं मया ।  
 वक्ष्याम्यतः प्रतीकारं शृणु पुत्र ! समासतः ॥  
 जलस्नानं सातिशयं तथा च बलिकर्म च ।  
 पूजां यथा वाच्यमानां तेन संलभते सुखम् ॥  
 एलाजातिफलं मधुकयुगलं रास्ना तथा खादिरः ।  
 कर्पूरा मलकीजटाबहुसुताघोण्टान्मसारास्तथा ॥  
 सीसं पारदसारदाडिमफलं मद्यैश्च संमीलितम् ।  
 प्रत्येकं दधिदुग्धजाङ्गलरसैर्युक्तं समं कल्कितम् ॥  
 रसेन भावितं तस्य गुटिका च प्रकल्पिता ।  
 जयेच्चन्द्रप्रभा नाम तीव्रान् मोहादिकान् गदान् ॥  
 शुण्ठी मधुकसारश्च चवी किंशुकमेव च ।  
 वचाहिङ्गुसमायुक्तं वस्तमूत्रेण संयुतम् ।  
 देयं ग्रहविकारघ्नं ग्रहाणां नाशनं परम् ॥  
 विडालविष्ठाहिलमोचनिस्त्रयूरपिच्छं समराजिका च ।  
 निर्माल्यपिण्डीतकसर्जमोचधूपं घृताक्तं ग्रहदोषशान्त्यै ॥  
 चेतना नाम गुटिका तथा ब्राह्मीघृतं स्मृतम् ।  
 यान्युक्तानि त्वपस्मारे तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥  
 गुग्गुलुं मधुना चाज्यं तेन धूपेन धूपयेत् ।  
 मन्त्रेण तेन हारीत ! तर्जयेद् ग्रहपीडितम् ॥

अथ भूतेश्वरमन्त्रः ।

श्री नमो भगवते भूतेश्वराय कलिनखाय रौद्रदंष्ट्रकराल-  
 धक्ताय त्रिनयनधग्धगितपिशङ्गललाटनेत्राय तीव्रकोपानलाय  
 अमिततेजसे पाशशूलखड्गखट्वाङ्गडमरुधनुर्वाणमुहुरदण्डप्रासः

धराय कपिलजटाजूटाङ्गचन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय  
उग्रफणिकालकूटाटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूत-  
नाथाय अमरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्यं नृत्य चल चल  
पाशेन बन्ध बन्ध ह्मङ्कारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन  
हन निशितखण्डेन छिन्न छिन्न शूलाग्रेण भिन्न भिन्न मुहुरेण  
चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशं नाशय नाशय स्वाहा ।

अथावेशनमन्त्रः ।

ग्रहाविष्टेन चेत् तस्मै दीयते वलिरुत्तमः ।

मुक्तो भवति तस्माच्च संशयो नास्ति तत्र च ॥

इति श्रीमर्षात्रेयभाषिते ह्यारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भूतविद्या नाम

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ विषतन्त्रम् ।

आत्रेय उवाच ।

द्विविधं विषमुद्दिष्टं स्थावरं जङ्गमं तथा ।  
शृङ्गिको वत्सनाभश्च तथाच शार्ङ्गवैरिकः ॥  
दारकः कालकूटश्च शङ्खः स्यात् सत्सुकन्दुकः ।  
हालाहलश्चाष्टमश्च तथाष्टौ विषजातयः ॥  
शृङ्गिकः कृष्णवर्णश्च वत्सनाभश्च पीतकः ।  
शृङ्गहीसमानवर्णश्च शार्ङ्गवेरः स उच्यते ॥  
दारको हरिवर्णश्च कालकूटो मधुप्रभः ।  
शङ्खश्चातिविषाभासः पीताभः सत्सुकन्दुकः ॥  
हालाहलः कृष्णवर्णश्चाष्टौ च जातयस्तथा ।  
पीतविषं नरं दृष्ट्वा सद्यो वमनमुत्तमम् ॥  
यावत् पीतं विषञ्चैव तावत्तु वमयेत् सदा ।

सिञ्चेत् शीताभसा वक्त्रं मन्त्रपूतेन सत्वरम् ॥

अथ मुखसिञ्चनमन्त्रः ।

ओं हर हर नीलकण्ठ अमृतं प्लावय प्लावय हुङ्कारेण विषं  
ग्रस ग्रस क्लीङ्कारेण हर हर ह्रीङ्कारेण अमृतं प्लावय प्लावय  
हर हर नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ।

अथ कर्णे जपमन्त्रः ।

ओं नमो हर हर नीलग्रीव ! श्वेताङ्गसङ्गतजटाग्रमण्डित !  
खण्डेन्दुस्फूर्तितमन्त्ररूप ! आगच्छ विषमुपमंहर हर हर हर  
नास्ति विषं नास्ति विषं नास्ति विषं नास्ति विषं उच्छिरे उच्छिरे  
उच्छिरे इति कर्णे जपमन्त्रेण वारंवारं तालुमुखं सिञ्चेत् शीत-  
वारिणा ।

अथ विषशमनौषधानि ।

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा चोष्णेन वारिणा ।  
पीतं पीतविषं हन्ति वमनैर्लाघवं भवेत् ॥  
काकजङ्घा सहचरोमूलं चैडगजस्य च ।  
कटरं कार्मुकश्चापि त्वचं पीत्वोष्णवारिणा ॥  
पीतं तच्च विषं घोरं नाशयत्याश्वमंशयः ।  
खदिरस्य च मूलञ्च तथा निम्बफलानि च ॥  
उष्णोदकेन पीतानि जयेयुस्तत्क्षणात् विषम् ॥  
वत्साह्वञ्चाश्वगन्धाञ्च पीत्वा चोष्णेन वारिणा ।  
प्रपीतञ्च विषं पाति नरस्य चाशु वेदवाक् ॥  
अथ प्रधानरक्तस्य क्षते रक्तं विषस्य च ।  
तस्य वक्ष्यामि भेषज्यं येन सम्पद्यते सुखम् ॥  
मर्मस्थाने मर्मगतं तमसाध्यं भवेन्मृतम् ।  
त्वग्रक्तस्थन्तु साध्यं तत् मांसस्थं कष्टसाध्यकम् ॥  
असाध्यं धातुसम्प्राप्तं सम्यक् वक्ष्यामि भेषजम् ।

विषलितं नरं ज्ञात्वा ततः कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥  
 रजनीयुग्मकान्तेन काष्ठीकेन तु पेष्टितम् ।  
 लेपेन च विषं हन्ति प्रलितं नात्र संशयः ॥  
 मातुलुङ्गरसेनापि धावनं काष्ठीकेन वा ।  
 अतिशीतेन त्पेयेन प्रलितं नात्र संशयः ॥

इति स्यावरविषचिकित्सा ।

अथ जङ्गमविषचिकित्सा ।

विषं जङ्गममित्युक्तमष्टधा भिषगुत्तम ! ।  
 दार्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च गुण्डसाः ॥  
 वृश्चिको गोरकश्चापि तथाच खण्डविन्दुकः ।  
 अलर्कमूषमार्जारविषं प्रोक्तमनेकधा ॥  
 दर्वीकराणां सर्वेषामुक्तं वातात्मकं विषम् ।  
 मण्डलिनाञ्च सर्वेषां पैत्तिकं विषमुच्यते ।  
 राजिमन्तश्च ये प्रोक्तास्तेऽपि ज्ञेयाः कफात्मकाः ॥  
 विचित्रगमनं मूर्ध्निः पीडनं चातिदुर्भरम् ।  
 हृदये व्यथनं यस्य तमसाध्यं वदन्ति च ॥  
 नामारक्तसुतिर्यस्य नेत्रे प्लावश्च दृश्यते ।  
 जडा च जायते जिह्वा तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥  
 यस्य लोमानि शीथ्यन्ते पीताभं शरीरं भवेत् ।  
 न स्थिरं मस्तकं यस्य तमसाध्यं भिषग्वर ! ॥  
 एभिर्विरहितं दृष्ट्वा कुर्यात्तस्य प्रतिक्रियाम् ।

ओं नमो भवगते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय  
 उग्रकालकूटविषकवलिने विषं बन्ध बन्ध हर हर भगवतो  
 नीलकण्ठस्य आज्ञा ।

इति विषबन्धनमन्त्रः ।



ओं नमो हर हर विषं सहर सहर अमृतं प्लावय प्लावय  
नासि अरेरे विष ! नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ओ  
हाहा उचिरे उचिरे उचिरे अनेन मन्त्रेण सुखमुदकेन त्रास-  
येत् ओ नमोऽरेरे हंस अमृतं पश्य पश्य ।

जया कूटं वचाकुष्ठं सैन्धवं मृगधा निशा ।  
लेपो दुष्टव्रणे प्रोक्तो विषं हन्ति सुदारुणम् ॥  
सुरसा रजनी व्योषं यवानी पारिभद्रकम् ।  
सर्पदुष्टव्रणे प्रोक्तं लेपनं विषशान्तये ॥  
कुष्ठं मुस्ता अजाजी च विडङ्गं मधुयष्टिका ।  
गुञ्जामूलं शीततोयैर्लेपो मण्डलिनां हितः ॥  
राजिमतां विषे चैव गृहधूमं वचाघनम् ।  
सर्षपाश्च यवानी च पिचुमर्दफलत्रयम् ॥  
एभिश्च लेपनं कार्यं व्रणतैलेन संयुतम् ॥

इति राजिमतां लेपः ।

शठीकिरातं सकटुत्रयञ्च वचाविशालापिचुमर्दकञ्च ।  
पथ्यायवानीरजनीद्वयञ्च दुष्टव्रणे लेपनमेव शस्तम् ॥  
स्थावरं जङ्गमं वापि विषं जग्धं भिषग्वर ! ।  
शीघ्रं दद्याद् व्यथां गुर्वीं प्रोक्तञ्च नरसत्तमैः ॥  
ओं नमो भगवते शिरसि चन्द्रशेखराय अमृतधाराधीत-  
सकलविग्रहाय अमृतकुम्भेन प्लावय प्लावय स्वाहा ।

इति श्रीमहर्षात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विषतन्त्रं

नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।



षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ भिन्नचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

क्लिन्नं भिन्नं तथा भग्नं घृष्टं पिष्टं तथैव च ।  
 आस्फालितं सम्प्रहारः सङ्घातः कथ्यते बुधैः ॥  
 शस्त्रभिन्नं नरं दृष्ट्वा कर्तव्या च प्रतिक्रिया ।  
 अस्थिस्थं भिद्यते मांसमस्थि संक्लिद्यते यदि ॥  
 शाखाप्रशाखयोर्वापि क्लिन्नं तच्च निगद्यते ।  
 असम्भौ परिसंक्लिन्नं तदसाध्यं विनिर्दिशेत् ॥  
 खड्गार्धचन्द्रपरशुक्लिन्नन्तु कथितं सदा ।  
 तस्यादौ चारणालेन धावनं परिकीर्तितम् ॥  
 पिचुना तिलतैलेन शीघ्रं संस्वेदनान्वितम् ।  
 यावद्द्वै स्रवते रक्तं तावत् तैलेन चाभ्यजेत् ॥  
 रक्ते वै विकृतिं प्राप्ते तैलेनाभ्यञ्जनं मतम् ।  
 शोफाद्याश्च प्रजायन्ते बहुलोपद्रवा व्रणे ॥  
 सम्भौ क्लिन्नं नरं दृष्ट्वा सेचयेत् तप्तवारिणा ।  
 मच्चितस्य व्रणस्यापि प्रशस्तं पिचुतैलकम् ॥  
 पूये वापि विनिर्याति निम्ब्वारग्वधपत्रकम् ।  
 गुडेन पथ्यां पिष्ट्वा च लेपनं पूयशोधनम् ।  
 दिनत्रये विशुद्धेऽपि तत्रैव लेपनं हितम् ॥  
 धवार्जुनकदम्बस्य प्लक्षोडुम्बरयोस्त्वचम् ।  
 जलेन पिष्ट्वा लेपश्च तेन संरोहते व्रणः ॥

इति क्लिन्नचिकित्सा ।

अथ भिन्नचिकित्सा ।

शक्तिशूलैश्च वाणैश्च भस्मास्त्रखड्गतोमरैः ।  
 क्षुरिकामुखधाराभिर्भिन्नं तत् कथ्यते बुधैः ॥

साध्यममर्मजं प्रोक्तं मर्मस्थं तन्न सिध्यति ।  
 अपामार्गरसेनापि तथा कूष्माण्डकेन च ॥  
 धावनं काष्ठीकेनापि प्रशस्तं कथ्यते बुधैः ।  
 तिलतैलेन चाभ्यङ्गो हितः स्यादस्थिभिन्नके ॥  
 लेपनञ्च प्रयोक्तव्यं पूर्वोक्तञ्चात्र पुत्रकः ॥

अथ शल्योद्धारचिकित्सा ।

उरसि शिरसि शङ्खे कक्षयोः पादयोर्वा  
 त्रिकजठरमुखाग्रे नेत्रयोः कर्णयोर्वा ।  
 भवति हि यदि शल्यं कष्टसाध्यञ्च शस्त्रै-  
 र्भवति यदि च गूढं भेषजैस्तञ्च साध्यम् ॥  
 शाखाप्रशाखयोर्यञ्च मर्मस्थं तन्न सिध्यति ।  
 यन्त्रशस्त्रप्रतीकारैः शल्यं प्राञ्जः समुद्धरेत् ॥  
 द्वादशैव तु यन्त्राणि शस्त्राणि द्वादशैव तु ।  
 चत्वारि च प्रबन्धानां शल्योद्दारे विनिर्दिशेत् ॥  
 गोधामुखं वज्रमुखं त्रिवक्त्रं सन्दंशचक्राकृतिकङ्कपादम् ।  
 अथानकं शृङ्गककुण्डलञ्च श्रीवत्ससौवत्सिकपञ्चवक्त्रम् ॥  
 द्वादशैतानि यन्त्राणि कथितानि भिषग्वरैः ।  
 अथ शस्त्राणि प्रोक्तानि नामानि च पृथक् पृथक् ॥  
 अर्द्धचन्द्रं व्रीहिमुखं कङ्कपत्रं कुठारिका ।  
 करवीरकपत्रञ्च शलाकाकरपत्रकम् ॥  
 वडिशं गृध्रपादञ्च शूलौ च सूचिमुद्गरम् ।  
 शस्त्राण्येतानि प्रोक्तानि शल्योद्दारे पृथक् पृथक् ॥  
 अतिगुप्तञ्च शल्यञ्च सन्दंशेन समुद्धरेत् ।  
 भिन्नेन तत्प्रतीकारः कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥  
 गम्भीरशल्यं ज्ञात्वा च प्रतीकारञ्च कारयेत् ।  
 घाटनं कङ्कपत्रेण चोद्धरेत् वडिशेन च ॥

भिन्नवच्च प्रतीकारः कर्त्तव्यश्च सुधीमता ।  
यत्न शीथो भवेत् तीव्रस्तच्च शल्यं विनश्यति ॥  
सशल्यं सघनञ्चैव रुजावन्तं निरूप्य च ।  
तच्च योग्यञ्च, यन्त्रञ्च यन्त्रशस्त्रञ्च योग्यकम् ।  
तत् तत्र योजनीयञ्च ऊहापोहविशारदैः ॥  
या वेदना शल्यनिपातजाता तीव्रा शरीरे प्रतनोति जन्तोः ।  
वृतेन संशान्तिमुपैति तिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुनाम्बितेन ॥  
सर्जार्जुनोदुम्बरमर्कटीनां रोध्रं समङ्गासुरसासमेतम् ;  
जलेन पिष्ट्वा प्रतिलेपनाय शल्योद्धृतौ सौख्यमिदं करोति ॥  
शेषा क्रिया च पूर्वोक्ता किञ्चे भिन्ने हिता तु या ।  
कर्त्तव्यो वालुकास्वेदो घटीस्वेदश्च तच्च च ॥

अथ भग्नचिकित्सा ।

भग्नास्थिश्च नरं दृष्ट्वा तस्य वक्ष्यामि भेषजम् ।  
मणिवन्धे कूर्परे च जानौ भग्ने कटौ तथा ॥  
पृष्ठवंशे विभग्ने च साध्यान्त्येतानि सत्तम ! ।  
ग्रीवादेशे चेन्द्रवस्तौ रोहिण्यां कूर्परादधः ॥  
स्कन्धकूर्परमध्ये च तथाच त्रिकमध्यतः ।  
उरसि क्रोडके चैव विभग्नं तदसाध्यकम् ॥  
विभग्नञ्च नरं दृष्ट्वा वेणुखण्डेन बन्धयेत् ।  
म्रत्तयेन्नवनीतेनैरण्डपत्रैश्च वेष्टयेत् ॥  
उष्णाभ्रसा सेचयेच्च वस्त्रेण मृदु बन्धयेत् ।  
ध्वार्जुनकदम्बानां वल्कलं काष्ठीकेन तु ॥  
पिष्ट्वा हितः प्रलेपश्च तेन सौख्यं प्रजायते ।  
स्वेदयेत् तानि चोष्णेन आवासं कारयेत् पुनः ॥  
एवं क्रियासमापत्तौ ततो बन्धं विमोचयेत् ।  
ए क्वाहान्तरितेनापि पूर्ववत् तत् प्रबन्धयेत् ।

यावद् ग्रन्थिं न बध्नाति तावन्न स्नापयेन्नरम् ॥

अथ घृष्टचिकित्सा ।

घृष्टञ्चैव नरं दृष्ट्वा धावनं काञ्चि केन च ।

मूत्रेण शीततोयेन धावनञ्च हितं मतम् ॥

यावद्वै स्रवते रक्तं तावत् तैलेन सेचयेत् ॥

अल्पानि चौषधान्यत्र कारयेद्विविधानि च ॥

अथ आस्फालितचिकित्सा ।

रक्तस्रावे विपाके च स्वेदनञ्च विधीयते ।

भग्नवञ्च प्रतीकारं कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥

आस्फालिते प्रतीकारे ज्ञातव्यञ्च भिषग्वर ! ॥

ऊहापोहैश्च कर्त्तव्यस्तेन सम्पद्यते सुखम् ॥

अथ अभिघातचिकित्सा ।

शिरोऽभिघातजो दोषः शिरोरोगः प्रकीर्तितः ॥

उरसा चाभिघातेन यस्तद् गुल्मश्च जायते ॥

इत्येवञ्च प्रतीकारं कुर्यात् रक्तावसेचनम् ।

स्वेदनञ्च प्रयोक्तव्यं भिषजा कर्मसिद्धये ॥

न च तैलञ्च भोक्तव्यं नात्युष्णं कटुकं तथा ।

मत्स्यानि न च मांसानि घनानि च गुरूणि च ॥

श्वेतशालिसमुद्भूतं यूषञ्चैवाढकौषु च ।

शशलावकवार्त्ताकुक्कुलं तण्डुलौयकम् ॥

शतपुष्पाद्यमन्यञ्च न च हिङ्गुसर्मान्वितम् ।

लवणं नातिभोक्तव्यं यदीच्छेदात्मनः सुखम् ॥

व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवानिद्रां तथा क्रमम् ।

वर्जयेत् सुखसम्पत्तिं सुखञ्च प्रतिपद्यते ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सा नाम

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

६०५

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ अपिदग्धचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ।

अग्निदग्धं नरं दृष्ट्वा तच्च दग्धञ्चतुर्विधम् ।  
द्वेषदग्धं मध्यदग्धमतिदग्धञ्च वत्सक ! ॥  
सम्यग्दग्धं भिषक्श्रेष्ठ ! लक्षणं शृणु पुत्रक ! ।  
अतिदग्धं मांसगं स्याद्वातपित्तकफाश्रितम् ॥  
सम्यग्दग्धञ्च निर्दोषं विज्ञेयञ्च चतुर्विधम् ।  
त्वचा विशीर्यते येन स दाहः पित्तजो भवेत् ॥  
सरक्तञ्च सपित्तञ्च पित्तकोपात् प्रदृश्यते ।  
कृष्णवर्णञ्च तत्पित्तं मांसगं तीव्रवेदनम् ॥  
तस्य वक्ष्यामि संसिद्धैर् भेषजं भिषजां वर ! ।  
द्वेषदग्धे काञ्जिकस्य लेपनं सुखहेतवे ॥  
निम्बपत्राणि सुरसा कुष्ठं धात्रीफलानि च ।  
द्वेषदग्धे यथालाभे लेपनं भिषगुत्तम ! ॥  
मध्यदग्धे पयस्याया लेपनी सुखकारिणी ।  
मधुकुष्ठकमञ्जिष्ठाघृतं पक्कं हितं मतम् ॥  
कुष्ठञ्च यष्टीमधुकञ्चन्दनैरण्डपत्रकम् ।  
मध्यदग्धे हितो लेपो दुग्धेन परिपेषितः ॥  
घृतकपूरचूर्णञ्च गैरिकं रोध्रमेव च ।  
शुष्कचूर्णं पूयहरं दग्धं संरोहयत्यपि ॥  
आमलक्या तिलं कुष्ठं लेपनं वाग्निदग्धके ।  
रोध्रीशीरे समङ्गा च लेपनं शीतवारिणा ॥  
अतसीस्नेहमभ्यङ्गमधुयष्टीघृतेन तु ।  
लेपाभ्यङ्गे हितं दग्धरोहणं दाहवारणम् ॥

अथ धूमपानचिकित्सा ।

धूमोपघाते वमनं क्षीरपानं तथोपरि ।  
जले च तरणं श्रेष्ठं धूमदाहोपशान्तये ॥

इति अग्निचिकित्सा :

इति श्रीमद्भरणीवैद्यभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने चिकित्सितस्थानं नाम  
तृतीयस्थानं समाप्तम् ।

### अथ कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

हिमवत् शिखरे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ।  
तत्रस्थञ्च तपोनिष्ठमत्रिञ्च मुनिपुङ्गवम् ।  
कल्पानाञ्च प्रयत्नेन हारीतः परिपृच्छति ॥

हारीत उवाच ।

ज्ञातञ्चैतन्मया तात ! समासेन चिकित्सितम् ।  
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कल्पस्थानन्तु सुव्रत ! ॥

अथ हरीतकीकल्पः ।

आत्रेय उवाच ।

कल्पानामभया श्रेष्ठा तस्याः शृणु गुणागुणम् ।  
स्वर्गस्थामरराजस्य अमृतं पिबतस्ततः ॥  
पतिता विन्दवो भूमौ तेभ्यो जाता हरीतकी ।  
रसैश्च पञ्चभिर्युक्ता रसेनैकेन वर्जिता ॥  
कषायाम्ला च कटुका तिक्ता स्वादुरसा स्मृता ।  
लवणेन वर्जिता च शृणु तस्याः पृथक् पृथक् ॥  
त्वचाश्रितश्च कटुकं मेदस्तस्याः कषायकम् ।  
मेदोऽन्तरे तथा चान्नं मधुकञ्चास्थिसंश्रितम् ॥

तिक्तं तावदन्तरे तु रसेर्द्युक्ता च पञ्चभिः ।  
 अम्लत्वान्मारुतं हन्ति पित्तं मधुरतिक्ततः ॥  
 कफं कटुकषायत्वात् त्रिदोषघ्नी हरीतकी ।  
 हरीतकी देहभृतां हिता स्यात् मातेव चैषा हितकारिणी च ।  
 वर कदाचित् कुपिमापि मातौ न कुप्यते चाचरितापि पथ्या ॥  
 तस्या उत्पत्तिनामानि वक्ष्यामि शृणु कोविद ! ।  
 विजया रोहिणी चैव पूतना चामृता तथा ॥  
 चेतकी चाभया चैव जीवन्ती चैव सप्तमी ।  
 विम्व्ये च विजया जाता अभया च हिमालये ॥  
 रोहिणी वैदिशि जाता पूतना मगधे स्मृता ।  
 जीवन्तिका सुराद्रायां चम्पायां चेतकी मता ॥  
 अमृता सरयुतीरे इत्येताः सप्तजातयः ।  
 अभया नेत्ररोगेषु शिरोरोगेषु कालिका ॥  
 सर्वप्रयोगे विजया रोहिणी क्षत्रोहिणी ।  
 पूतना लेपनार्थं च अमृता च तथा मता ॥  
 चेतकी सर्वतो योज्या जीवन्ती चूर्णयोगतः ।  
 बालानामुपकारार्थं विजयां परिलक्षयेत् ॥  
 त्रयसा च रोहिणी प्रोक्ता अमृता स्थूलमांसला ।  
 पञ्चासा चाभया प्रोक्ता पूतना चतुरस्रका ॥  
 त्रयसा तु चेतकी प्रोक्ता पूतना दीर्घमांसला ।  
 विजया नीलवर्णा च पीता स्याद्रोहिणी तथा ॥  
 अमृता कृष्णवर्णा च किञ्चिच्छुभ्राभया तथा ।  
 सार्द्धद्व्यङ्गुलमानेन अमृतां लक्षयेद् बुधः ॥  
 पथ्या भवेत् पथ्यतमा नराणां रोगांश्च सर्वान् विनिहन्ति सद्यः ।  
 आयुःप्रदा तुष्टिमतीवमेधावर्णैर्जतेजः स्मृतिमातनोति ॥  
 उन्मूलिनी पित्तकफानिलानां सम्मूलिनी बुद्धिवलेन्द्रियाणाम् ॥



विम्वसिनी मूत्रशक्कलानां हरीतकी रोगहरा नराणाम् ॥

अभया इयङ्गुला प्रोक्ता पूतना चतुरङ्गुला ।

साक्षाङ्गुला च जीवन्ती चेतकी स्यात् षडङ्गुला ॥

चेतकी द्विविधा प्रोक्ता आकारवर्णतस्तथा ।

षडङ्गुला हिता प्रोक्ता शुक्ला चैकाङ्गुला श्मृता ॥

श्रेष्ठा कृष्णा समाख्याता रेचनार्थं जिगीषुणा ।

चेतकी वृक्षशाखायां यावत् तिष्ठति तां पुनः ॥

भिन्दन्ति पशुपद्याद्या नराणां कोऽत्र विस्मयः ।

चेतकीं यावद्विधृत्य हस्ते तिष्ठति मानवः ॥

तावद्भिनन्ति रोगांस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ।

नृपाणां सुकुमाराणां तथा भेषजविदिषाम् ॥

कृशानां हितमेव स्यात् सुखोपायविरचनम् ।

हरीतकी दरिद्राणामनपायरसायनम् ॥

पथ्यस्यान्तेऽथवा चादौ भक्षेच्चामयनाशिनी ।

लृणातुराणां हृदि कण्ठशोषे हनुग्रहे चापि गलग्रहे च ।

नवज्वरे क्षीणवलेन्द्रियाणां न गर्भिणीनां कथिता प्रशस्ता ॥

हरीतकी वा गुड़नागरेण सिन्धूत्ययुक्ता कथिता प्रयोगे ।

आमाशयस्या जठरामयश्च निहन्ति चेन्द्रायुधद्रुमाणाम् ॥

साशारदे वा सितया प्रयुक्ता शुण्ठीगुड़ेनापि हिमे प्रयोज्या ।

ससैन्धवा पिप्पलि शैशिरे च हितो वसन्ते त्रिकटुगुड़ेन ॥

ग्रीष्मे सितानागरकैश्च पथ्या वर्षासु सिन्धूत्ययुता हिता च ।

निहन्ति सर्वामयमेव सद्यो घृतेन पथ्या विहिता हरीतकी ॥

घृतेन देयं मनुजाय कल्कमामानिलं हन्ति नरस्य कोष्ठे ।

दुष्टान् विकारान् हरतीति सद्य एरण्डतैलेन विपाथ्य पथ्यम् ॥

श्वादेत् तदेवानु पिबेच्च तैलं सशूलविष्टभक्तान् विकारान् ।

सर्वान् जयेत् पित्तकफानिलोत्थान्मूत्रे स्थितं सप्तदिनं महिष्याः



पञ्चाभया मूलपलानि पञ्चक्षीरेण सप्ताहमिति प्रशस्तम् ।  
क्षीरोदशोषी परतस्तथान्ये एष त्रिसप्तादपरः प्रयोगः ॥  
वातोदरं शीघ्रमियं निहन्यात् प्लीहानमानाहमुरोगहृत् ।  
सपाण्डुरोगश्च क्रिमींश्च हन्ति हरीतकी धान्यतुषाम्बुसिद्धा ॥  
सपिप्पलीसैन्धवयुक्तधूर्णं सोङ्गारैर्धूपं भृशमप्यजीर्णम् ।  
निहन्ति सद्यो जनयेत् क्षुधाञ्च कल्कञ्च तस्याः सह नागरेण ॥  
ज्वरो विनश्येत्तु च सैन्धवेन दध्ना च तक्रेण हितातिसारे ।  
सराजयक्ष्मे मधुनावलिह्यात् मूत्रेण शोथोदरनाशहेतोः ॥  
सपाण्डुरोगे समशर्करायाः शोषे सदाहे सह मातुलुङ्गा ।  
रसेन युक्ता विहितातिपथ्या कल्कं समाप्तं कथितं मुनीन्द्रैः ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पो

नाम प्रथमोऽध्यायः ।

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ त्रिफलाकल्पः ।

आत्रेय उवाच ।

हरीतक्याश्चामलक्या विभीतस्य फलं तथा ।  
त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥  
एकभागं हरीतक्या द्विभागां च विभीतकीम् ।  
आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥  
त्रिफलः कफपित्तघ्नी महाकुष्ठविनाशिनी ।  
आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥  
वर्णप्रदायिनी घृष्टा विषमज्वरनाशिनी ।  
दृष्टिप्रदा कण्डूहरा वमिगुल्मारशनाशिनी ॥  
सर्वरोगप्रशमनी मेधास्मृतिकरी परा ।

बक्ष्यामि योगयुक्तिञ्च रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥

वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा ।

श्लेष्मणि त्रिकटूपेता मेहे समधुवारिणा ॥

कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवेनाग्निमान्द्यहा ।

चक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः ॥

घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम् ।

गुल्माशीं गुडशूरणैः सद्यः स्याद् गुणकारकः ॥

क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं गुडेन च ।

भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः ॥

वलीपलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ।

सक्षीरः सगुडः क्वाथो विषमज्वरनाशनः ।

सशर्कराघृतः क्वाथः सर्वजीर्णज्वरापहः ॥

एषा नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च ।

सर्वामयानां शमनी च सद्यः सतेजकान्तिं प्रतिमां करोति ॥

शोथे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुता हिता च ।

हितातिसारे ग्रहणीविकारे हिता च तक्रेण फलत्रिका च ॥

क्षीणेन्द्रिये यक्ष्मणि जीर्णरोगे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च

स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च ॥

मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमान्द्ये हिता जलेन त्रिफला हि कल्कः

सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे ।

वर्षासु शुण्ठीसहिता नराणां फलत्रिका सर्वरुजाह्वरा स्यात् ।

इति श्रीमहर्षात्रेयभाषिते हारीतसंहिते कल्पस्थाने त्रिफलाकल्पे नाम

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथ रसोनकल्पः ।

अमृतमयने जातः सुरासुरग्रहो महान् ।  
जहार वैनतेयश्च चक्षुना त्रिदिवं गतः ॥  
संग्रामश्चमसस्माप्ते अमर्शप्रधाविते ।  
आरूढे वैक्लवं प्राप्ते च्युता ह्यमृतविन्दवः ॥  
सकृत्संदूषिते देहे पतितास्तत्र संस्थिताः ।  
तस्मात् कालवशाज्जातं दुर्भिक्षं द्वादशाब्दिकम् ॥  
विशुष्काः कानने सर्वा वृक्षकण्टप्रतानिकाः ।  
तस्माच्च ऋषयः सर्वे प्रकृष्टं गहनं गताः ॥  
तेषां मध्ये जराग्रस्तो गतिहीनोऽतिजर्जरः ।  
सयष्टिः सरणिक्षुण्णः शीर्णदन्तावलीमुखः ॥  
सव्यक्तस्थैः क्षुधापन्नैः ऋषिभिस्तत्र विश्रुतः ।  
सोऽपि क्षुधातुरः सर्वां पर्यटन्नुर्वरां महीम् ॥  
कुत्रचित् पुण्ययोगेन दृष्टवान् विटपान् शुभान् ।  
नौलशैवालसङ्काशान् शाद्वलान् बहुलान् भुवि ॥  
क्षुधासंपीडनेनापि भुक्तवान् सदलानपि ।  
प्रणमासानन्तरं शुष्कान् विटपान् तदनन्तरम् ॥  
भुक्तवान् कन्दकान् सोऽपि मासमेकं तथा ऋषिः ।  
पश्चात् सुभिक्षे सञ्जाते सर्वे चैकत्र संस्थिताः ॥  
सोऽपि वृद्धो युवा भूत्वा गतस्तत्र यत्र च ते ।  
तं दृष्ट्वा विस्मयापन्नाः पप्रच्छुः किं कृतं त्वया ।  
नोक्तवान् स तु किञ्चिच्च रुषा तैः शापितस्ततः ॥  
यत् त्वया खादितं द्रव्यं तदभक्ष्यं द्विजातिभिः ।  
दुर्गन्धमपि चित्रञ्च तस्माज्जातं रसोनकम् ॥  
अथ वीर्यञ्च वक्ष्यामि रसोनस्य महामते ! ।

रसैश्च पञ्चभिर्युक्तो रसोनस्ते न वर्जितः ॥

कटुम्लवीर्यो लशुनो हितश्च स्निग्धो गुरुः स्वादुरसोऽथ बल्यः ।

वृद्धस्य मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरः सुतीक्ष्णः ॥

हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलप्रमेहहृक्कारुचिगुल्मशोफान् ।

दुर्नामकुष्ठानलमान्द्यजन्तु समीपं श्वासकाफान् निहन्ति ॥

तेन रसोनकं नाम विख्यातं भुवनत्रये ।

कुक्कुटाण्डनिभं ग्रीष्मे शीर्णपर्णं समुद्धरेत् ॥

बद्धा पुटे सुनिर्गुप्तं धारयेत् तन्महामते ! ।

दीपाग्निदर्शनात् तेन म्रियते दीर्यते भुवि ॥

वर्षासु शिशिरे चैव कारयेन्मात्रया युतम् ।

रामठं जीरके द्वे च अजमोदा कटुत्रयम् ॥

घृतसौवर्चलोपेतं वातरोगे विशेषतः ।

मातुलुङ्गरसेनापि शूलानाहे प्रकीर्तितः ॥

दध्ना वातादिशमनो रसोनो विहितो बुधैः ।

जाङ्गलानि रसान्येव भोजनार्थं प्रदापयेत् ॥

अथ पेयरसोनः ।

निष्पीड्य च रसं तस्य गृहीत्वा मुनिसत्तम ! ।

दुग्धेन शर्करोपेतं पित्तरोगे पिबेन्नरः ॥

राजयक्ष्मक्षये पाण्डौ कामलायां हलीमके ।

शिरोरुजासु सर्वासु रक्तपित्तभ्रमेषु च ।

मूर्च्छापक्सारशोषे च हितं चैतद्रसायनम् ॥

अथ पेयरसोनः ।

परिपिथ्य रसोनञ्च तत्समा त्रिवृता मता ।

गुडेनैरण्डतैलेन शीतं दत्त्वा च लेहकम् ॥

भवत्येतत् समादृत्य पाययेन्मूत्ररोगिणम् ।

ग्रीप्ते गुल्मे चामवाते हितमेतत् तथार्थसाम् ॥

हरिणशशकलावातिसिराणाञ्च मांसं  
कफकरमपि मयूरादिसाराद्यजाद्यम् ।  
घृतमधुररसं वा शालिगोधूमसिद्धं  
हितमिति मनुजानां गुग्गुले वा रसोने ॥

आयामयानातपमैश्वर्यानि क्राधाध्वजीर्णान् परिवर्जयेच्च ।  
विवर्जयेद्वापि तथातिसारे मेहामये पाण्डुगुडामये च ॥  
न गर्भिणीनां न च बालकानां भ्रमातुरे वा न मदातुरे च ।  
न रक्तपित्ते न च कुष्ठिनेऽपि न रक्तवाते न विसर्पिके च ॥  
दत्तो रसोनो यदि मूढबुद्ध्या विरेचनं वा वमनं विधेयम् ।  
न वान्यथा कुष्ठमथो च पाण्डुत्वग्दोषरोषं कुरुते नरस्य ।  
सुयोगयुक्त्यामृतवन्नराणां वीर्येन्द्रियं पुष्टिवलं तनोति ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतीतरे कल्पस्थाने रसोनकल्पो नाम

चतुर्थोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ गुग्गुलकल्पः ।

हारीत उवाच ।

भगवन् ! गुग्गुलो नाम योगवीर्यमथोगुणम् ।  
वक्तुमर्हसि रोगेषु येषु वापि प्रशस्यते ।  
एवमुक्तस्तु शिष्येण प्रत्युवाच महातपाः ॥

आत्रेय उवाच ।

मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः पुरपादपाः ।  
भानोर्मयूखैः सततं ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलुम् ॥  
हिमाद्रितो वा हेमन्ते विधिवत् तत् समाहरेत् ।  
जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मरागनिभं क्वचित् ॥  
क्वचिन्नाहिषनेत्राभं यक्षदैवतवक्त्रभम् ।

विधानं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥  
 त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धो वृंहणदीपनः ।  
 गुग्गुलुः कटुकः पाके वर्णदो वलवर्द्धनः ॥  
 आयुष्यः श्रीकरः पुत्र ! स्मृतिमेधाविवर्द्धनः ।  
 पापप्रशमनः श्रेष्ठः शुक्रार्तवर्द्धकः स्मृतः ॥  
 वर्णगन्धरसोपेतो गुग्गुलो मात्रया युतः ।  
 भेषजैः सह निःक्वाथो यथा व्याधिहरैः पृथक् ॥  
 मात्रावशिष्टं तं दृष्ट्वा चालयेच्छुक्लवाससा ।  
 मृगस्ये हेमपात्रे च राजते स्फाटिकेऽपि वा ॥  
 गुण्ये तिथौ शुभे भे च जीर्णाहारक्षमान्विते ।  
 हुत्वाग्निं पर्युपासीत देवब्राह्मणभक्तितः ॥  
 प्रविश्य कुसुमाकीर्णं मन्दिरे च समाश्रिते ।  
 रास्त्रा गुडूची चैरण्डो दशमूलं प्रसारिणी ॥  
 क्वाथं तेषां यथायोग्यं यवान्या वातिके पिबेत् ।  
 पृथक्श्रितैर्जीवनीयैः पिबेत् पित्तामयार्दितः ॥  
 वासाचन्दनक्रीवरं मृद्दीका तिक्तरोहिणी ।  
 खर्जूरश्च परूषश्च तथा जीवककर्षकौ ॥  
 सपित्तरोगे पानाय क्वाथः स्याद् गुग्गुलान्वितः ।  
 त्रिफलाव्योषगोमूत्रनिम्बधान्यकपुष्करैः ॥  
 अमृता दीप्यकः क्वाथः पटोली च कफार्दितः ।  
 नाडीदुष्टव्रणग्रन्थिगण्डमालार्बुदान्वितः ॥  
 त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं पिबेन्मेही व्रणी तथा ।  
 किरातकामृतनिम्बवृषाव्याघ्रीदुरालभाः ।  
 एषां क्वाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पाययेद्विषक् ॥  
 गुल्मे कासे क्षते श्वासे विद्रवावरुचौ व्रणे ।  
 हार्वीपटोलक्वाथेन संयुतं गुग्गुलं पिबेत् ॥

कण्डूपिङ्कशोफाद्यो पिवेद् वातकफापहम् ।  
 पथ्या पुनर्नवा दार्वी गोमूत्रममृतं तथा ॥  
 एषां काथो हितः पाण्डौ शोफोदरकिलासिनाम् ।  
 भवेन्मात्रां पलं यावत् कर्षादारभ्य यत्नतः ॥  
 जीर्णेऽश्रीयान्मुह्यूषे रसैर्वा जाङ्गलैस्तथा ।  
 पयसा षष्टिकान्च शालीनामोदनं मृदु ॥  
 दिनाः सप्त प्रथमा च मध्यमा द्विगुणाः स्मृताः ।  
 त्रिगुणाः परमा मात्रा विज्ञेया योगचिन्तकैः ॥  
 सेवते गुग्गुलं यो वै वर्षेणापि नरः क्रमात् ।  
 स्थावराज्जङ्गमाश्चैव न स्यादस्य क्षतिर्विषात् ॥  
 निर्मुक्तो वलितत्वचोऽपि पलितो वृद्धो युवा जायते  
 मेधादृष्टिवलीजवीर्यमधिकं वृद्धत्वहीनो भवेत् ।  
 गुल्माष्टीलहृदामवातशमनः कुष्ठं प्रमेहाश्मरीं  
 शूलानाहविसर्परक्तशमनो भूतोपसृष्टे हितः ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रिभार्षिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने

गुग्गुलकण्ठी नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

इति कल्पस्थानम् ।

## अथ सूत्रस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथ तुलामानविधिः ।

आत्रेय उवाच ।

सर्षपस्य चतुर्थांशोऽणुः । चतुःसर्षपैर्मर्षिः । चतुर्मर्षैर्वल्लैः ।  
 चतुर्वल्लैः कर्षः । चतुःकर्षैः पलम् । चतुःपलैः कुडवः ।  
 चतुःकुडवैः प्रस्थः । चतुःप्रस्थैराढकः । चतुर्भिराढकैर्द्रोणः ।  
 शुष्काणामौषधानाञ्च मानञ्च द्विगुणं भवेत् ।



आर्द्राणामथ सर्वेषां विज्ञातव्यस्तुलाविधिः ॥

सप्तभिर्यवशतैः साष्टषष्टिभिः पलं भवति । चतुर्भिः पलैः  
कुडवः । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः । प्रस्थैश्चतुर्भिराढकः । चतुर्भि-  
राढकैः कंसः । ६ पले प्रसृतिर्भवेत् ।

मस्तुतैलारनालानां क्षौरमष्टगुणं सिता ।

मधु मद्यं तथा द्राक्षा खर्जूरं गुग्गुलुस्तथा ॥

रसोनलवणानाञ्च प्रोक्तावार्द्रार्द्रमानकौ ।

विडालपदिकामात्रं कर्षशब्दोऽभिधीयते ॥

वटोडम्बरमात्रेण पलमौडुम्बरं विदुः ।

चतुःपलं विव्यमानं पलं प्रसृतिमेव च ॥

कुडवश्चाञ्जलिद्वे च वक्ष्यमाणं महामते ॥

चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलमुन्नतम् ॥

काष्ठजं मृण्मयं वापि कुडवं तं विनिर्दिशेत् ।

चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थश्चतुः प्रस्थैस्तथाढकः ॥

चतुराढकः स्याद् द्रोणो मानसंख्या प्रकीर्तिता ।

त्रामनञ्च विरेकञ्च प्रदद्यात् कर्षमात्रकम् ॥

सन्तर्पणं पलमात्रं चूर्णं कर्षकमात्रकम् ।

क्षारमानं पलाद्वै च कर्षं चैव हरीतकीम् ॥

पलं रसोनकल्कञ्च पलं गुग्गुलुमेव च ।

पलञ्च शूरणं कल्कं दापयेच्च सुपर्ण्डितः ॥

अन्यानि चूर्णलेहानि कर्षमात्राणि दापयेत् ।

ज्ञात्वा देहबलं सम्यगुत्तमाधममध्यमम् ।

लेहं चूर्णं कषायञ्च दापयेद्विधिवत् सुधीः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रिषभाषिते हारीतौत्तरे सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम

प्रथमोऽध्यायः ।



द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तैलपाकविधिः ।

आत्रेय उवाच ।

पाकश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तैलानां शृणु पुत्रक ! ।  
 खरचिकणमध्यस्तु विशोषी चापरो मतः ॥  
 दुग्धारनालकायश्च दधि वा शोषयत्यपि ।  
 न चाद्रता चोषधानां निःफेनो विमलस्तु यः ॥  
 मञ्जिष्ठारससङ्काशो भवेत् स खरपाकगः ।  
 वातघ्नः सोऽपि विज्ञेयो मर्दनाभ्यञ्जने हितः ॥  
 मफेनो मध्यपाकी च द्रवो भवति पिण्डितः ।  
 नातिफेनमफेनं वा मध्यपाकं विनिर्दिशेत् ॥  
 वस्तौ पाने च शस्तच्च त्रिदोषघ्नं भिषग्वर ! ।  
 मफेनश्चन्द्रभो यस्य भवेत् स्वस्थसमो द्रवः ॥  
 स च चिकणकः पाको नस्ये प्रोक्तो हितः सदा ।  
 मधूमश्चातिदग्धश्च दग्धगन्धरसस्तथा ॥  
 विज्ञेयो वावशोषी च वर्जितः सर्वकर्मसु ।  
 मर्दने खरपाकश्च वस्तौ चिकणपाकतः ॥  
 वस्तौ पाने मध्यपाको विशोषी वर्जितस्तथा ।  
 पक्षे सिध्यति तैलञ्च सप्ताहे घृतमेव च ।  
 कषायः प्रहरेणापि यत्नं नैव प्रसाधयेत् ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे सूतस्थाने तैलपाकविधिर्नाम

द्वितीयोऽध्यायः ।

## तृतीयोऽध्यायः ।

अथ निरुहवस्तिकर्मविधिः ।

आत्रेय उवाच ।

चतुरङ्गुलां वेणुमयीं नाडीं प्रतिलक्षणं कृत्वा तथा वस्ति-  
प्रतिकर्म कुर्यात् ।

नाति चोष्णो च कालो च न शीतो न च भोजिते ।

न निद्रालो च मूत्रार्ते विष्टार्ते न च पुत्रक ! ।

वस्तिकर्म निरुहश्च कारयेत्तं निरस्य च ॥

आदौ मूत्रविष्टोत्सर्गं कृत्वा गुदं प्रक्षाल्य नातिशिथिल-  
शय्यायां शाययित्वा वामाङ्गे वामपादं दक्षिणाङ्गे दक्षिण-  
पादञ्च सङ्कोच्य जङ्घोपरि संस्थाप्य गुदाभ्यन्तरे द्वाङ्गुलमात्रां  
नाडीं सञ्चारयेत् सुधीः । ततः शनैः शनैर्वस्तिं निष्पीड्य  
द्विपलपरिमिततैलेन निरुहं कुर्यात् । निरुहानन्तरं शनै-  
रुत्तानं शाययित्वा ऊर्ध्वीकृत्य च पश्चात् सङ्कोच्य पाणिभिः  
पञ्चवारान् स्फिक्पिण्डान् त्रोटयेत् । ततः स्वस्थं कृत्वा  
क्षीपि आमाशयं मलस्थानं बोधयति । वस्त्युदरवातान्  
दोषान् निवारयति । पाण्डितास्तं वस्तिनिरुहं तद्वस्तिकर्म  
च विदुः ।

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारौतसंहिते सूत्रस्थाने निरुहवस्तिकर्मविधिर्नाम

तृतीयोऽध्यायः ।

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ स्वेदनविधिः ।

स्वेदः सप्तविधः प्रोक्तो लोष्टस्वेदो वाष्पस्वेदोऽग्निज्वालास्वेदः ।

घटस्वेदो जलस्वेदो फलस्वेदो बालुकास्वेदश्च ॥

न तैलेन विना स्वेदं कदाचिदपि कारयेत् ।  
 तैलेनाभ्यञ्जयेत् स्वेदं स भवेद्गुणकारकः ॥  
 तीव्रज्वरे दाहशोषे तथातीसारपीडिते ।  
 मूर्च्छाभ्रमे च दाहार्त्ते विषे स्वेदं न कारयेत् ॥  
 शूलशोथातुरे वाते शीतश्लेष्मातुरेषु च ।  
 एतेषां शस्यते स्वेदो नराणां सुखदायकः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते चारीतोत्तरे सूत्रस्थाने स्वेदनविधिर्नाम  
 चतुर्थोऽध्यायः ।

### पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ रक्तावसेचनविधिः ।

आत्रेय उवाच ।

रक्तावसेचनं चतुर्भिः प्रकारैर्भवति ।  
 शिराविरेचनेनापि अलावूभिस्तथैव च ॥  
 श्लक्ष्णाशृङ्गैर्जलौकाभिः रक्तञ्च स्रावयेद् बुधः ।  
 पूर्वाह्णे चापराह्णे च नात्युष्णे नातिशीतले ॥  
 यवागूपरिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ।  
 शिरोरोगेषु सर्वेषु नासामध्यपुटे तथा ॥  
 'असृजं रेचयेद् यत्नात् सर्वदा भिषगुत्तमः ।

ललाटमध्ये भ्रुवोरुपरिष्ठादङ्गुलद्वयं त्यक्त्वा शिरां बन्ध-  
 येत् । वाह्योः कूर्परमध्ये शिरां बन्धयेत् । मणिवन्धसन्धौ  
 अङ्गुष्ठमूलचतुष्टयमङ्गुलञ्च विहाय शिरां बन्धयेत् । नातिपार्श्वे  
 चतुरङ्गुलं विहाय शिरां बन्धयेत् । घण्टिकां शिरां पादे  
 बन्धयेत् । अपरमपि अन्यविस्तारभयान्नोक्तम् । अलावुशृङ्गै-  
 रक्तावसेचनं सर्वैरपि ज्ञातम् ।

अथ रक्तलक्षणम् ।

सकृष्णं फेनिलं श्यामं रक्तं तद्वातदोषजम् ।

सर्वलक्षणसम्पन्नं विज्ञेयं तत् त्रिदोषजम् ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रियभाषिते हारीतौतरे सूत्रस्थाने रक्तावसेचन-

विधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथ जलौकाविचारविधिः ।

आत्रेय उवाच ।

जलौकाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता इन्द्रायुधा रोहिणी कालिका  
धूम्ना चेति ।

अथ इन्द्रायुधा ।

नीलवर्णा पार्श्वरक्ता तीक्ष्णमुखी गम्भीरनिर्मलोदके  
प्राणसन्धौ च प्रविशति । तया विद्रध्युदरदाहशोथमूर्च्छा-  
विषाद्युपद्रवयति ।

अथ रोहिणी ।

नीलवर्णा पार्श्वपीता शङ्खमुखी पद्मनाले प्रविशति । तया  
विद्वधिवि सर्पशोथाद्युपद्रवयति ।

अथ कालिका ।

कृष्णा कालिका मत्स्याशये दूरे त्यज्या ।

अथ धूम्ना ।

धूम्ना कपोतमहिषवर्णा पीतोदरो अर्द्धचन्द्रमुखी कर्दमे  
कलुदोषके प्रविशति । सा रक्तावसेचनयोग्या निरुद्रवा च ।

शावस्थानं कार्झिकेन प्रक्षाल्य नवनीतेन म्रक्षयित्वा  
उष्णोदकेन प्रक्षालयेत् । पश्चात् तत्र जलौका विचारणीया ।  
जलौका रक्तपूर्णा पश्चात् पातिता । तस्या मुखं लवणेन

मूत्रेण वा प्रक्षालयेत् । अथवा शनैर्गीस्तनवद् दुह्यते ।  
पुनर्नवनीतेन मुखमालिप्य विचारणीया । दुष्टरक्ते विनिर्गते  
दंशं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य घृतमधुना अभ्यज्य वस्त्रेण बध्नीयात् ।

इति श्रीमहर्षात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे सूत्रस्थाने

जलौकाविचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ।

इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ।

## शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथ शारीराध्यायः ।

आत्रेय उवाच ।

पञ्चभूतात्मकं देहं पञ्चेन्द्रियसमायुतम् ।  
सप्तधातुगुणोपेतं दशवातात्मकं विदुः ॥  
जीवो मनस्तथाकाशस्तथैव त्रिगुणात्मकः ।  
शुक्रशोणितसम्भूतं शरीरं दोषभाजनम् ॥  
पञ्चभूतमयं चैतद् विज्ञेयं भिषजां वर ! ।  
चतुर्विधं शरीरं स्याद् बाल्यं प्रौढं प्रगल्भकम् ॥  
स्थविरश्च तथा प्रोक्तं बाल्यमल्पशरीरकम् ।  
'षोडशं वत्सरं यावद् बाल्यं तावत् प्रवर्तते ॥  
धातूनाञ्च बलं तत्र धातुमूलं शरीरकम् ।  
धातूनां पुष्टियोगेन शरीरश्चातिवर्द्धते ॥  
जीवितं धातुमूलन्तु मृत्युर्धातुक्षयादपि ।  
ह्यनधातोश्च योगेन लभते स्वल्पजीवनम् ॥  
नरो धातुवलेनापि जीवितश्चात्र दृश्यते ।  
तस्माच्च मैयुनात् सम्यक् जायते गर्भसम्भवः ॥

आदौ धातुबलं तस्मात् सत्त्वं तस्माद्रजो विदुः ।  
 रजसा जायते कामः कामात् सुरतसङ्गमः ॥  
 मासे मासे ऋतुः स्त्रीणां अतो ऋतुमती स्त्रियः ।  
 रजः सप्तदिनं यावत् ऋतुश्च भिषजां वर ! ॥  
 सप्तरात्राद् योनिशुद्धिस्तस्मादृतुमती भवेत् ।  
 दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन पुत्रक ! ॥  
 दृश्यते न विना योगात् फलं स्त्रीणान्तु पुत्रक ! ।  
 संशयाद् विस्मितश्चित्ते हारीतः परिपृच्छति ॥

हारीत उवाच ।

संयोगेन विना प्राक्त ! कथं गर्भो न जायते ।  
 संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥  
 ब्रूचवन्न कथं स्त्रीणां फलोत्पत्तिः प्रदृश्यते ।  
 एतत् पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच ऋषिपुङ्गवः ॥

आत्रेय उवाच ।

विरुद्धानाञ्च वस्त्रीनां स्थावराणाञ्च पुत्रक ! ।  
 न तत्र धातुसमं बीजं सह योगेन वर्तते ॥  
 न भिन्नदृष्टिस्तस्येव दृश्यते शृणु पुत्रक ! ।  
 स्थावराणाञ्च सर्वेषां शिवशक्तिमयं विदुः ॥  
 निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तशक्तिर्महामते ! ।  
 तत्र स्त्रीपुरुषगुणा वर्तन्ते समयोगतः ॥  
 आम्नपुष्पं फलं तद्वद् बीजं शुक्रमयं विदुः ।  
 स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजाण्यमिन्द्रियं नरे ॥  
 तस्मात् संयोगतः पुत्रो जायते गर्भसम्भवः ।  
 प्रथमेऽहनि रेतश्च संयोगात् कललं च यत् ॥  
 जायते बुद्बुदाकारं शोणितञ्च दशाहनि ।  
 घनं पञ्चदशाहे स्याद् विंशाहे मांसपिण्डकम् ॥

पञ्चविंशतमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भवः ।  
 मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्वं प्रजायते ॥  
 पञ्चाशद्विसे प्राप्ते अङ्गुराणाञ्च सम्भवः ।  
 मासत्रये तु सम्प्राप्ते हस्तपादौ प्रवर्तते ॥  
 सार्द्धमासत्रये प्राप्ते शिरश्च सारवद्भवेत् ।  
 चतुर्थके च लोमानां सम्भवश्चात्र दृश्यते ॥  
 पञ्चमे च सुजीवः स्यात् षष्ठे प्रस्फुरणं भवेत् ।  
 अष्टमे मासि जाते च अग्नियोगः प्रवर्तते ॥  
 मासे तु नवमे प्राप्ते जायते तस्य चेष्टितम् ।  
 जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासस्य कारणात् ॥  
 दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमेऽपि वा ।  
 अथ दोषवलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते ॥  
 वातसम्परिते गर्भे अपूर्णे दिवसे यदि ।  
 प्रसूतये वाप्ययं तद्गर्भे वालः प्रदृश्यते ॥  
 अथ वक्ष्यामि देहस्य वर्णज्ञानं महामते ! ।  
 नररेतोऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु ॥  
 ह्योनैरसेन्द्रियैर्वापि जायते पुरुषाधिकः ।  
 स्त्रीरेतसोऽधिकत्वेन ह्योनशुकेन्द्रियादपि ॥  
 रजसाप्यधिकत्वेन स्त्रीसम्भूतिः प्रजायते ।  
 सप्तधातुवलेनापि प्रकृत्या विकृतेः समे ॥  
 ऋतुव्याप्तं रजःस्त्रीणां या या भवति भावना ।  
 सात्विकी राजसौ वापि तामसौ वापि सत्तम ! ॥  
 तादृशं जनयेद् वालं गुणैर्वा तादृशैरपि ।  
 या च भावयते चित्ते भ्रातरं पितरं नरम् ॥  
 येन वा तेन सदृशं सूयते सा भिषग्वर ! ।  
 वातेन श्यामः पुरुषो वातप्रकृतिसम्भवः ॥

पित्तेन गौरो भवति पित्तप्रकृतिवान् भवेत् ।  
 स्नेहणा जायते स्निग्धः श्यामश्च लोमशस्तथा ॥  
 दीर्घशिरोरुहः स्थूलो दीर्घप्रकृतिसंयुतः ।  
 वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्तेन पिङ्गलः ॥  
 पित्तवांश्च नरो रुक्षः स्निग्धः श्यामः कफासृजा ।  
 भृङ्गराजाञ्जनाकारं वातेन दृष्टिमण्डलम् ॥  
 सूक्ष्मलोमा च कृष्णश्च रुक्षमूर्ध्वजसंयुतः ।  
 यस्य वातेन तं विद्धि नखसूक्ष्मासितच्छविम् ॥  
 पित्तेन पीतश्च भवेदलोमा पिङ्गेक्षणाभासपिशङ्गकेशः ।  
 आलोमशः पीतनखप्रभः स्यात् क्षुधार्तं दृप्तश्च निरुक्षणा सः ॥  
 स लोमशो दृप्तकठोरकेशः श्यामच्छविर्दृप्ततनुर्विशालः ।  
 मुस्निग्धदन्तः सितनेत्ररस्यो नखच्छविः पाण्डुसुदीर्घनासः ॥

इति देहप्रकृतिः ।

समवीर्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत् ।  
 नपुंसकमिति ख्यातं न स्त्री न पुरुषो वदेत् ॥  
 दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसम्भवः ॥  
 कृतभ्रान्ते च सम्भोगे द्वाभ्याश्च द्रवते मनः ।  
 दृश्यते यमलोत्पत्तिरन्यचित्तप्रियङ्करौ ॥

इति अपत्ययुग्मम् ।

समदोषवलेनापि प्रकृत्या विकृतेरपि ।  
 समो भवेदसृक्शुक्रो नपुंसकसमुद्भवः ॥

इति नपुंसकः ।

अथ बीजलेहिपञ्चभूताग्निना परिपक्वं कललं क्रियते ।  
 सोऽपि चान्तःस्थो वायुर्वहुदाकारो बाह्यवातेन सम्भृतो भवति ।  
 स च कललं भूत्वा पञ्चभूताग्निना पिण्डं जनयति । तच्च  
 पिण्डं परिपाकं गतं घनसङ्घातश्च जातं व्यानवातेन पञ्चतत्त्वानि



हस्तपादादीन् शिरोऽवयवान् सञ्जनयति । अन्तःस्थो वायु-  
रेकोऽपि नानास्थानं समाश्रित्य देहाकारं करोति । उदानो  
गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाशयति । अपानवायुरधः-  
स्थोऽपानद्वारं विशोधयति । एतेचान्तःस्थाः पृथक् पृथक्  
मार्गे छिद्रं कृत्वा निर्गच्छन्ति । तान्येव नवद्वाराणि मुख-  
घ्राणकर्णनेत्रापानमोहनानि चैतानि द्वाराणि वातेन प्रभ-  
वन्ति तत्रान्तःस्थो वायुः प्रतानत्वेन हस्तपादाद्यानवय-  
वान् सञ्जनयति ॥

त्वङ्मांसकेशरोमास्थि भूभागं जनयेत् तथा ।  
रसं रक्तञ्च लालाञ्च मूत्रं शुक्रं जलानि च ॥  
अग्निं पित्तञ्च नेत्रञ्च तमः क्रोधादि पञ्चकम् ।  
श्रुतिः स्पर्शस्तथोच्छ्वासः स्वेदश्चक्रमणादि च ॥  
वाता ह्येते परिज्ञेया अन्या प्रकृतिरेव च ।  
मनो बुद्धिस्तथा निद्रा आलस्यं मद एव च ॥  
शून्यात् पञ्च प्रजायन्ते देहे देहे व्यवस्थिताः ।  
वातरक्तेन त्वग्देहे मांसं त्वगाश्रितं मतम् ॥  
शुक्रश्लेष्मोद्भवो मेदो रसोऽस्थिरक्तसम्भवः ।  
पित्ताश्रितं हृदयस्थं वातरक्तमयं यकृतम् ॥  
रक्तश्लेष्मरसाश्रित उरुः कफरक्तश्लेष्ममयः प्लीहा कफरक्तमयः ।  
पञ्चभूतमयं देहमाकाशं शून्यमेव च ।  
शून्याद् वायुः समुत्पन्नो वायोः प्राणः प्रजायते ।  
प्राणांशश्च तथा जातः सर्वसत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥

इति सत्वसम्भवः ।

आकाशाज्जलमुत्पन्नं जलाज्जाता वसुन्धरा ।  
तस्मात्तेजस्तथा जातं तेजसो जायते तमः ॥  
पञ्चभूतात्मके देहे पञ्चेन्द्रियसमायुते ।

भूतानाञ्च प्रधानो य आकाशमिति शब्दितः ॥

आकाशात्तेजस्तेजसो दर्पो दर्पात् पराक्रमस्तस्मादहङ्कार-  
स्ततः कोपः कोपात् तमस्तमसः पापमिति । आकाशात् सत्त्वं  
सत्त्वात् सत्यं सत्यात् तपस्तपसो नयो नयाद् विवेको विवेकात्  
शान्तिः शान्त्या धर्म इति । सत्याद्रजो रजसः कामो कामाक्षौत्यं  
लौक्यादसत्यमसत्यात् पापमिति । रसात् कामः कामादभि-  
लाषोऽभिलाषात् प्रजा प्रजाया मैत्री मैत्र्याः स्नेहः स्नेहात्  
मोहो मोहात् माया ततो भ्रान्तिर्भ्रान्त्या मिथ्या ततोऽविद्या  
अविद्यायाः पुण्यपापानि पुण्यपापेभ्यः संभव इति ।

सत्त्वाच्च तम एव स्यात् जाग्रते स्वपते प्रभुः ।

तमसा प्रावृतो देही व्योम्ना च शून्यतां गतः ॥

देहं विश्रमते यस्मात् तस्मान्निद्रा प्रकीर्तिता ।

नासाह्ने च भ्रुवोर्मध्ये लीयते चान्तरात्मना ॥

तस्माच्चेतो भवेत् तत्र निद्रा व्यालीयते नृणाम् ।

सत्त्वात् तेजः समाख्यातं तेजसा पित्तमेव च ॥

जायते वायुर्मनसः स्वपते तमसावृतः ।

वायोस्तमः समायोगात् स्वप्नावस्थेति गीयते ।

सत्त्वं तमस्तथा वायुर्वत्तते चैकयोगतः ॥

आहारनिद्रा च क्षुधा च तृष्णा भयञ्च मात्सर्यमदश्च मोहः ॥

क्रोधाभिलाषः सुखदृष्टिशान्तिर्भवन्ति वै देहभृतां शृणु त्वम् ।

आहारस्येच्छया देहे चरते च हुताशनः ।

दृष्टिं वापि समाप्नोति रसास्वादजनस्य च ॥

यदा यदा शोषयते मलानामग्निस्तदा दृष्टिमिवातनोति ।

यदा च यस्यैव भवेददृष्टिस्तदैव तृष्णां प्रतनोति चेतः ॥

इति श्रीमहर्ष्यत्रेयभाषिते हारीतकीनदे शारीरस्थाने शारीराध्यायो नाम

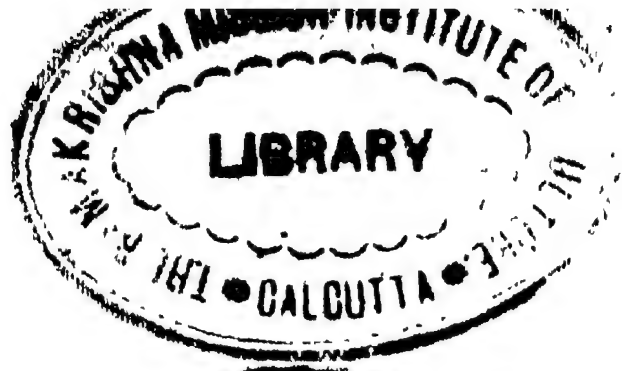
प्रथमोऽध्यायः । इति शारीरस्थानं समाप्तम् ।

अथ परिशिष्टाध्यायः ।

इति प्रोक्ताः शरीरार्थस्तद् व्यासेनोपदिश्यते ।  
 श्रुत्वा चैनं महातेजा हारीतो मुनिसत्तमः ॥  
 प्रणिपत्य गुरुं श्रेष्ठं हृष्टान्तःकरणस्ततः ।  
 जगाम स्पर्णदीतीरं स्नानध्यानरतस्तथा ॥  
 य एतत् पठते शास्त्रं महर्षेर्वचनाच्छ्रुतम् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो नीरुजः सुखमश्नुते ॥  
 आदौ यद् ब्रह्मणा प्रोक्तमत्रिणा तदनन्तरम् ।  
 धन्वन्तरिणा प्रोक्तञ्च अश्विना च महात्मना ॥  
 एवं वेदसमं ज्ञेयं नावज्ञाकारणं मतम् ।  
 अन्यैश्च बहुधा प्रोक्तं नानाशास्त्रविशारदैः ॥  
 अमीषां च मतं ग्राह्यं तस्मात् सर्वे समं विदुः ।  
 चरकः सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापरः ॥  
 मुख्याश्च संहिता वाच्यास्त्रिस्र एव युगे युगे ।  
 अत्रिः कृतयुगे वैद्यो द्वापरे सुश्रुतो मतः ॥  
 कलौ वाग्भटनामा च गरिमात्रं प्रदृश्यते ।  
 वैष्णवी चाश्विनो गार्गी तत्र माध्याह्निकापरा ॥  
 मार्कण्डेया च कथिता योगराजेन धीमता ।  
 संहिता ऋषिभिः प्रोक्ता मन्त्रैर्नानाविधैर्विभो ! ॥  
 अग्निवेशश्च भेडश्च जातुकर्णः पराशरः ।  
 हारीतः क्षारपाणिश्च षडेते ऋषयस्तु ते ॥  
 यथा सिंहो मृगेन्द्राणां यथानन्तो भुजङ्गमे ।  
 देवानाञ्च यथा शम्भुस्तथात्रेयोऽस्ति वैद्यके ॥  
 तस्माद् यत्नेन सदैवैः सादरार्द्रसुमानसैः ।  
 अर्चनीयोऽनुमन्तव्यो दास्यते सुखसम्पदः ॥

इति श्रीमहर्ष्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे परिशिष्टाध्यायः ।

इति हारीतसंहिता समाप्ता ।



पण्डितकुलपतिः

श्रीजीवानन्दविद्यासागर वि, ए,

*PANDIT JIBANANDA VIDYASAGARA B, A.*

*Superintendent Free Sanskrit College, Calcutta.*











